प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक में गांधीजी के निधन पर देश-विदेश के चिन्तकों एवं लोक-नेताओ द्वारा अर्पित की गई कुछ चुनी हुई श्रद्धांजलियो का संग्रह है। अमरीका के सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने अपनी पुस्तक 'गांधी की कहानी' में लिखा है कि ससार के शायद ही किसी महापुरुष की मृत्यु पर इतना गहरा और इतना व्यापक शोक प्रकट किया गया हो, जितना गांधीजी की मृत्यु पर। जिन्हे गांधीजी के दर्शन का अवसर मिला था, उनके मुँह से तो आह निकली ही, जिन्होने उन्हे कभी नहीं देखा था, उनकी भी आँखें डबडबा आईं। इस विश्व-व्यापी वेदना का कारण यह था कि गाधीजी ने समूची दुनिया के सुख-दु.ख के साथ अपनेको एकाकार कर दिया था. मानव मानव के बीच उनके लिए भेद न था। वह मानवता के लिए जिये और उसीके लिए उन्होने अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया।

गांधीजी भारत में जन्मे थे, लेकिन उनकी करुणा, सहानुभूति और कार्य इस देश की परिधि तक ही सीमित नहीं थे। जहाँ भी उन्होंने अन्याय, अत्याचार अथवा शोषण देखा, वहींपर उन्होने अपनी आवाज ऊँची की।

शाति की दृष्टि से तो वह बुद्ध, महावीर और ईसा की परम्परा के थे। दुनिया के सामने उन्होंने अपने आचरण तथा राष्ट्रीय प्रयोग के द्वारा यह सिद्ध करके दिखा दिया कि वास्तविक शाति अस्त्र-शस्त्रो के बल पर स्थापित नहीं हो सकती। उन्होने यह भी प्रमाणित कर दिया कि सबसे बड़ा बल आत्मिक बल है और उसके आगे कोई भी ताकत नही ठहर सकती।

ऐसे विलक्षण मानव के प्रति दुनिया के कोने-कोने से श्रद्धांजलियां अर्पित की गई तो यह स्वाभाविक ही था। यदि उन सब श्रद्धांजलियों को प्रकाशित किया जाय तो कई जिल्दें भर जायगी। इस पुस्तक में कुछ ही श्रद्धांजलियाँ संगृहीत की जा सकी है। इनका चुनाव और सम्पादन सुविख्यात चिन्तक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने किया है। इन श्रद्धांजलियो का अपना महत्त्व है। इनमें भावभरे उद्गार तो प्रकट किये ही गए है, साथ ही गांधीजी की महानता और उनके कार्यो की विश्व-व्यापी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी में 'गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' से पाठक भलीभांति परिचित हैं। उसमें गांधीजी के सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए उनके प्रति भावनापूर्ण उद्गार प्रकट किये गए हैं। इस ग्रंथ में भी उनके सिद्धांतों और कार्यों पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही उनके प्रति श्रद्धांजलियां भी अर्पित की गई हैं। दोनों ही ग्रंथों में बड़ी मूल्यवान् सामग्री है। अंतर केवल इतना है कि अभिनंदन-ग्रंथ गांधीजी के जीवन-काल में उनकी बहत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर निकला था; श्रद्धांजलि-ग्रंथ उनके बलिदान के बाद प्रकाशित हो रहा है।

आशा है, इस ग्रंथ को भी वही लोकप्रियता और आदर प्राप्त होगा, जो 'गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' को प्राप्त हुआ है।

—मंत्री

विषय-सूची

परिशिष्ट

गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

बापू : अनंत निद्रा में

गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

: १ :

मानव-जाति को गांधीजी का संदेश

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

सभ्यता स्वप्न पर आधारित है। इसके नियम और रूढियां, इसकी जिन्दगी के तरीके और दिमागी आदते स्वप्न पर ही सतुलित है। जवतक स्वप्न का जोर है, सभ्यता आगे वढती है, जैसे ही स्वप्न टूटता है, सभ्यता भी गिरने लगती है। जीवन जब वस्तुओ के कोलाहल से घिर जाता है, दुनिया के अहकार और उनकी भूलें जब हमे घेर लेती है, अपने चारो ओर जब हम अस्वाभाविक इच्छाओ और विनाशकारी शक्तियों के खूनी खेल देखते है और जब इन सबका कोई उद्देश्य नज़र नही आता तो उस समय हम मानवीय स्थिति की परीक्षा करके यह जानना चाहते है कि आखिर गलती है कहा? यद्यपि गत महायुद्ध ने हमें सचेत कर दिया है कि हमारी वर्तमान सभ्यता क्षणभगुर है और यदि वैज्ञानिक कौशल से संवद्ध मनुष्य की आज की लालसा को रोका न गया तो यह सभ्यता कभी भी छिन्न-भिन्न हो जायगी। परन्तु जिस दिशा की ओर मानव-इतिहास वढ़ रहा है उस दिशा के बदलने की आवश्यकता के विषय मे हम दुविधा और भ्रम में पडे है। जब कभी कोई ऐसी देवात्मा, जो अपने वातावरण के वधनो से मुक्त है, जिसका हृदय दुखी मानवता के लिए समवेदना और दर्द से भरा है, हमारे सामने आकर सघर्ष और प्रतियोगिताओ से, वर्ग-भेद और युद्धो की भरी आज की दुनिया से विमुख होकर उन्नति के उस मार्ग की ओर इशारा करता है, जो संकरा और दुष्कर है, तो हमारे अन्तर का मानव प्रकट होकर इसका अनुसरण करता है। भूलो मे डूवी और समय के छल-फरेव से घिरी दुनिया में गाधीजी ने ईश्वरीय सत्यता के अमर सिद्धान्तों और मानव-प्रेम को ही उचित मानव-संबंधो की स्थापना के लिए एकमात्र आधार वताया है। उनके जीवन और सदेश में सभ्यता के उस स्वप्न को हम साकार

होते देखते हैं। उनके निर्माण में शताब्दिया गुजरी और उनकी जडे युगो तक फैल गई है। ऐसी दशा में युग-दुर्लभ और अद्भुत आत्मा की मृत्यु का समाचार सुनकर दुनिया का भय से कपित और दुख से कातर हो उठना कोई आश्चर्य की बात नही थी। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कहा था, "मनुष्यो मे से एक देव उठ गया। यह कृशकाय छोटा-सा व्यक्ति अपनी आत्मा की महानता के कारण मनुष्यो में देव था।" अपने-अपने क्षेत्र मे बडे और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी उनके निकट खडे होने पर छोटे और तुच्छ दिखलाई पडते थे। उनकी आत्मा की गहरी सच्चाई, घृणा और द्वेष से उनका मुक्त रहना, अपने पर पूर्ण अधिकार, मित्रतापूर्ण सबको मिलानेवाली उनकी करुणा और इतिहास की अन्य महान हस्तियो के समान आत्मपतन के आगे शरीर के बलिदान को नगण्य माननेवाला वह विश्वास, जिसको उन्होने कई बार बडी नाटकीय परिस्थितियो में सफलतापूर्वक कसौटी पर कसा, आदि गुण ही आज जीवन की इस अन्तिम परिणति में जीवन पर धर्म की, विश्व की बदलती समस्याओ पर अमर गुणो की जीत के द्योतक है।

साधारणतया जिसे धर्म कहा जाता है वही उनके जीवन की प्रेरणा थी, किन्तु धर्म का अर्थ उनकी दृष्टि में मत विशेष के प्रति आग्रह अथवा शास्त्रोक्त पूजा-उपासना के व्यवहार तक ही सीमित न था, वरन् धर्म का उनका अर्थ था सत्य, प्रेम और न्याय के मूल्यो मे अडिग और अगाध श्रद्धा तथा उन्हे इसी दुनिया में प्राप्त करने का सतत प्रयत्न। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व मैने धर्म के विषय मे उनकी राय पूछी थी। उन्होने उसे इन शब्दो में व्यक्त किया था—"मै अपने धर्म को प्राय. सत्य का धर्म कहता हूँ। अभी पिछले दिनो से 'ईश्वर सत्य है' यह कहने के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा मै कहने लगा हूँ, ताकि मै अपने धर्म की अधिक व्यापक व्याख्या कर सकू। सत्य के अतिरिक्त अन्य और कोई भी चीज मेरे ईश्वर की इतनी पूर्णता के साथ व्याख्या नही करती। परमात्मा का निषेध हमने सुना है, पर सत्य का निषेध कोई नही करता। मनुष्य-जाति मे मूर्खतम लोग भी अपने भीतर सत्य का कुछ प्रकाश रखते है। हम सब सत्य के ही ज्योति-कण है। इन ज्योति-कणो का यह सयुक्त रूप अवर्णनीय है, क्योकि सत्य का ईश्वरीय रूप हम अभीतक नही समझ पाये है। निरन्तर उपासना से इसके निकटतर पहुँच अवश्य रहा हू।"

'सत्यं-ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' अर्थात् सत्य ज्ञान ही अनन्त ब्रह्म है, ऐसा उपनिषदो में भी कहा गया है। परमात्मा सत्यनारायण अर्थात् सत्य का स्वामी है।

गांधीजी कहा करते थे, "मै केवल सत्य की खोज करनेवाला हूं और उसतक पहुंचने के रास्ते को पाने का मै दावा कर सकता हूं। उसे पाने के लिए मै सतत प्रयत्नशील हूं, यह भी कह सकता हूं। सत्य को पूरी तरह से प्राप्त करने का अर्थ है अपने आप को और अपने प्रारब्ध या उद्देश्य को पा लेना। दूसरे शब्दो मे पूर्ण हो जाना। मुझे अपनी अपूर्णता का दुखद ज्ञान है और सचमुच यही मेरी सारी शक्ति है। मैं यह बिलकुल भी दावा नही करता कि मुझमे कोई दैवी शक्ति है, और न उसकी मैं इच्छा करता हूं। मै भी वही दूषित होने योग्य चोला पहने हूं जो मेरा कोई भी ज्यादा-से-ज्यादा कमजोर भाई पहने है, और इसीलिए दूसरे लोगो की तरह मै भी भूल कर सकता हू।" प्रार्थना, उपवास एवं प्रेम के अभ्यास द्वारा गाधीजी ने अपनी पार्थिव असबद्धता और प्रकृति की चंचलता पर विजय प्राप्त करने का तथा ईश्वरीय कार्य के लिए अपने को अधिक योग्य साधन बनाने का प्रयत्न किया। उनका विश्वास था कि अपने श्रेष्ठतम रूप मे सभी धर्म मानव की पूर्णता के लिए समान सयम और अनुशासन की व्यवस्था देते है।

वेद, त्रिपिटक, इंजील, और कुरान, सभी आत्म-संयम की आवश्यकता पर जोर देते हैं। हिन्दू ऋषियो, महात्मा बुद्ध और ईसा के जीवन में प्रार्थना और उपवास का महत्त्व हमें अच्छी तरह ज्ञात है। मुल्लाओ की वह अज़ान उषा की निस्तब्ध शाति को भग करती हुई पिछली चौदह शताब्दियो से 'अल्लाहो अकबर' 'ईश्वर महान् है' के रूप मे प्रतिध्वनित होकर हमे यह सदेश देती रही है कि सोते रहने से प्रार्थना करना अच्छा है और यह कि हमे अपना दैनिक कार्य ईश्वर के चिन्तन से ही प्रारम्भ करने चाहिए। इस्लाम के अनुयायी को दिन मे पाच बार नियत समय पर निश्चित शब्दो और नियत ढग से नमाज पढनी होती है और वर्ष मे एक बार रमज़ान के महीने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक बिना किसी प्रकार का कुछ भोजन किये उपवास करना होता है।

गाधीजी का यह विश्वास था कि, "सब धर्मों का लक्ष्य एक ही है। अभ्यान्तर जीवन, ईश्वर मे आत्मा का जीवन, ही एक महान् सत्य है। शेष सबकुछ बाह्य है। हम धर्म को नही, धर्म के सहायक अगो को अधिक महत्त्व देते है। आत्मा मे प्रतिष्ठित भगवान के मदिर को नही, उन खभो और पुश्तो को अधिक महत्त्व देते है, जो मदिर को गिरने से बचाने के लिए बनाये गए है। धर्म के उपाग बाह्य परिस्थितियो से निर्मित होते है और किसी जाति की परम्परा इन्हे अपने अनुरूप ढाल लेती है।

हिन्दू धर्म-शास्त्र 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के कर्त्तव्य पर जोर देते है। बाह्य प्रमाणो के आधार पर फैसला न करते हुए उनके मूल्य को स्वीकार करने की बात कहते है। भारत ने आत्मेच्छा और यहा बसकर भारतीय सस्कृति की वृद्धि में योग देने-वाली जातियो की विभिन्न जीवन-पद्धतियो को कभी कुचलने की कोशिश नही की। गाधीजी हमारा ध्यान युगो पुरानी भारत की उस परम्परा की ओर आकृष्ट करते है जिसने हमें केवल सहिष्णुता का सबक ही नही पढाया, वरन् सभी धर्मो का अगाध आदर करना भी सिखाया है। साथ-ही-साथ उन्होने हमे इस बात से भी साव-धान किया है कि कही उस विरासत को, जो पीढियो से हमारे पुरखो ने विशेष त्याग और उद्योग के साथ हमारे लिए तैयार की है, हम गवा न बैठें। जब उनसे हिन्दू धर्म की परिभाषा पछी गई तो उन्होने कहा—"यद्यपि मै एक सनातनी हिन्दू हू, तो भी मै हिन्दू धर्म की व्याख्या नही कर सकता। एक सामान्य मनुष्य की तरह जो धर्म का पडित नही है, मै यह कह सकता हू कि हिन्दू धर्म सब धर्मो को सब तरह से आदर का पात्र समझता है।"[१] गाधीजी कहा करते थे कि "सहिष्णुता मे अपने धर्म की अपेक्षा अन्य धर्मों के प्रति निष्कारण हेयभाव छिपा है, जबकि अहिंसा अन्य धर्मों के प्रति हमे वही आदर करना सिखाती है जो हम अपने धर्म के प्रति करते है और इस प्रकार वे सहिष्णुता की अपूर्णता को स्वीकार करते है।" गाधीजी एकमात्र हिन्दू धर्म की अनन्यता का दावा नही करते थे और इसीलिए वे उसे अन्य धर्मो से ऊपर नही समझते थे।

"मेरे लिए यह विश्वास करना असभव है कि मै केवल ईसाई होकर ही स्वर्ग को जा सकता हू, अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकता हूं। मेरे लिए यह मानना भी उतना ही कठिन है कि ईसा ही भगवान् के एकमात्र अवतरित पुत्र है।"[२] सत्य का ईश्वर से

---

१. हरिजन, १ फरवरी, १९४८, पृष्ठ १३।

२. मि. डोक ने एक बार गांधीजी से पूछा, "क्या ईसाइयत का भी आपके धर्मशास्त्र में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान है?" गाधीजी ने उत्तर दिया, "यह उसका एक अंग है। स्वयं ईसा मसीह ईश्वर की एक उज्ज्वल अभिव्यक्ति थे।" मि. डोक ने पूछा, "क्या वे इस प्रकार की एक अद्वितीय ज्योति नहीं थे जैसाकि मै समझता हूं?" गांधीजी ने उत्तर दिया, "उस प्रकार के नहीं जैसाकि आप उन्हें सोचते है। मै उन्हें उस सिंहासन पर अकेले नहीं बिठा सकता, क्योकि मेरा विश्वास है कि ईश्वर ने बार-बार अवतार लिये है।" मि डोक ने पुनः कहा, "मुझे सदेह है कि कोई भी

संबंध हैं और विचारो का मनुष्य से, और इसलिए हम यह निश्चयपूर्वक नही कह सकते कि हमारे विचारो ने पूर्ण सत्य को अपने में हजम कर लिया है।

हमारे धार्मिक विचार कुछ भी क्यो न हो, हम सब एक शैल-शिखर पर चढना चाहते है और हमारी आँखें उसी एक लक्ष्य की ओर लगी है। हो सकता है कि हम विभिन्न मार्गो का अनुसरण करे और हमारे मार्गदर्शक भी अलग-अलग हो। जब हम चोटी पर पहुँच जाते है तो वहाँतक पहुँचानेवाले रास्तो का कोई मूल्य नही रहता। धर्म मे प्रयत्न का विशेष महत्त्व है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। इस व्याख्या का यह अर्थ कदापि नही कि उसका एकमात्र उद्देश्य जीवन का ऐहिक सुख, सुविधाएं और सफलता ही है। इसका अर्थ यह है कि राज्य सभी धर्मों को अपने-अपने मतो के प्रकाशन, अभ्यास और प्रचार के लिए उस समय तक समान और निर्बाध अधिकार देगा जवतक कि उनके विश्वास और आचरण नैतिक सिद्धान्तो का उल्लघन नही करते। सभी धर्मो के प्रति समान व्यवहार के सिद्धान्त से विविध धर्मानुयायियो पर पारस्परिक सहिष्णुता का दायित्व भी लागू होता है। असहिष्णुता सकीर्णता का प्रतीक है। जनवरी १९२८ मे गाधीजी ने 'अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व सघ' के संमुख भाषण देते हुए कहा था, "लंबे अध्ययन और अनुभव के उपरान्त मै इस निष्कर्ष पर पहुचा हूँ कि (१) सभी धर्म सच्चे है (२) सब धर्मो मे कोई-न-कोई खरावी है और (३) सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय है जितना मेरा हिन्दू धर्म। मै अन्य मतो का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का। इसलिए मेरे लिए धर्म-परिवर्तन का विचार ही असभव है। अन्य व्यक्तियो के लिए हमारी प्रार्थना यह नही होनी चाहिए, 'हे भगवान्, उन्हें वही प्रकाश दो जो मुझे दिया है', अपितु यह कि 'उन्हे वह प्रकाश और सत्य दो जो उनके श्रेष्ठतम विकास के लिए आवश्यक है।' मेरा धर्म मुझे वह सवकुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योकि यह मुझे उपासना

धार्मिक पंथ क्या इतना विशाल हो सकता है कि जो अपने में उनके व्यापक सिद्धान्तों का समावेश करले या कोई भी चर्च-पद्धति इतनी बड़ी होगी कि वह उन्हें अपने में बन्द कर सके। यहूदी, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, बौद्ध तथा कन्फ्यूसियंस के अनुयायी का उनके हृदय में एक पिता की अनेक संतानो के समान स्थान है।" डोक द्वारा लिखित 'दक्षिणी अफ्रीका में एक भारतीय देश-भक्त' (१९०९), नामक पुस्तक के पृष्ठ ९० से।

करना सिखाता है। परन्तु यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें, जिससे एक ईसाई एक अच्छा ईसाई बन सके और एक मुसलमान एक अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा हमसे एक दिन यह पूछेगा कि हम क्या है और क्या करते है, न कि वह नाम जो हमने अपने को, और अपने कामो को दे रखा है।" २१ जनवरी १९४८ को अपने प्रार्थना-प्रवचन के समय गाधीजी ने कहा था, "मैने बचपन से हिन्दू धर्म का अभ्यास किया है। जब मै छोटा था तो भूत-प्रेतो के डर से बचने के लिए मेरी दाई मुझसे रामनाम लेने को कहती थी। बाद मे मै ईसाइयो, मसलमानो और दूसरे धर्म को माननेवाले लोगो के सपर्क मे आया और अन्य धर्मों का पर्याप्त अध्ययन करने के वाद भी मै हिन्दू धर्म को अपनाए रहा। मेरा विश्वास अपने धर्म मे आज भी उतना ही प्रबल है, जितना कि मेरे बचपन में था। मेरा यह विश्वास है कि परमात्मा मुझे उस धर्म की रक्षा करने का साधन बनायेगा जिसे मै प्रेम करता हूं, जिसका पालन करता हूं और जिसका मैने अभ्यास किया है।"

यद्यपि गाधीजी ने इस धर्म का साहस और स्थिरता के साथ पालन किया था, तथापि उनमे एक असाधारण विनोदी भाव था, एक प्रकार की खुश-मिजाजी, शायद विनोदी तबियत थी जिसे हम प्राय. कट्टर धार्मिक आत्माओ के पास नही देखते है। यह विनोदीपन उनके हृदय की पवित्रता और आत्मा की स्वच्छदता का परिणाम था। जीवन के अति साधारण और चचल क्षणो तक में उनकी दूरदर्शिता एक क्षण के लिए भी ओझल नही होती थी। जीवन की बुराइयाँ और कुटिलताए वस्तुओ की अच्छाई पर से उनके विश्वास को नही डिगा सकती थी। उन्होने विना किसी वाद-विवाद के मान रखा था कि उनका जीवन-क्रम स्वच्छ, सही और प्राकृतिक था जबकि इस यान्त्रिक औद्योगिक सभ्यता के युग मे हमारी जिन्दगी और रहन-सहन अप्राकृतिक, अस्वास्थ्यकर और गलत हो गये थे।

गाधीजी का धर्म अत्यन्त व्यावहारिक धर्म था। ऐसे भी धार्मिक व्यक्ति होते है, जो दुनिया की मुसीबतो और परेशानियो से बुरी तरह घिर जाने पर अपना मुह छिपाकर मठो या पहाडो की गुफाओ मे चले जाते है और वही अपने हृदयो में जलनेवाली पवित्र आग की रक्षा करते है। यदि सत्य, प्रेम और न्याय दुनिया में नही मिलते तो हम इन गुणो को अपनी आत्मा के पवित्र मदिर मे प्राप्त कर सकते है। गाधीजी के लिए पवित्रता और मानव-सेवा अभिन्न थे। "मेरी विचार-प्रणाली कुछ धार्मिक ही रही है। मै उस समय तक धार्मिक जीवन नही बिता सकता जबतक

कि मानव-मात्र से मैं अपना तादात्म्य स्थापित न कर लू। और यह मैं उस समय तक नहीं कर सकता जबतक कि मैं राजनीति में भाग न लूं। मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापो का विस्तार आज टुकडो मे नही बांटा जा सकता है। आज आप सामाजिक, राजनैतिक और पूर्णत धार्मिक कार्यों को किन्ही अभेद्य खडो मे वाट नही सकते। मानव कर्म से भिन्न मै किसी धर्म को नही जानता। सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में खीचा है और बिना किसी संकोच के, परन्तु नम्रता के साथ, मै मानता हू कि जो लोग यह कहते है कि धर्म का राजनीति से कोई सवध नहीं वे वास्तव मे धर्म के अर्थ को समझते ही नही।" इसमे से बहुत-से लोग जो अपनेको धार्मिक कहते है वे धर्म के एक बाहरी रूप का ही व्यवहार करते है। हम मशीन की तरह इसके रीति-रिवाजो का पालन करते है और विना समझे इसके विश्वासो के आगे सिर झुका देते है। हम उन बाहरी शक्लो से ऐसे सहमत हो जाते है मानो वह सहमति हमें सामाजिक और राजनैतिक सुविधाएं दिलाती हो। हम रोज ईश्वर का नाम लेते है और अपने पडोसियो से घृणा करते है। खोखले वाक्यो और दिमागी अभि-मान से अपनेको धोखा देते है। गाधीजी के लिए धर्म का आत्मजीवन के साथ एक भावनापूर्ण योग था। वह अत्यन्त व्यावहारिक और गतिशील था। वे दुनिया के दु ख के प्रति अति समवेदनशील थे और चाहते थे कि हर आँख का हर आसू वे पोछ सके। वे सपूर्ण जीवन की पवित्रता में विश्वास करते थे। धर्म-शून्य राजनीति उनके लिए एक ऐसे "शव के समान थी जो केवल दाह किये जाने के ही योग्य" हो।

वे राजनीति को धर्म और आचार-शास्त्र का ही एक अग मानते थे। उनका खयाल था कि यह सघर्ष केवल शक्ति और धन के लिए ही नही है, वरन् यह एक ऐसा अथक और अनवरत प्रयत्न है कि जिससे लाखो पीडित अच्छा जीवन प्राप्त कर सके, मनुष्यो का गुणात्मक स्तर ऊचा हो सके, स्वतन्त्रता और साहचर्य, आध्या-त्मिक गाभीर्य और सामाजिक एकता की शिक्षा दी जा सके। कोई भी राजनीतिज्ञ जो इन उद्देश्यो की पूर्त्ति के लिए कार्य करता है, धार्मिक हुए विना नही रह सकता। वह सभ्यता के निर्माण में नैतिकता के सहयोग की उपेक्षा नही कर सकता और न ही अच्छाई के स्थान पर बुराई का समर्थन कर सकता है। जीवन की भौतिक वस्तुओ से लिप्त न होने के कारण वे उनमे परिवर्तन करने के योग्य थे। सिद्ध व्यक्ति या खलीफा इतिहास से स्वय तटस्थ रहकर इतिहास का निर्माण करते हैं।

किसी भी आदमी के लिए सारी दुनिया को सुधारना धृष्टता होगी। जहाँ वह है वही से उसका काम शुरू होना चाहिए। जो काम उसके सबसे नज़दीक

है वही काम-उसे पहले लेना चाहिए। अफ्रीका से वापस आने पर जब गांधीजी ने भारतीयो को कुचले हुए अभिमान, भूख, क्लेश और पतन से पीडित पाया तो उन्होने उनके मुक्ति-कार्य को एक चुनौती और सुयोग समझकर तत्काल हाथ में ले लिया। कमजोर का अत्याचार के आगे झुकना और वलवान का और अधिक दवाते जाना दोनो गलत हैं। उनका विश्वास था कि विना राजनैतिक स्वतत्रता के कोई भी उन्नति सभव नही। पराधीनता से मुक्ति, गुप्त संगठनो, सशस्त्र क्रातियो, आग लगाने और मारकाट के सामान्य तरीको से नही प्राप्त करनी चाहिए। स्वाधीनता का रास्ता न तो गिडगिडाकर विनती करने का रास्ता है और न क्राति-कारी हिंसा का। स्वाधीनता किसी राष्ट्र पर तोहफे की शकल में ऊपर से नही टपकती, वरन् उसके योग्य वनने के लिए उन्हें यत्न करना पडता है। महात्मा बुद्ध ने कहा था, "तुम जो कष्ट भोग रहे हो यह समझो कि तुम अपने आप ही भोग रहे हो और कोई तुम्हे इसके लिए वाध्य नही करता।" आत्मशोधन में ही स्वाधीनता का सच्चा मार्ग छिपा है। वल या जोर कोई उपाय नही है। ऐसी परिस्थितियो में वल का प्रयोग एक अशिष्ट या मलिन खेल है। आत्मशक्ति अजेय है। गाधीजी कहते थे, "अग्रेज चाहते है कि हम अपने सघर्ष को मशीनगनो के स्तर पर लायें। परन्तु उनके पास शस्त्र है, हमारे पास नही है। उनके हिसाव से हम उन्हें तभी हरा सकते हैं जव हम ऐसे स्तर पर वने रहे जहा हमारे पास हथियार हो और उनके पास न हो।" गलत वात को सहन करते समय हमे उस उदारता से उसका मुकावला करना चाहिए जो जुल्म करनेवालो को चोट पहुँचाने तथा घृणा करने से हमें रोकती है। यदि हम अपने भीतर सपूर्ण साहस को इकट्ठा कर सके तो आततायी के भीतर छिपा हुआ मनुष्यत्व हमारी अपील का विरोध नही कर सकता। विदे-शियो द्वारा शताब्दियो से कुचली गई जातियो को उन्होने एक नया आत्म-सम्मान, एक नया आत्म-विश्वास और शक्ति का एक नया भरोसा दिया। उन्होने ऐसे सामान्य स्त्री-पुरुषो को लिया, जो वीरता और दभ की, महानता और तुच्छता की अप्रामाणिक खिचडी थे। इनके भीतर से ही वीरो का निर्माण किया और अग्रेजी शक्ति के विरुद्ध अहिंसक क्राति का सगठन किया।

उन्होने देश को विप्लव और रक्त-क्राति से मुक्ति दिलाई और राजनैतिक आत्मा को नष्ट हो जाने से वचा लिया। भारत के स्वाधीनता-सग्राम में कई ऐसे अवसर आये जव उन्होने ऐसे साधनो को अपनाया जो केवल एक कोरे राजनीतिज्ञ की नज़र में वुद्धिमत्तापूर्ण न थे। ऐसे वडे नेता भी है, जो व्यक्तियो को अपने में मिलाने

के लिए उनके सामने झुकना और चापलूसी करना भी जानते है। यद्यपि वे अपनी दृष्टि अपने लक्ष्य पर केंद्रित रखते है, तथापि वे लक्ष्य तक पहुचने के साधनो के विषय मे चिन्ता नही करते; किन्तु गाधीजी मे यह बात न थी। "यदि भारत हिंसा के सिद्धान्तो को अपनाता है तो वह अस्थायी विजय भले ही प्राप्त कर ले, लेकिन तव वह मेरे हृदय का गर्व नही रहेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत को दुनिया के लिए एक सदेश देना है। लेकिन यदि भारत ने हिंसात्मक साधनों को अपनाया तो यह परीक्षा का समय होगा। मेरा जीवन अहिसा-धर्म द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित है, जिसे मै हिन्दू धर्म की बुनियाद मानता हूँ।" उन्होने असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने का उस समय आदेश दिया था जब उन्होने स्वय देख लिया कि उनके लोग उनके उच्च आदर्शो पर टिकने के काबिल नही है। आन्दोलन बन्द करके इस प्रकार उन्होने अपनेको विरोधियो की आलोचना का लक्ष्य बनाया। "हमारे इस अपमान पर, जिसे पराजय भी कहा जा सकता है, विरोधियो को खुशी मना लेने दो। कायरता का आरोप सहन करना अपनी शपथ तोडने और ईश्वर के खिलाफ पाप करने से अधिक अच्छा है। अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने की अपेक्षा दुनिया की हँसी का पात्र बनना लाख दर्जे अच्छा है। मै जानता हूँ कि समस्त आक्रमणात्मक योजनाओ का यह तीव्र परिवर्तन राजनैतिक दृष्टि से अविवेकपूर्ण और गलत हो सकता है। लेकिन इसमें कोई सदेह नही कि धार्मिक दृष्टि से यह विलकुल ठोस है।" जो नैतिक रूप से गलत है वह राजनैतिक रूप से ठीक नही हो सकता। ८ अगस्त १९४२ की शाम को 'भारत छोडो' प्रस्ताव अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने पास किया तो गाधीजी ने कहा था, "हमें दुनिया का सामना शात और साफ निगाहो से करना है, हालाकि दुनिया की आँखे आज रक्तपूर्ण है।" ववई मे जव नौ-सेना-उपद्रव आरम्भ हुआ तो गाधीजी ने इसके संगठन करनेवालो को यह कहकर वुरा-भला कहा था कि "चारो ओर घृणा का वातावरण छाया हुआ है। अधीर देश-प्रेमी यदि उनके लिए सभव हुआ तो हिंसात्मक तरीके से देश की आजादी की लड़ाई को आगे वढाने मे इसका वडी आसानी से फायदा उठा सकते है। मै सलाह दूगा कि यह नीति किसी भी समय और हर जगह गलत और अशोभनीय है, खास तौर पर ऐसे देश के लिए, जिसकी आजादी के लडनेवालो ने दुनिया के सामने यह घोषणा कर रखी है कि उनकी नीति सत्य और अहिंसा की है।" उनका दृढ विश्वास था कि हिंसा की प्रवृत्ति एक अवशेष मात्र है, जो कुछ समय मे स्वयं अपने को खत्म कर लेगी। भारत की भावना के यह सर्वथा विरुद्ध है। "मैने भारत की

आजादी के लिए जीवनभर कोशिश की है, लेकिन यदि इसे सिर्फ हिंसा द्वारा ही पाया जा सकता है तो मै इसे पाना नही चाहूगा। स्वाधीनता प्राप्त करने के साधन उतने ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि स्वय साध्य।" अनैतिकता द्वारा प्राप्त भारत की स्वाधीनता वास्तव में स्वाधीनता नही हो सकती। उन्होने भारत मे भी अफ्रीका की तरह ही जमी हुई सरकार के विरुद्ध बिना किसी जातीय भावना के दवाव के बडी शांति के साथ आन्दोलन का सचालन किया। १५ अगस्त १९४७ का दिन हमारे सघर्ष की समाप्ति का दिन है। यह सघर्ष सद्भावना और दोस्ती के वातावरण में तय होनेवाले समझौते मे खत्म हुआ।

गाधीजी के लिए स्वाधीनता केवल एक राजनैतिक तथ्यमात्र न थी। यह एक सामाजिक सचाई भी थी। वे भारत को विदेशी शासन से नही, अपितु सामाजिक कुरीतियो और साम्प्रदायिक झगड़ो से भी मुक्ति दिलाने के लिए लडे थे। "मै एक ऐसे भारत के लिए काम करूगा, जिसमें गरीब-से-गरीब भी यह महसूस करे कि यह देश उसका है और इसके निर्माण में उसकी जोरदार आवाज़ है। ऐसे भारत मे, जिसमें ऊच-नीच वर्गों का भेद नही होगा, जिसमे सभी जातियां मेल-मिलाप के साथ रहेंगी, छुआछूत और नशेबाजी के लिए कोई स्थान नही होगा। स्त्रियो और पुरुषो के समानाधिकार होगे। हम शेष दुनिया के साथ शाति-सबध कायम करेंगे, न शोषण करेंगे और न शोषण होने देंगे; और इसलिए हमारी सेना इतनी कम होगी, जिसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता। ऐसे तमाम हितो का जो लाखो भोले-भाले लोगो के हितो के विरुद्ध नही है, उदारता के साथ आदर किया जायगा। व्यक्तिगत तौर पर मैं स्वदेशी और विदेशी के भेद से घृणा करता हूँ। यह है मेरे स्वप्नो का भारत।"

किसी भी राष्ट्र के स्वप्नो की पूर्ति केवल राजनैतिक स्वाधीनता से नही होती। वह राष्ट्र के जीवन में एक नई जागृति के लिए क्षेत्र और अवसर प्रदान करती है। आजाद हिन्दुस्तान विवेकशील व्यक्तियो का एक ऐसा देश बने, जो सच्ची सभ्यता के मूल्यो को, शाति को, व्यवस्था को, मनुष्य के प्रति सद्भावना को, सत्य के प्रति प्रेम को, सौंदर्य की खोज को, और बुराई के प्रति घृणा को प्रेम करे। यदि हम अपने साथियो से उस अधिकार के लिए लडते है, जो रुपया कमा सकता है और जीवन को अधिक भद्दा बना सकता है, तो इसका अर्थ यह होता है कि हमने जीवन के सौंदर्य और सभ्यता के गौरव को नष्ट कर दिया है।

गाधीजी भारतीय समाज को सच्चे अर्थ मे स्वतंत्र बनाना चाहते थे, इसी-

लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम के बीच मे उन्होने चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकता को हमेशा रखा था। स्वतन्त्रता उस समय तक केवल मजाक है जबतक कि लोग भूखे मरे, नगे रहे और असह्य पीड़ा से सूखते रहे। चरखा जन-साधारण को गरीबी, अज्ञान, बीमारी और गदगी से मुक्ति दिलाने में सहायता करेगा। लाखो व्यक्ति यदि अपने पर लादे गये आलस्य को दूर नही कर सकते तो राजनैतिक स्वाधीनता का उनके लिए कोई मूल्य नही। हिन्दुस्तान की आबादी के ८० प्रतिशत लोग छ महीने तक अनिवार्यत बेकार रहते है। ऐसे उद्योगो को, जिन्हे भुलाया जा चुका है, पुनर्जीवित कर, आमदनी का जरिया बनाना होगा। इसी तरह हम उनकी सहायता कर सकते है। गाधीजी कृषि के पूरक काम के रूप में चरखे के इस्तेमाल पर हमेशा ज़ोर देते थे।

चरखा जीवन के बढते हुए यंत्रीकरण पर एक रोक का काम भी करता है। यंत्रो का ज्यादा-से-ज्यादा व्यवहार करनेवाले समाज मे मनुष्यो के मस्तिष्क जीवित अगो की तरह नही, बल्कि कलो की तरह काम करते है। वे बडे पेचीदे सगठनो, उद्योगपतियो के गुट्टो और मजदूर-सगठनो पर निर्भर रहते है और उनके निर्णयो पर वे अधिक प्रभाव नही डाल सकते। इसके अलावा पूरा काम न करके केवल उसका एक हिस्सामात्र करने से लाखो लोगो की स्वाभाविक रचनात्मक सूझ दब जाती है। जब हम किसी काम को समाज के एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह नही कर पाते तो उस काम के करने में हमें सन्तोष नही होता। हम अपने जीवन से ऊब जाते है। हमारी जिन्दगी व्यर्थ हो जाती है और तब उत्तेजना और महत्त्वपूर्ण अनुभव की कमी को पूरा करने के लिए हम पाशविक क्षति-पूर्त्ति के उपायो का सहारा खोजते है। यन्त्रीकरण-प्रधान-समाज मे धनी और गरीब दोनो दु खी रहते है। धनी स्त्री और पुरुषो को अपनी आध्यात्मिक मृत्यु का स्थूल भान होने लगता है, मानो उनकी आत्मा जड़ और गतिशून्य हो गई हो। बुड्ढे लोग भूखो मरने लगते है, क्योकि उन्हे तबतक काम करने के लिए विवश होना पडता है जबतक कि वे और अधिक काम न कर सके। स्त्रियो को दमतोड मेहनत के काम करने पडते है।

गाधीजी ने ग्रामो की परम्परागत सभ्यता को जीवित रखने के लिए संघर्ष किया; क्योकि यह सभ्यता ऐसे लोगो की जीवित एकता की प्रतीक थी, जो सामजस्य-पूर्वक एक ऐसे धरातल पर पारस्परिक सबध के कार्यों में समान जीवन और विश्व की समान भावना द्वारा जुडे थे।

अधेरा और गदगी, बदबू और सड़ी हवा, तथा बुखार और बच्चो के रोगों

से भरे बडे घने बसे शहरो की अपेक्षा खुले मैदानो और हरी पत्तियोवाले गावो में मनुष्य की महत्वाकाक्षी आत्मा अपनेको अधिक स्वस्थ और स्वतत्र अनुभव करती है। गाव-समूह मे लोग अपनेको जिम्मेदार व्यक्ति मानते है, क्योकि वे बडे प्रभावपूर्ण ढग से ग्राम-जीवन मे योग देते है। शहर में जाकर बसने पर ये गाववाले अपने को बेचैन, उत्साह-शून्य और बेकार समझने लगते है। किसानो और बुनकरों की जगह यंत्रो और व्यापारियो ने ले ली है, जहाँ जीवन की थकान को दूर करने के लिए उत्तेजनात्मक मनोविनोद रचे जाते है। ऐसी अवस्था में कोई आश्चर्य नही कि जीवन के इस मरुस्थल मे मनुष्य का सारा उत्साह खत्म हो जाता है। यदि हम समाज का मनुष्यता के आधार पर संगठन और जीवन के सभी कामो और संबधों में नैतिक प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते है तो हमें विकेन्द्रित ग्राम-अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना होगा, जिसमे मशीन का उपयोग केवल उसी सीमा तक किया जा सके जिस सीमा तक वह समाज के मौलिक ढाचे और मनुष्य की आत्मा की स्वतत्रता में बहुत बाधक न हो।

गाधीजी मशीनरी का मशीन होने के नाते बहिष्कार नही करते थे। इस विषय मे उन्होने स्वय कहा है, "जब मै यह जानता हूँ कि यह शरीर स्वयं यत्रो का एक नाजुक समूह है तब मै मशीन के खिलाफ कैसे हो सकता हूँ? चरखा एक मशीन है। छोटी-सी खरिका (दाँत-कुरेदिनी) भी एक मशीन है। अत. मै तो मशीन के लिए पागल बनने की वृत्ति का विरोधी हूँ, स्वय मशीन का नही। यह पागलपन उनके कथनानुसार श्रम-शक्ति के बचाने के लिए है। लोग इस श्रम-शक्ति को बचाने की धुन मे यहाँतक आगे बढ जाते है कि हजारो लोग बेकार होकर खुली सडको पर पडकर भूखो मरने लगते है। "मै समय और श्रम दोनो की बचत करना चाहता हूँ, लेकिन मानव-जाति के किसी एक अश के लिए नही, वरन् सबके लिए। मै चाहता हूँ कि पूजी का सचय कुछ हाथो मे न होकर सब हाथो में हो। मशीन आज केवल कुछ व्यक्तियो को लाखो लोगो की पीठ पर सवार होने में सहायता पहुँचाती है। इस सबके पीछे मेहनत बचाने की कल्याण-भावना नही, वरन् लालच है। अपनी समस्त शक्ति के साथ वस्तुओ की इस व्यवस्था के विरोध में मै लड रहा हूँ। मशीनो को मनुष्य की हड्डियो को चूसने का काम नही करने देना है। बिजली द्वारा सचालित कारखानो का राष्ट्रीयकरण अथवा राजनियत्रण होना चाहिए। इस कार्य में सबसे अधिक ध्यान मनुष्य का रहना चाहिए।"

"यदि गाव-गाव में, घर-घर मे हम बिजली दे सकते है तो गाववाले अपने औजारों

को बिजली से चलायें। इसका विरोध मैं न करूंगा। परन्तु ऐसी अवस्था मे ग्राम-पंचायतें या राज्य उन बिजलीघरो की मालिक होगी, जैसे गाव के चरागाहो का स्वामित्व गाव का होता है। सार्वजनिक उपयोग की ऐसी बडी मशीनो का भी, अपना अनिवार्य स्थान है जिन्हे मनुष्य के श्रम से चालू किया जा सकता है, लेकिन ऐसी सभी मशीनो पर सरकार का नियत्रण रहेगा और वे सब जनता के हित में ही इस्तेमाल की जायगी।" धार्मिक और सामाजिक सुधारक के रूप में गाधीजी ने हमें प्रचलित सामाजिक कुरीतियो के खिलाफ एड लगाकर सावधान कर दिया। उन्होने हमे यह सलाह दी कि हम धर्म को उन व्यर्थ की बातो से छुटकारा दिलायें जिन्होने बहुत दिनो तक उसके चारो ओर इकट्ठे होकर उसे बोझिल बना दिया है। ऐसी बातो मे अस्पृश्यता का प्रमुख स्थान है। अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने से हिन्दू धर्म को बहुत बडी कीमत चुकानी पडी है। नये भारत के संविधान का उद्देश्य समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था कायम करना है, जिसमे सदाचार और स्वातत्र्य के आदर्श आर्थिक और राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक सस्थाओ को स्फूर्ति प्रदान करे।

गाधीजी के नेतृत्व मे अखिल भारतीय काग्रेस ने भारत के भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियो मे मैत्रीपूर्ण सबध एव असाम्प्रदायिक लोकशाही स्थापित करने के लिए कार्य किया। उन्होने एक स्वतत्र और सगठित भारत के लिए यत्न किया। उनकी विजय का क्षण उनके लिए बडी दीनता का समय हो गया। देश का विभाजन बडी ही दु खदायी भूल थी और घोर निराशा के चगुल मे फसकर, साम्प्रदायिक खून-खराबी से थककर—जिसने पिछले कुछ महीनो से देश के मुख पर कालिख पोत रखी थी, पीडितो और भगाये हुए लोगो को राहत पहुंचाने के ख्याल से—अपने उचित निर्णय और गाधीजी की सलाह के बावजूद हम भारत-विभाजन के सामने झुक गये। कितना भी पश्चाताप अब उस खोये हुए अवसर को वापस नही ला सकता। एक क्षण की भूल को सुधारने के लिए हमे वर्षों तक दु ख सहकर प्रायश्चित्त करना पड सकता है। हम जो कुछ बनाना चाहते थे, वह नही बना सकते। अब तो जो कुछ बना सकते है, वही बन सकेगा। भारत-विभाजन जैसे महत्त्वपूर्ण निर्णयो को लोग उचित मान दे सकें इसके लिए इतिहास की शताब्दिया गुजर जायगी। भविष्य को देखने की ताकत हमे नही मिली है तो भी इस समय तो विभाजन की कीमत साम्प्रदायिक शाति स्थापित नही कर सकी; बल्कि एक तरह से इसने साम्प्रदायिक कटुता को और बढा दिया है।

/१५ अगस्त को नई दिल्ली में मनाये गये समारोहो में गाधीजी ने भाग नही लिया। उन्होने इसके लिए क्षमा मागी। उस समय वे बगाल के गावो के सुनसान रास्तो पर पैदल चलते हुए गरीबो को सान्त्वना दे रहे थे और उनसे हाथ जोडकर विनती कर रहे थे कि वे अपने हृदयो से सदेह, कटुता और घृणा की भावना को बिलकुल निकाल दे। असख्य आदमियो का अपना देश छोडना, हजारो थके-मादे घरो से निकाले हुए बे-घर लोगो का चिन्ता मे डूबे हुए इधर-उधर भटकना, साम्प्रदायिक हिंसा का हैवानी दौर और सबसे भयकर चारो ओर फैलने वाला आध्यात्मिक पतन, सदेह, क्रोध, शका, वहम और निराशा को देखकर गाधीजी का हृदय दु ख मे डूब गया। इन सब बातो से दु खी होकर अपने शेष जीवन को इस समस्या के मनोवैज्ञानिक हल खोजने मे लगाने का निश्चय किया। कलकत्ता और दिल्ली मे किये गये उनके उपवासो का बडा गहरा प्रभाव पडा। लेकिन बुराई इतनी गहरी थी कि इतनी आसानी से उसका इलाज होना कठिन था। २ अक्तूबर १९४७ को अपने ७८ वे जन्म-दिवस पर उन्होने कहा था, "मै अपनी हर सास के साथ परमात्मा से यह प्रार्थना करता हूं कि या तो मुझे इस आग को शांत करने की शक्ति दे या मुझे इस दुनिया से उठा ले। मै, जिसने भारत की आजादी के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा दी, वह स्वयं इस खून-खराबी का एक जीवित गवाह नही बनना चाहता।"/

जब मै अन्तिम बार उनसे दिसम्बर १९४७ के शुरू मे मिला तो मैने उन्हे घोर पीडा में पाया। उस समय वे सम्प्रदायो के आपसी सबधो को सुधारने का या इस काम को करते हुए अपनी आहुति देने का निश्चय कर चुके थे। १२ जनवरी १९४८ को दिल्ली में अपनी प्रार्थना-सभा मे इस उपवास की सूचना देते हुए गाधीजी ने कहा था, "कोई भी इंसान जो पवित्र है अपनी जान से ज्यादा कीमती चीज कुर्बान नही कर सकता। मै आशा रखता हू और मै प्रार्थना करता हूं कि मुझमे उपवास करने के लायक पवित्रता हो। जब मुझे यह यकीन हो जायगा कि सब कौमो के दिल मिल गये है और वह बाहर के दबाव के कारण नही, मगर अपना-अपना धर्म समझने के कारण, तब मेरा उपवास टूटेगा।/आज हिन्दुस्तान का मान सब जगह कम हो रहा है। एशिया के हृदय पर और उसके द्वारा सारी दुनिया के हृदय पर हिन्दुस्तान का रामराज्य आज तेजी से गायब हो रहा है। अगर इस उपवास के निमित्त हमारी आखें खुल जाय तो यह सब वापस आ जायगा। मै यह विश्वास रखने का साहस करता हू कि अगर हिन्दुस्तान की

अपनी आत्मा खो गई तो तूफानों से दुखी और भूखी दुनिया की आशा की आंख की किरण का लोप हो जायगा।'.... मेरी सबसे यह प्रार्थना है कि वे उपवास पर तटस्थ वृत्ति से विचार करें और यदि मुझे मरना ही है तो मुझे शांति से मरने दे। मैं आशा रखता हूं कि शांति तो मुझे मिलने ही वाली है। हिन्दू धर्म का, सिख धर्म का और इस्लाम का बेबस बनकर नाश होते देखना इसकी निस्बत मृत्यु मेरे लिए सुन्दर रिहाई होगी।.... जरा सोचिये तो सही, आज हमारे प्यारे हिन्दुस्तान मे कितनी गदगी पैदा हो गई है! तब आप खुश होगे कि हिन्दुस्तान का एक नम्र पूत, जिसमे इतनी ताकत है, और शायद इतनी पवित्रता भी है, इस गंदगी को हटाने के लिए ऐसा कदम उठा रहा है, और अगर उसमें ताकत और पवित्रता नही है तब वह पृथ्वी पर बोझ रूप है। जितनी जल्दी वह उठ जाय और हिन्दुस्तान को इस बोझ से मुक्त करे, उतना ही उसके लिए और सबके लिए अच्छा है।"[1] उनकी मृत्यु इसी समय हुई जब वह इस महान् कार्य मे सलग्न थे। महात्माओ को यह दड भोगना ही पडता है और इसीलिए वे जीवन को दुख और कष्ट में ही खत्म कर देते है, ताकि उनके बाद आने वाले लोग अधिक शांति और सुरक्षा से रह सके।[2]

अपने ही पिछले दुष्कर्मो में हम पूरी तरह उलझे हुए हैं। अपने नीति-शास्त्र के सिद्धान्तो को तोड़-मोड़कर जो जाल हमने स्वय बुनकर तैयार किया है, हम उसमें स्वय फसते जा रहे है। साम्प्रदायिक मतभेद अभी तक एक घाव

---

१. 'प्रार्थना-प्रवचन', भाग २, पृष्ठ २९०-२९१

२. राबर्ट स्टीमसन ने संवाददाताओं से बातचीत करते हुए ३१ जनवरी को कहा था, ".... मैं उन आठ मुसलमान मजदूरो को याद रखूंगा, जिन्होंने यमुना के निकट सामान्य हरे मैदान में चिता तैयार करने म सहायता की थी। इन मजदूरों ने चिता पर चन्दन की लकड़ियां रखते हुए मुझे बताया कि वे महात्माजी से प्रेम करते थे, क्योकि वे मुसलमानों के सच्चे दोस्त थे। वहां एक अछूत भी था, जिसने चिता तैयार होने से पूर्व एक टहनी उठाई और यह विचार करते हुए कि उसे कोई देख नहीं रहा है, वह लुकछुप कर आगे बढ़ा और उसने वह टहनी उस ईंधन के ऊपर रख दी, जो वहां पहले से ही रखा हुआ था और तब एक बहुत ही हल्के स्वर में उसने कहा, "बापू मुझे और मेरी जाति को आशीर्वाद दीजिए।" 'लिसनर', ५ फरवरी १९४८, पृष्ठ २०६

की शक्ल में है। वह पीव का फोडा नही बना है, लेकिन घाव में पीब पडने की सभावना रहती है। यदि उस सभावना को रोकना है तो हमे उन आदर्शों का पालन करना होगा, जिनके लिए महात्मा गाधी जिये और मरे। हमे आत्म-सयम पैदा करना होगा। हमे क्रोध, द्वेष, विचार और वाणी की अनुदारता एव हर प्रकार की हिंसा से बचना होगा। यदि हम अच्छे पडोसियों की तरह रहते हुए अपनी समस्याओ को शाति और सद्भावना के साथ सुलझा लेते है तो उनके जीवन-कार्य का यह सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार होगा। उनकी पुण्यस्मृति मनाने का सब से अच्छा रास्ता यह है कि हम उनके दृष्टिकोण को एवं सभी मतभेदो को दूर करने के लिए सहानुभूतिपूर्ण समझौते के रास्ते को अपनायें, उसपर अमल करें।

लोग जब इस सघर्ष को भूल जायगे, उस समय भी गाधीजी दुनिया मे नैतिक और आध्यात्मिक क्रान्तिदूत की तरह हमेशा जीवित रहेंगे, जिसके बिना पथ-भ्रष्ट दुनिया को शाति नही मिलेगी। ऐसा कहा जाता है कि अहिंसा बुद्धिमानो का स्वप्न है और हिंसा मनुष्य का इतिहास। यह सच है कि युद्ध स्पष्ट और नाटकीय होते है और इतिहास की दिशा को बदलने मे उसके नतीजो का बडा साफ और महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, किन्तु एक ऐसा सघर्ष है जो हमेशा जनता के दिमाग मे चलता रहता है। उसके नतीजो को मृत और घायलो के आकडो में नही लिखा जाता। यह सघर्ष मानवीय शालीनता के लिए, उन भौतिक युद्धो को टालने के लिए जो मानव-जीवन को अवरुद्ध करते है और युद्धविहीन दुनिया के लिए किया जाता है। इस महान् सघर्ष के योद्धाओ में गाधीजी अग्रगण्य थे। उनका सदेश बुद्धिवादी लोगो के शास्त्रीय विवाद का विषय नही, यह पीडित मानव की आर्त पुकार का उत्तर है, जो आज ऐसे चौराहे पर खडा है, जहा प्रेम के अथवा जगली कानूनो के द्वार खुलते है। यदि यह सत्य कि प्रेम घृणा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, सिद्ध नही हो सका तो हमारे समस्त विश्व-संगठन व्यर्थ सिद्ध होगे। दुनिया केवल इसीसे एक नही हो सकती कि हम उसका चक्कर एक दिन में पूरा कर लेते है। कितनी ही दूर या कितने ही तेज हम क्यो न चलें, हमारे दिमाग हमारे पडोसियो के नजदीक नही जाते। हमारी आकाक्षाओ और हमारे कार्यो की एकरूपता ही सच्चे अर्थ में विश्व-एकता है। सगठित विश्व आध्यात्मिक एकता का ही भौतिक प्रतिरूप है। यत्रवत् अस्थायी व्यवस्थाओ एव वाह्य सगठनो द्वारा आध्यात्मिक परिणाम प्राप्त नही किये जा सकते। सामाजिक ढाचो का परिवर्तन जनता के दिमाग को नही बदलता। युद्धो की जड़ बनावटी

मूल्याकन, अज्ञान और असहिष्णुता में होती है। गलत नेतृत्व के कारण ही दुनिया इस मुसीवत मे पडी है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो सारे ससार मे सभ्य गुणो पर काला पर्दा पड रहा है। वडे-वडे राष्ट्र एक-दूसरे के शहरो पर विजय प्राप्त करने के लिए बमवारी करते है। अणुवम के प्रयोग का नैतिक प्रभाव वम से भी कही अधिक घातक सिद्ध हो सकता है। दोष भाग्य का नही, हमारा अपना है। जवतक हम अपनी आत्मा का पालन करना और भ्रातृ-स्नेह वढाना नही सीखते तवतक सस्थाओ का कोई लाभ नही। जवतक दुनिया के नेता अपने उन ऊचे पदो मे नही, वल्कि स्वय अपनी आत्मा की गहराई मे, अन्त करण की स्वच्छता मे और खुद में सर्वोत्कृष्ट मानवीय महानता को नही तलाश करते तवतक दुनिया में स्थायी शान्ति की कोई आशा नही। गाधीजी का यह विश्वास था कि दुनिया अपने मूल मे और उच्चतम आकाक्षाओ मे एक ही है। वे जानते थे कि ऐतिहासिक मनुष्यता का एकमात्र उद्देश्य एक विश्व-सभ्यता, एक विश्व-सस्कृति और एक ही विश्व-समुदाय था। मनुष्यो के हृदयो मे वुरी तरह घिरे अधकार के स्थान पर समझदारी और सहिष्णुता को प्रसारित करके ही हम दुनिया के दुख से छुटकारा पा सकते है। गाधीजी का करुणार्द्र और सन्तप्त हृदय उस विश्व की घोषणा करता है जिसके लिए सयुक्त राष्ट्र सघ भी प्रयत्नशील है। विलीन होने वाले भूत का यह एकाकी प्रतीक नवीन जन्म के लिए सघर्ष करनेवाली दुनिया का भी दूत है और इसी प्रकार वे भावी मानव की अन्तरात्मा का प्रतिनिधित्व भी करते है।

गाधीजी के लिए सत्य ही शाश्वत है। वही मानवात्मा मे निहित परमात्मा का स्वरूप है। यह तलवार से अधिक शक्तिशाली है। सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू है। यदि हम पदार्थवाद की अपेक्षा आत्मा की श्रेष्ठता को और नैतिक विधान की प्रधानता को स्वीकार कर ले तो हम नैतिक शक्तियो द्वारा वुराई पर विजय प्राप्त कर सकते है। हिंसा सत्य की भावना से कोसो दूर रहने वाले व्यक्तित्व की अन्तिम अभिव्यक्ति है। जव कोई आदमी हिंसा की आखिर में नही, शुरू मे ही शरण लेता है तो उसे अपराधी या पागल या दोनो ही कहा जाता है। अहिंसा पार्थिव जीवन तक ही सीमित नही, वह मस्तिष्क का भी एक रूप है। औरो का वुरा सोचना और झूठ वोलना दोनो ही हिंसा-कार्य है। अहिंसा अथवा सत्याग्रह गाधीजी के लिए नकारात्मक मन स्थिति का सूचक न था। वह एक यथार्थ और गतिशील विचार का प्रतीक है। यह वुराई के सामने झुक

जाना या प्रतिरोध न करना नही है। यह प्रेम द्वारा उसका प्रतिरोध करता है। आत्मा की, सत्य की और प्रेम की उस शक्ति मे विश्वास करने का नाम ही सत्याग्रह है, जिससे हम आत्म-त्याग और आत्म-क्लेश द्वारा बुराइयो पर विजय प्राप्त करते है। यह स्वतन्त्रता और शांति के लिए किये गये सासारिक प्रयत्नो को एक नया अर्थ देता है। हमें स्वय कष्ट सहना चाहिए। दूसरो पर इसको नही लादना चाहिए। सत्याग्रह आत्म-निर्भर है। अमल मे लाये जाने से पहले यह विरोधी की स्वीकृति नही चाहता। प्रतिरोध करनेवाले विरोधो के सामने इसकी शक्ति और ज़ोर के साथ प्रकट होती है। अत इसे कोई रोक नही सकता। सत्याग्रही यह नही जानता कि पराजय क्या होती है, क्योकि वह अपनी शक्ति का ह्रास किये विना सत्य के लिए लडता है। इस सघर्ष मे मृत्यु पाना मुक्ति है, और जेल आज़ादी के लिए खुले द्वार का काम करती है। चूकि सत्याग्रही अपने विरोधी को कभी चोट नही पहुँचाता, वह या तो नम्र तर्कों द्वारा उसकी विवेक-बुद्धि से, या आत्म-त्याग द्वारा उसके हृदय से प्रार्थना करता है। इसलिए सत्याग्रह दोनो को मगलकारी होता है। यह करने वाले का भी मगल करता है और जिसके खिलाफ इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी मगल करता है।

"मेरी अहिंसा का साधन एक जीवित शक्ति है। इसम कायरता या कमजोरी के लिए कोई भी जगह नही है। एक हिसक के लिए किसी दिन अहिंसक वन जाना सभव है, लेकिन डरपोक के लिए नही। इसीलिए मैंने इन पृष्ठो में कई वार कहा है कि यदि हम अपनी स्त्रियो की और अपने पूजा के स्थानो की रक्षा कष्ट-सहन की शक्ति, अर्थात् अहिंसा द्वारा नही कर सकते तो हमें, यदि हम मनुष्य हैं तो, "उनकी रक्षा लडकर ही करनी चाहिए।"[१] "दुनिया केवल तर्क से नही चलती। जीवन मे भी किसी हद तक हिंसा है और इस लिए हमें न्यूनतम हिंसा का रास्ता अपनाना पडेगा।"[२] जिसे हम सत्य समझते हैं उसके लिए हम लडेंगे। पर कमजोरी, कायरता और आरामतलबी के कारण हिंसा से वचने की कोशिश नही करेंगे।

गाधीजी डाक्टरी सहायता के लिए एक भारतीय चिकित्सा-टुकडी तैयार करके स्वय उसे एक सार्जेन्ट की हैसियत से वोअर-युद्ध में ले गये थे।

---

१. 'यग इडिया' १६ सितम्बर १९२७

२. 'यंग इंडिया, २८ सितम्बर १९३४

१९०६ में जुलू-क्रान्ति के समय उन्होने घायलो को ले जाने के लिए एक स्ट्रेचर-टुकडी तैयार की थी । उन्होने यह इसलिए किया था, क्योकि उनका विश्वास था कि भारतीयो की नागरिकता की माग के अनुरूप ही उनकी कुछ जिम्मेदारियां भी है। पिछले महायुद्ध मे उन्होने फौजो के लिए सिपाही भर्ती कराने मे इसीलिए सहायता पहुचाई, क्योकि उसमे जो लोग भरती नही हो रहे थे, वे ऐसा अहिंसा के प्रति विश्वास के कारण नही कर रहे थे, वल्कि वे डरपोक थे। वे इस वात पर सदा जोर देते थे कि डर के कारण खतरे से दूर भागने की अपेक्षा साहस से लडकर मर जाना कही ज्यादा अच्छा है। लेकिन उनके लिए 'अहिंसा' धर्म का हृदय थी और उनके अनेक अनुभवो ने इस विश्वास को और भी मजबूत वना दिया था ।

१९३८ मे गाधीजी ने कहा था, "जान लेने वाले वम के पीछे उसे छोडने-वाले मनुष्य का हाथ है और उसके हाथ के पीछे एक इसानी दिल है, जो हाथ को गति प्रदान करता है। आतक की नीति के पीछे यह मान्यता रहती है कि यदि आतक को पर्याप्त मात्रा मे इस्तेमाल किया गया तो वह इच्छित फल प्रदान करेगा अर्थात् विरोधी को आतक की इच्छा के सामने झुका देगा। गत ५० वर्षो के अहिंसा के अखड व्यवहार के अनुभव के उपरान्त मेरा यह दृढ विश्वास हो चला है और वह विश्वास आज पहले से अधिक उज्ज्वल है कि मानव-समाज की रक्षा उस अहिसा द्वारा ही की जा सकती है, जो इजील (वाइविल) की भी प्रधान शिक्षा है, जैसा कि मैंने इजील को समझा है। शक्ति का चाहे कितने ही न्याययुक्त ढग से इस्तेमाल किया जाय, हमे अन्त में उसी दलदल की ओर ले जायगी जिसकी ओर हिटलर और मुसोलिनी की शक्ति ले गई। अतर केवल अश का है। अहिंसा मे विश्वास रखने वाले लोगो को इसे सकट के समय ही व्यवहार मे लाना चाहिए। थोडी देर के लिए हमे भले ही ऐसा मालूम हो कि हम एक अधेरी दीवार से अपना सिर टकरा रहे है, तो भी तथ्य यह है कि लुटेरो तक के हृदय को छूने से हमे निराश नही होना चाहिए ।"

'उन्नत' राष्ट्रो को यह विश्वास दिलाना कठिन है कि राजनैतिक सफलता शाति के अस्त्रो द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है। एप्टन सिकलेयर ने कहा था, "मेरे पूर्वजो ने स्वय राजनैतिक स्वाधीनता हिंसा द्वारा प्राप्त की थी, यानी उन्होने ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फैंका और अपनेको एक स्वतंत्र गणतत्र घोषित किया। और इसी भूमिपर काली जातियो को वदी वनाये जाने की प्रथा का भी उन्होने

हिंसा द्वारा ही अत किया था। यदि शोषित जनता के हिंसा द्वारा स्वाधीन होने की कोई सभावना है तो मै इसके इस्तैमाल को न्याययुक्त मानूगा।" बर्नार्ड शॉ का कहना था, "हिंसा इतिहास की एक शास्त्रीय पद्धति रही है। इतिहास के सामने इन तथ्यो को अस्वीकार करना निरर्थक है। शायद यह भी कहा जा सकता है कि शेर कभी भी हिंसा के द्वारा जिन्दा रहने के योग्य नही है और सविनय अवज्ञा से वह शायद चावल भी खाने लगे।" लेकिन शक्तिशाली राष्ट्रो के ये प्रगतिशील विचारक इस बात को आज स्वीकार करते है कि अणुशस्त्रो द्वारा सचालित आगामी युद्ध मानव-जाति और उन सभी चीजो को, जिनकी वह रक्षा करना चाहती है, नेस्तनाबूद कर देगी। यह ऐसा युद्ध है, जिसमें जिन्दगिया बरबाद होती है, दिल टूटते है और दिमाग बिडगते है और जिस दावे का उनके शत्रु ही खडन करते है—"ईश्वर और इसानियत के अस्तित्व से इन्कार करनेवाले शैतान है। यदि परिवर्तन लाने वाले गाधीजी के शातिपूर्ण प्रयास सफल नही होते तो हमे घबराना नही चाहिए। क्या बात है, अगर हम अहिंसा के सिद्धान्त को अमल मे लाने की कोशिश करते हुए मिट जाय। इस प्रकार हम एक बडे सिद्धान्त के लिए ही मरेगे और जियेगे।"

गाधीजी यह महसूस करते थे कि उनके अनुयायियो ने स्वाधीनता-संघर्ष के लिए उनका नेतृत्व अवश्य स्वीकार किया था, लेकिन वे उनकी तरह हर परिस्थिति मे अहिंसा को अपनाने के लिए तैयार न थे। राजनैतिक कार्य में जन-साधारण की प्रकृति की सीमाओ का भी ध्यान रखना पडता है। इसीलिए गाधीजी मानते थे कि अखिल भारतीय काग्रेस को बार-बार ऐसे राजनैतिक निर्णयो के पक्ष में अपनी स्वीकृति देनी पडती है जो उनके दृढ विश्वासो के सर्वदा अनुरूप नही होते थे। यदि हम एक बार समझौता करना शुरू कर दे तो फिर पता नही, हम कहा जाकर रुकेगे ? यदि सत्य में हमारा अटूट विश्वास नही है तो उपयोगिता के नाम पर किसी भी चीज को न्याययुक्त ठहराया जा सकता है। राजनैतिक जीवन की आवश्यकताओ के अनुरूप सत्य को अगीकार करने के खतरे से गाधीजी परिचित थे और इसीलिए उन्होने काग्रेस के निर्णयो के लिए अपने को जिम्मेदार मानने से इन्कार कर दिया था। उन्होने उसकी सदस्यता से भी इस्तीफा देकर उससे अपना सबध बिलकुल अलग कर लिया था।

हमें इस भ्राति में नही रहना चाहिए कि हिंसा से तात्पर्य दबाव या दंड से है। राज्य के भीतर शक्ति के प्रयोग में और युद्धरत एक राज्य के दूसरे युद्धरत

राज्य के साथ शक्ति के प्रयोग मे बहुत अन्तर है। शक्ति के प्रयोग की उस समय इजाजत दी जा सकती है जब वह एक तटस्थ सत्ता द्वारा जनहित के लिए न्याया-नुकूल ढग से व्यवहार में लाई जाती है, न कि विवादग्रस्त दलो मे से किसी एक के पक्ष मे। एक सुव्यवस्थित राज्य में न्याय का ही शासन होता है। वहा न्यायालय, पुलिस तथा कारावास सब कुछ होते है, किन्तु कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था या अन्त-र्राष्ट्रीय न्यायालय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस नही होती। यह अराजकता और लूटमार का राज्य है। प्रत्येक युद्धरत राज्य अपनेको ठीक समझने का दावा करता है। हम भी सोच सकते है कि हमारा उद्देश्य उचित है। यह मानवीय हृदय की अच्छाई का सबूत है कि वह अच्छाई को स्वीकार करे और बुराई को त्याग दे। हिटलर ने भी जर्मनी में जर्मनो के हित की दुहाई देते हुए अपील की थी, जो उन्हे उचित मालूम पडती थी। इससे स्पष्ट है कि आज भी ससार मे बुरे उद्देश्यो पर सदुद्देश्य का प्रभुत्व है। सभवत हिटलर इसलिए हारा कि उसका मकसद बुरा होने के कारण वह हमसे अच्छा नही था। जहाँपर यह अन्तर्राष्ट्रीय सर-कार न हो, जहाँ उचित-अनुचित का फैसला करने के लिए कोई निष्पक्ष न्या-यालय न हो, वहाँपर किसीको कोई अधिकार नही कि वह अपने पडोसी पर अपनी इच्छा को थोपने के लिए बल का प्रयोग करे। 'जिसकी लाठी उसकी भैस' के आदर्शवाले ससार मे शक्ति का प्रयोग ही हिंसा है और इसलिए वह गलत है।

युद्धो का मूल कारण विश्व की अराजकता है। हिटलर स्वय उसकी उत्पत्ति का कारण नही। जबतक हमारा विश्वास राज्य से परे किसी महान् उद्देश्य में नही है तबतक राज्य का निर्माण स्वय अनियमित है। नागरिको की सेवा को राज्य का उच्चतम साध्य मान लेने से पागल के उन्माद को उत्तेजना भले ही मिले, लेकिन आधुनिक मानवीय विकास की स्थिति में वह कोई स्थायी प्रोत्साहन नही दे सकता। प्रभुत्व-शक्ति कानून से परे नही है। धर्म का सबसे बडा अधिनियम वह है, जिसकी राज्य सरकारें सेवक है। जब हमारे पास न्यायालयो और पुलिस से मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सरकार होगी, तो गाधीजी भी अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की ओर से पुलिस की शक्ति के व्यवहार की अनुमति दे देगें। जिस प्रकार सभ्य राष्ट्रीय सरकार कानून के फैसलो और प्रचलित कार्यो को सख्त उपायो द्वारा लोगो से मनवाती है, उसी तरह विश्व-सरकार आक्रमणात्मक राज्यो को बल के जोर से रोक सकती है। तब भी गाधीजी यह चाहेगे कि अन्तर्राष्ट्रीय सरकार कानन-भग

करने वाले से उसी प्रकार असहयोग करे, जैसे कि प्रतिरोध करने वाली जनता जुल्मी सरकार के विरोध में करती है ।

गाधीजी ने अपने जीवन और अपनी शिक्षा द्वारा शासक और गुरु, ब्राह्मण और क्षत्रिय, स्वप्नद्रष्टा और सगठक के कार्यो मे जो प्राचीन भेद है, उसकी अभिव्यक्ति की है। गुरु, खलीफा, हिन्दू सन्यासी, बौद्ध भिक्षु और ईसाई पादरी को चाहिए कि सत्य को जैसा स्वय देखते है, उसी रूप मे प्रकट करे। किसी भी दशा मे उन्हे बल के प्रयोग से बचना चाहिए। उन्हे हत्या इसलिए नही करनी चाहिए, क्योकि शत्रुओ को सन्तोष प्रदान करना तथा घृणा को दूर भगाना उनका कर्तव्य है। बल के भौतिक प्रयोग से भी बचने का सदेश देने वाली अहिसा उनके जीवन का सिद्धान्त है। उनकी जडे साधारण मनुष्यो की अपेक्षा कही अधिक गहरी होती है, क्योकि वे आभ्यन्तरिक सौदर्य, वस्तुओ के उद्देश्य बोध, और उस अदृश्य जीवन से शक्ति प्राप्त करते है जो इस जगती के जीवन से परे है। लेकिन फिर भी वे ही जीवन को उन्नत बनाते हुए उसकी व्याख्या करते है। लेकिन दुष्ट व्यक्ति को शारीरिक शक्ति के बिना केवल नैतिक अच्छाई से नही दबाया जा सकता। शूली पर लटक कर ईसा मसीह अपनी ओर सबको आकृष्ट कर सके, लेकिन नैतिक दृढता का वह अपूर्व कार्य, जिसके साथ शक्ति का सहयोग नही था, उन्हे फासी लगाने से नही बचा सका। इतिहास के अन्य थोडे व्यक्तियो की तरह ही गाधीजी का उदाहरण यह प्रकट करता है कि सबसे बडी बुद्धिमानी इसमे है कि दूसरा गाल भी सामने कर दिया जाय। लेकिन इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नही है कि इस गाल को कोई काटेगा नही। जबतक कि सारी दुनिया इससे मुक्त नही हो जाती तबतक हृदयहीन रहेगा ही और ऐसी अवस्था में सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा हमपर इस दायित्व को लादती है कि हम न्याय करें और जहाँ भी सभव हो हम उसे आध्यात्मिक समझाव द्वारा अमल मे लावें और जहाँ आवश्यक हो वहाँ बल के प्रयोग द्वारा अमल में लाये। सत-परपरा और प्रेम-अनुशासन में विश्वास करने वाले शिक्षको के उपदेश के बावजूद, जो मानव-स्वभाव की दैवी सभावनाओ को जागृत करते है, हमे न्यायाधीश और ऐसी पुलिस की आवश्यकता रहेगी ही, जो बल का प्रयोग बल के लिए, वैयक्तिक लाभ के लिए, अथवा बदला लेने के लिए न करें। वे बल का प्रयोग उचित सत्ता के अधीन करते है और अहिंसा अथवा करुणा की सच्ची भावना से ओत-प्रोत रहते है। इसलिए एक ऐसे गुरु के आचरण का भेद, जो एक ओर हमे प्राचीन

करुणा एव सयत सहयोग की शिक्षा देते समय बल प्रयोग से बिलकुल दूर रहने की शिक्षा देता है और दूसरी ओर पुलिस और न्यायाधीशो के द्वारा उचित सत्ता के अधीन बल प्रयोग की सलाह देता है, कार्य-भेद के कारण पैदा होता है। दया और न्याय दोनो ही अपूर्ण मानव-समाज मे अपना स्थान रखते हैं।[१]

अपने समय से पहले पैदा होने वाले सभी लोगो के दड का भुगतान गाधीजी ने घृणा, प्रतिक्रिया और दुर्दान्त मृत्यु के रूप मे किया है। अन्धकार में प्रकाश चमकता है, लेकिन अन्धकार को इसका बोध नही रहता। हमारे युग की इस अति मर्मान्तिक दु खान्त घटना ने ऐहिक ससार के भीतर उपस्थित प्रकाश और अन्धकार के, प्रेम और घृणा के एवं तर्क और अतर्क के बीच चलने वाले सघर्ष को स्पष्ट कर दिया है। हमने सुकरात को जहर का प्याला पिला कर मारा, ईसा को सूली पर लटकाया और मध्ययुगीन शहीदो को जलाने वाले ईंधन के गट्ठो को आग लगा दी। हमने अपने अवतारो पर पत्थर बरसाये और मारा। गाधीजी भी गलत समझे जाने और नफरत के दुर्भाग्य से न बच सके। वे अन्धकार और कर्तव्य की ताकतो का मुकाबला करते हुए मरे और इस तरह उन्होने प्रकाश, प्रेम और विवेक की शक्ति को बढा दिया। कौन जानता है कि ईसाई मत बिना ईसा मसीह के फासी पर लटके इतना बढ सकता था। वर्षो पहले रोम्या रोला ने कहा था कि वे गाधीजी को ऐसा ईसा मानते थे जिनको फासी नही लगाई गई। हमने अब उन्हे फासी भी दे दी। गाधीजी की मृत्यु उनके जीवन का सर्वोत्तम अग था। ओठो पर रामनाम और हृदय मे प्रेम का वरदान लिये हुए वे मरे।[२] गोलिया

---

१ देखिए, राधाकृष्णन् द्वारा लिखित 'भगवद्गीता' (१९४८, पृष्ठ ६८-६९)

२. गांधीजी के पहले वक्तव्य

"उन एक लाख व्यक्तियों के आत्मत्याग से, जो औरों की हत्या करते हुए मरते है, एक निर्दोष व्यक्ति का आत्मत्याग लाख गुना प्रभावयुक्त है।" "मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तान में ऐसे अनेको अहिसक असहयोगी होगे, जिनके बारे में यह लिखा जाता है कि उन्होने बिना क्रोध के अपने बेसमझ हत्यारे के लिए प्रार्थना करते हुए गोलियां सहीं।" हरिजन २२ फरवरी १९४८। २० जनवरी १९४८ को जब एक पथभ्रष्ट युवक ने बम फेंका तो गांधीजी ने पुलिस इन्सपैक्टर जनरल को

लगने पर उन्होने अपने हत्यारे को अभिवादन करते हुए उसके लिए शुभ कामना की। जो कुछ उन्होने कहा, उसके लिए अपना जीवन दिया। वे उस आदर्श के लिए मरे जिसकी उन्होने शिक्षा दी थी।

मानव-स्वभाव जिन श्रेष्ठतम आदर्शो को ग्रहण करने के योग्य है, उन आदर्शो से पूरित और प्रेरित होकर, जिस सत्य की उन्हे अनुभूति हुई उसका निर्भय होकर पालन और प्रचार करते हुए, लोभ और भूलो के अजेय दुर्गो के विरुद्ध त्याज्य आशा की अलख दुनिया में अकेले जगाते हुए, और इसपर भी शात-दृढता के साथ दुनिया की कठोरताओ का मुकाबला करते हुए—ऐसी दृढता जो भय और सकट के आने पर ही अपना कुछ भी नही खोती—गाधीजी ने इस विश्वास-शन्य ससार के सामने एक मनुष्य मे जो कुछ अच्छा और महान् होता है, उसे प्रदर्शित किया। मनुष्य के प्रयास की अनन्त प्रतिष्ठा मे विश्वास स्थापित करके उन्होने मानवीय गौरव को जाज्वल्यमान किया। वे ऐसे व्यक्तियो मे से है जो मानव-जाति की सदा रक्षा करते है।

गाधीजी आत्मा के आन्तरिक जीवन की उस शक्ति मे विश्वास रखते थे जो सदा से भारत की अपनी विरासत रही है और इसीलिए द्रोह और घृणा से अपने को मुक्त करने मे, समस्त अपवित्रताओ को जला कर राख कर देने वाली प्रेम की इस शिखा को आगे बढाने मे, मृत्यु की छाया मे भी निर्भीक होकर चलने में, और आशा की अमर पुकार को हमारे सामने रखने मे वे पूरी तरह सफल हुए। जब नैतिक और आध्यात्मिक समस्याए उन्हे घेर लेती थी, परस्पर-विरोधी आवेग जब उन्हे हिला देते थे और मुसीबत सताने लगती थी तो वे शक्ति और विश्राम प्राप्ति के लिए अपनी इच्छानुसार अपनी आत्मा के एकान्त मे 'स्व' के रहस्यमय क्षेत्र मे चले जाते थे। धर्म के अर्थ और मूल्य के विषय में उनके जीवन ने हमारी भावना को एक नई चेतना और एक नई ताजगी प्रदान की है। ऐसे व्यक्ति, जो आध्यात्मिक भावना से भरे होने पर भी अपने ऊपर दु खी मानवता का भार ओढ लेते है, दुनिया मे बहुत दिनो के बाद पैदा होते है।

हमने उनके शरीर का अन्त कर दिया, किन्तु उनकी आत्मा, जो स्वय एक

उसे तग न करने के लिए कहा। उन्होने कहा था कि पुलिस को चाहिए कि वे उसे ठीक विचार और काम की ओर प्रवृत्त करें। गांधीजी ने श्रोताओ को अपराधी के प्रति क्रोध न करने की चेतावनी दी थी। 'हरिजन,' २ फरवरी १९४८, पृष्ठ ११

दैवी प्रकाश है वहुत दिनो और वहुत दूर तक प्रवेश कर, असख्य पीढियो को श्रेष्ठता से जीवनयापन के लिए प्रोत्साहित करती रहेगी ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽसम्भवम् ।

(गीता, १० अध्याय, ४१ श्लोक)

अर्थात्—जगत् मे जो कुछ भी शक्ति, विभूति और गौरव से पूर्ण है उनको मेरे तेज के अश से ही उत्पन्न समझो ।

: २ :

शहीद् गांधी

वेरा ब्रिटेन

३० जनवरी, १९४८ की शाम के ठीक पाच वजे के वाद, महात्मा गाधी अपनी प्रार्थना-सभा की ओर वढे । यह प्रार्थना बिडला-भवन से लगभग ५० गज की दूरी पर एक खुले लॉन मे होती थी ।

वे, अपने अन्तिम और सबसे अधिक सफल उपवास से, जिसने कुछ समय के लिए साप्रदायिक रक्तपात को बन्द कर दिया था, अभी पूरी तरह स्वस्थ भी नही हो पाये थे । अपनी दो नातिनो के कधो का सहारा लिये हुए वे उस लाल पत्थर की वेदी की ओर चले, जहा रोज शाम को लोगो के सामने वे कुछ प्रवचन करते थे । पाच सौ के करीब लोग, जो उन्हे वडे ध्यान से देख रहे थे, प्रसन्न और हँसमुख गाधीजी को अपने बीच से रास्ता देने के लिए दो कतारो में खडे हो गये थे ।

जैसे ही वे चबूतरे की तीन सीढियो के ऊपर पहुचे एक आदमी भीड को चीरकर सामने आया । दोनो हाथ जोडते-जोडते महात्माजी के मुख से ये आखिरी शब्द निकले, "मुझे आज देर हो गई ।" इसी समय उस अजनवी आदमी ने अपनी खाकी वुश-शर्ट के भीतर से एक रिवाल्वर निकाला और महात्माजी पर तीन वार गोली चलाई । वे वही जमीन पर गिर पडे । गिरते ही कधो पर से हटे हुए अपने दोनो हाथो को ऊपर उठाते हुए उन्होने भय-विह्वल भीड की ओर इस तरह जोडा, मानो वे प्रार्थना कर रहे हो ।

इस प्रकार अहिंसा का सरक्षक सत, भारत की महान् आत्मा हिसा के हाथो

हमेशा के लिए नष्ट कर दी गई। वे उन थोडे लोगो मे से एक थे जिन्होने जिन्दगी के एक विशेष तरीके का अपने ऊपर सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। यह ऐसा तरीका था, जिसके अधिक स्त्री-पुरुषो द्वारा अनुसरणमात्र से कुटिल मानव-जाति आनन्द की एक निश्चित दुनिया की ओर वढ सकती है।

सभी सत स्वय ईश्वर नही होते, इसलिए उन सबमे कुछ-न-कुछ दोष रहते है। अभी पिछले दिनो मेरी एक प्रसिद्ध महिला से भेट हुई, जो महात्मा गाधी में किसी भी सत-गुण को मानने से नाराज़गी के साथ इन्कार कर रही थी, क्योकि महात्माजी ने सतति-निरोध के पक्ष को आगे नही बढाया था। उपर्युक्त महिला का विचार था कि गाधीजी द्वारा इसके समर्थन से भारतीय नारी की पीडा बहुत अश तक कम हो सकती थी, और साथ ही आबादी की अति-वृद्धि से जो खाद्य-समस्या उपस्थित हो गई है, वह भी हल हो जाती।

परन्तु, शायद ही कभी अपने इन दोषो के कारण सतो की हत्या होती है। वुराई एक ऐसा तत्त्व है, जो सवमे पाया जाता है। अधिकाश लोग ऐसे है जो अपने इस दुर्गुण का प्रदर्शन जीवन के अधिक क्षेत्रो मे करते है। प्राय उनका सारा मस्तिष्क अधेरे से भरा रहता है, परन्तु सतो की मृत्यु उनके गुणो के कारण होती है। उनकी हत्या उनके इस प्रकाश के कारण की जाती है, जिसे अन्धकार सहन नही कर सकता।

अपनी 'दी वेराइटीज़ ऑव रिलीजियस एक्सपीरियेंस' (धार्मिक अनुभवो की अनेकताए) नामक पुस्तक मे विलियम जेम्स ने कही भी पाई जाने वाली सतो की कुछ विशेषताओ की परिभाषा करने की कोशिश की है। उनका कहना है कि सत अपनेको हमेशा सकीर्ण स्वार्थो का भागीदार न मानकर व्यापक जीवन का अग मानता है। अपने भीतर वह एक आदर्श शक्ति की उपस्थिति का विश्वास लेकर चलता है, जो कि ईसाइयो के लिए ईसा या ईश्वर का रूप होता है। अपनी तमाम जिन्दगी मे वह इस आदर्श शक्ति के कोमल और अनवरत प्रभाव को महसूस करता रहता है, और स्वेच्छापूर्वक वह अपनेको इसके नियत्रण मे छोड देता है। ऐसी अवस्था मे उसके अधिकाश अस्तित्व से 'अह' का भाव ओझल हो जाता है, इसलिए इसका अन्तर स्वतत्रता और उल्लास से भर जाता है। दूसरो के प्रति सेवा-भाव के विचार से उसका भावात्मक केद्र विंदु प्रेम और सामजस्य की ओर वढता है। लौकिक मूल्यो के निषेधात्मक पक्ष से हटकर वह स्थिर ईश्वरप्रेमी की स्वीकारोक्ति की ओर वढता है।

जब यह आध्यात्मिक अवस्था स्थिर हो जाती है तो संत वैराग्य और पवित्रता की ओर वढता है। वह अपनी आत्मा को पशुता एव वासना के तत्वो से मुक्त करता है। उसके लिए लोकप्रियता और महत्वाकाक्षा की अहमियत खत्म हो जाती है। उसके अतर की प्रेरणा नकलीपन और बनावट से उसकी रक्षा करने लगती है। जनता के दिमाग से उत्पन्न आतक और भनभनाहट का उसपर कोई प्रभाव नही पडता। उसकी आत्मशक्ति उसे सहनशीलता और धीरज की उस ऊचाई तक ले जाती है, जहा पहुँचकर वह खतरे और कष्ट से उदासीन हो जाता है। "शहादत की कहानिया धार्मिक शाति की विजय के सकेत-चिह्न है।" करुणा और कोमलता विकास की अन्तिम सीमा तक पहुचकर अपने साथी इन्सानो के प्रति उसके सवध को प्रभावित करती है। "सत अपने शत्रु को भी प्यार करता है, और वह घिनौने भिखारियो तक के साथ अपने भाई जैसा व्यवहार करने लगता है।" ऐसा प्रतीत होता है, मानो व्यापक रूप से सतो के जीवन पर लागू होने वाले इस आरभिक मनोविश्लेषण मे विलियम जेम्स सीधे गाधीजी की जीवनी का ही उल्लेख कर रहे हो—यह बात और है कि १९१० मे मृत्यु हो जाने के कारण उन (महात्माजी) के अस्तित्व तक से वे भली-भाति परिचित नही रहे होगे।

यद्यपि सतो की विशेषताओ मे सार्वभौमिक गुण होते है, तथापि उनके जीवन के प्रति कृतज्ञता की मात्रा उन गुणो के अनुपात से नही रहती। एक अमेरिकन पत्रकार विलियम ई वोन ने केलीफोर्निया के एक दैनिक 'दी न्यू लीडर' का उद्धरण देते हुए, महात्माजी की हत्या के थोडे ही दिनो बाद ही लिखा था, "अनुकरण करने की अपेक्षा अच्छे व्यक्तियो को मारना सदा आसान होता है।" आगे मि वोन कहते है, "यह वाक्य मानव के सामने सतो द्वारा रखे गये दो विकल्पो की ओर संकेत करता है। एक बात निश्चित है कि सत की उपेक्षा नही की जा सकती है—या तो लोग उसे मानकर उसका अनुसरण करेगे या उसे रास्ते से हटा दिया जायगा। इस कारण गाधीजी की हत्या एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। क्योकि आज की विकास-अवस्था मे मानवता, हिन्दुस्तान या कही भी, महात्माजी की मान्यताओ और उसूलो को अपने जीवन का नियम नही वना सकती।"

इस वक्तव्य के पीछे छिपे हुए सामान्य सत्य को कभी-कभी सशोधित रूप मे अमल में लाया जाता है। समय-समय पर सत अग्रदूतो का दीर्घकालीन कार्य प्रौढ लोगो की एक वडी अल्प-सख्या द्वारा अथवा वहुसख्यक व्यक्तियो की एक छोटी सख्या द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और इस प्रकार सपूर्ण समाज सिद्धि को

प्राप्त कर लेता है। दास-प्रथा की समाप्ति और भारतीय स्वाधीनता की स्वीकृति, इस पद्धति के दो उदाहरण है। ये इस बात का भी उदाहरण है कि आमतौर पर सामाजिक और राजनैतिक सुधारो के आन्दोलनो मे हमेशा पीछे रहने वाले विधि-निर्माताओ का एक बहुमत भी धीरे-धीरे पीड़ित और दलित लोगो के प्रति देव-पुरुषो की भाति उत्सुक हो जाता है।

जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है, "अपनी असीम मानवीय कोमलता के कारण, सत इस विश्वास के महान् ज्योतिवाहक और अधकार को दूर करने वाले नेता होते है। वे दूसरो को रास्ता दिखाने वाले अगुआ है और क्योकि आजतक दुनिया उनके कामो के साथ नही है, इसलिए प्राय. दुनिया के विषयो या मामलो के बीच वे असगत से प्रतीत होते है। फिर भी वे नवीन दुनिया को अपने भीतर धारण करने वाले और अच्छाई की सभावनाओ को, जो कि उनके बिना सदा छिपी पडी रहती, प्राण और जीवन देने वाले है। जब वे हमारे सामने से हमेशा के लिए चले गये तो फिर इतना नीच रह सकना हमारे लिए सभव नही है, जितना कि स्वभावत. हम होते है। आग की एक चिनगारी दूसरी को प्रज्वलित करती है और इसलिए मानवीय शक्ति मे अपने उस अपार विश्वास के बिना, जिसे कि वे असली तौर पर हमेशा दिखाते रहते है, शेष हम सब एक प्रकार की आत्मिक जडता मे पडे रहते है।"

अपने इस असबद्धता के गुण के कारण सत दुनिया के इसान के लिए, हठी राजनीतिज्ञ, व्यस्त सपादक और यथार्थवादी धार्मिक नेता के लिए असह्य हो जाते है, और इसी गुण के कारण उन्हे सभावित शहादत प्राप्त होती है। मानव-पुत्र (ईसा) के समान वह अपनी ही आत्मा के पास आता है, और उसके ही लोग उसका स्वागत नही करते। कभी-कभी यह अ-स्वागत केवल नकारात्मक होता है, उसे अकेला छोड दिया जाता है, बहिष्कृत कर दिया जाता है, त्याग दिया जाता है। परन्तु दूसरे समय उसे केवल टाला नही जाता है वरन् हिंसापूर्वक धावा बोलकर उसका विरोध किया जाता है, उसके साथियो और उसके बीच की खाई बहुत चौडी होती है, और इसलिए उसके द्वारा निर्धारित जीवन-स्तर पर चलना कठिन होता है। और तभी सत का यश रूपातरित होकर शहीद के ताज मे बदल जाता है।

उनके जीवनभर यह मृत्यु ऐसे पुरुष या स्त्री की प्रतीक्षा करती है जिसके काबिल यह ससार नही है और बलिदान की छाया के समान इसकी छाया हमेशा उसके आत्मिक उत्कर्ष पर पडती है, और शायद यही कारण है कि गाधीजी की

शहादत के समय बहुत-सी कलमो ने यही टीका की थी कि इस प्रकार का अत ही उनके लिए सबसे अधिक गौरवपूर्ण था। सत अपने भाग्य से कभी नही डरता, क्योकि उसे पहले से ही यह पता है कि उसने मृत्यु को जीत लिया है।

जेम्स आगे फिर कहते है, "पैदायशी सत मे, यह मान लेना चाहिए, एक ऐसी वात होती है जो कि ससारी मनुष्य की वासना को ऊपर उठा देती है।" जिस ससारी मनष्य ने महात्माजी को मारा, वह निस्सदेह यह स्वीकार कर लेगा कि सत लोग जिन दैवी मूल्यो की अपील करते है, वे मूल्य 'दुनियावी इन्सान' के मूल्यो से विल्कुल भिन्न होते है। सत हठी और वलवान् नही होता, वल्कि वह लोगो को विनम्रता मे वदल जाने वाली अपनी ताकत से जीतता है। वह योग्यता मे अथवा हेयभाव मे वसने वाली स्थूल प्रशसा को नही वल्कि 'सद्स्वभाव' मे निहित मनुष्य के उस कोमल स्वभाव और विवेक को चुनौती देता है, जिस 'सद्स्वभाव' को इन्सान अक्सर दवा देता है।

इस प्रकार ससारी और साधु के आदर्श में एक वुनियादी अन्तर होता है जिसे संसारी आदर्श के समर्थक सहन नही कर सकते, और ऐसी अवस्था मे उद्देश्य की मंजिल तक पहुचने मे जब दो-चार कदम शेष रह जाते है तभी ससारी शक्तिया सत को दुनिया से हटा देती है। इस मानसिक अवस्था को स्पष्ट करने के विचार से विलियम जेम्स नीत्शे का एक उद्धरण पेश करते है, जोकि सतो को ऐसे "सामान्य औसत मूल्यो" का घोर शत्रु मानता था, जिन्हे कि वह सामान्य मानवी प्रकार का समरूप समझता था।

"और इस अवस्था में सफलता पाने वाले महापुरुषो के विरुद्ध एक अतिक्षुद्र षड्यत्र का अनवरत जाल रचा जाता है। यहा सफलता पाने वाले की एक-एक वात से घृणा की जाती है, मानो स्वास्थ्य, सफलता, शक्ति, अभिमान, चेतना आदि सव वुरी वाते हो।"

नीत्शे के समान मनुष्यो को आत्म-त्याग में एक रोग, लगन और प्रेम में एक प्रकार की दिमागी कमजोरी दिखलाई पडती है। पिछले चन्द वर्षो मे ऐसे विगडे दिमागो के उदाहरण वहुत मिलते है—ये उदाहरण केवल मनोवैज्ञानिक पडितो के क्षेत्र मे ही नही, जिनके प्रतिनिधि नीत्शे है, वल्कि प्रभावशाली पत्रकारों और जिम्मेदार राजनीतिज्ञो, सवमे, ये तत्त्व पाये जाते है, जो वम के द्वारा सार्वजनिक संहार एवं विना शर्त समर्पण आदि के घृणित कामो तक के औचित्य को सावित करने की कोशिश करते है। धार्मिक नेताओ तक का वहुमत इस सामूहिक अवस्था

के जोर को रोकने मे असमर्थ रहा है । आर्क बिशप ऑव केंटरबरी और यार्क द्वारा सन् १९४६ मे नियुक्त एक कमीशन की रिपोर्ट मे, जिसका नाम 'चर्च और अणु-बम' था इन लोगो ने मुह फाड-फाड कर पहले अनिश्चत युद्ध के और बिना भेदभाव किये होने वाली बम-बारी के विरुद्ध बडे-बडे वक्तव्य दिये थे ।

सतो के प्रभावपूर्ण गुणो से डरकर, जिनके कारण उनके नकली मूल्यो की कोई कीमत नही रहती, विकृत मानव और उनके प्रभाव के दूसरे लोग अहिंसा के प्रभाव को बढने का मौका देने की अपेक्षा उसका कत्ल करना अधिक पसन्द करते है । सतो के दृष्टिकोण को ठीक-ठीक न समझ सकने मे ही उनकी सफलता छिपी है और यहीपर वे गलती करते है, क्योकि वे स्त्री-पुरुष जो कि ईश्वरी शक्ति द्वारा नर्धारित नियमो का पालन करते है—जिस शक्ति के अस्तित्व मे वे स्वय जीवित है—उनके विचार मे जीवन सीमारहित और अनन्त है और मृत्यु जिन्दगी का अन्त नही है ।

शहीद होने वाला सत केवल शरीर-शास्त्र की दृष्टि मे असफल होता है, क्योकि वह अपने शरीर की रक्षा की चिन्ता नही करता । लेकिन धर्माचार्य पॉल के सबध मे विलियम जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है, "वे बडे शानदार तरीके से इतिहास के एक अधिक व्यापक वातावरण मे समा जाते है ।" इस विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने पर गाधीजी भी विजयी साबित होगे—'साधुता का एक खमीर' जो कि इन्सानियत को आत्मिक अनुभवो के एक नये स्तर तक उठा देता है ।

: ३ :

महात्मा गांधी का विश्व-संदेश

जार्ज केटलिन

आज दुनिया का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विश्व-शाति की स्थापना है । राज-नीति-शास्त्रियो का इस बात मे आश्चर्यजनक मतैक्य है कि आज विश्व-सरकार ही शाति कायम करने का सबसे बडा साधन है और यही शाति सभ्यता की प्रथम नियोजक है । एक प्रकार से यह स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय से भी अधिक

ज़रूरी है। क्योकि विना इसके ये दोनो भी खोखले है। सत्य के प्रति आदर हमे इसी नतीजे पर पहुँचाता है।

फिर भी राजनीति-विज्ञान साधन के विवाद से ऊपर नही उठता, और ऐसी दशा मे विश्व-सरकार राजनैतिक मशीन का एक प्रकार मात्र रह जाती है। जीवन-मूल्यो की योजनाओ मे लोगो ने जिन साध्यो को प्रथम चुन लिया है उन्ही साध्यो पर इसके (विश्व-सरकार) पसन्द किये जाने अथवा न किये जाने का प्रश्न निर्भर करेगा, और इस विश्व-सरकार की सफलता इसको कार्यान्वित करने वाले व्यक्तियो की भावना और निश्चय पर निर्भर रहेगी। बरट्रेन्ड रसेल ने अपने 'फ्यूचर आव मैनकाइण्ड' (मानव-जाति का भविष्य) नामक लेख मे जो बात कही है, वह हमे याद रखनी है और उसका सामना करना है—"मेरे विचार से हमें यह मान लेना चाहिए कि विश्व-सरकार की प्रतिष्ठा बलपूर्वक ही की जा सकेगी।.. मुझे आशा है कि ज़ोर या शक्ति की धमकी मात्र ही काफी होगी, लेकिन, यदि उससे काम नही चलता तो हमे सचमुच शक्ति का सहारा लेना होगा।" कुछ लोग, इतिहास के सबको को ध्यान मे रखते हुए 'शक्ति का सहारा लेना होगा' के स्थान पर 'शक्ति का सहारा लिया जा सकता है'—वाक्य का प्रयोग कर सकते है। हमारी सामयिक कूटनीति की यह परख है कि यह 'सकता है' 'होगा' में बदलता है या नही। यह अनधिकृत नैराश्य और अनधिकृत अनुमान जो या तो हमारी स्वय की कमजोरियो और कायरतापूर्ण दलबन्दियो के कारण उत्पन्न हुआ है या युद्ध अनिवार्य है, ऐसा मान कर चलने वाले रूस मे 'यथार्थवाद' की कमी के कारण है। ऐसी परिस्थिति मे भी हमारा यह कर्तव्य है कि एक दिन के लिए भी, हम सभी देशो के सद्भावना-पूर्ण लोगो की बातचीत को आगे बढाने और साधारण व्यक्तियो को युद्धप्रिय देश-भक्ति और आक्रामक प्रोत्साहन न देने वाले कर्तव्य से सचेत करने वाले समझौते के काम को ढीला न पडने दे।

फिर भी विश्व-सरकार की स्थापना किसी तरह से हो, उसका व्यवहार बहुत ही भिन्न तरीको से किया जा सकता है। इसे दया और पवित्रता की उच्च भावना से काम में लाया जा सकता है, जिसमे हिंसा और शक्ति के लिए कम-से-कम स्थान हो, अथवा सबकुछ उजाड कर उसे शाति का नाम दे सकने वाली अपनी उस न्याय-पद्धति और तर्क के बल पर एक सर्वसत्तावादी सरकार का रूप दिया जा सकता है। यह भेद सत अगस्टायन या उनसे भी पुराना है।

तब, हममें से जो लोग विश्व-शाति और विश्व-सरकार के लिए काम करते

है, आज यह मानते है कि यदि यह सरकार और अधिक शोषण को आश्रय नही देती है तो निश्चय ही इसे सत्य के प्रति आदर और सद्भावना से प्रेरणा या उत्साह मिलना चाहिए। निस्सदेह हमारी सीमा के भीतर शाति और अमन की स्थापना पुलिस द्वारा हो, परन्तु जनता का विशाल वहुमत यदि अपने दिमाग और आदतो से स्वय कानून का पालन करने वाला नही वन जाता तो यह पुलिस-शक्तिशून्य ही रहेगी। चिरस्थायी शाति अहिसक स्वभाव के भीतर भावना की उचित शिक्षा से ही उत्पन्न होती है।

कुछ ऐसे व्यक्ति होगे, जिन्हे न्यायाधीश का काम करना होगा, कुछ ऐसे होगे जो पुलिस का काम करेगे, कुछ क्लर्क और शिक्षक बनेगे। यही उनका धर्म है। अहिसा की शिक्षा देना और दुनिया का ध्यान अहिसा के सौन्दर्य-शिक्षा की आवश्यकता की ओर आकर्षित करना गाधीजी का अपना मिशन था, विशेष कर ऐसी दशा में जवकि अन्तर्राष्ट्रीय विप्लव के युद्ध और अधिक घृणित तथा सभ्यता की आत्मा के ही विनाशक वन गये हो। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से विश्व-सरकार की योजनाओ की व्याख्या का काम वे दूसरो पर छोड गये थे। किसी समस्या की जड में पहुचकर वे यदि एक नई मानसिक औषधि, एक नई मानसिक चिकित्सा, आत्मा की एक नई दवा की ओर सकेत कर सके तो समझो कि उनका काम तो उसी समय पूरा हो गया। उन्होने जो उपदेश दिये, वे सब पुराने थे, क्योकि वे लोगो को टाल्स्टाय से भी बहुत आगे 'गिरि-प्रवचन', बुद्ध और गीता तक ले गये। सभी सच्चे धर्मो की तात्विक भावना का नशा उनपर छाया था। परन्तु जो कुछ उन्हे कहना था, वह भी एक प्रकार से नया था, क्योकि इसी बात की परीक्षा वाल-शिक्षा के क्षेत्र मे अति आधुनिक मनो-वैज्ञानिक भी कर चुके है और हममे से कुछ की ऐसी राय है कि इसी तरह की आधुनिक मनोशिक्षा राजनैतिक सबधो के विषय मे भी लागू होनी चाहिए।

गाधीजी की दोहरी जिन्दगी थी—एक काग्रेसी की जिन्दगी, जो भारत की मुक्ति के उद्देश्य में राजनीति मे, और राष्ट्रीयता के उत्थान में लगी थी—हालाकि उनके लिए मेजिनी के समान राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से अलग नही थी। उनकी एक भीतरी जिन्दगी भी थी, आश्रम की जिन्दगी, जो कि फीनिक्स के दिनो से एक प्रकार से आश्रम या लौकिक सघ की ही जिन्दगी रही थी। उन्होने वही बाते कहनी शुरू की थी जिनकी कि आधुनिक नास्तिक जगत् को, जो कि आज १९वी सदी के लौकिक भौतिकवाद से शनै शनै उवर रहा था, जरूरत थी। और यह कि

राजनीति से धर्म का न तो विच्छेद हो सकता है और न होना चाहिए। दुनिया को धार्मिक व्यक्तियो की, साधुओ और सन्यासियो की उतनी ही आवश्यकता है। यह वात साधारणतया हमारे पेशेवर राजनीतिज्ञो के गले से नीचे नही उतरती। सर स्टेफर्ड क्रिप्स और लार्ड हेलीफेक्स के समान कुछ अग्रेजो ने इसे समझा। प्लेटो के समान गाधीजी का यह विश्वास था कि प्रेम की पवित्रता कर्तव्य भी है और अधिकार भी और यह कि वह लौकिक व्यक्तियो को उपदेश दे। वे भीतर और वाहर पूरी तरह धार्मिक थे। उनके कुछ विरोधी उनमे एक प्रकार की बुजुरगाना ऊंचाई या बडप्पन देखते थे और इसीलिए उनसे डरते थे।

इधर कुछ ऐसे भी लोग है, जो उन्हें देवता या अवतार का रूप देने में व्यस्त है, ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस धीरे-धीरे देवता बनाये जा रहे है। मेरा विचार है कि गाधीजी की कभी भी यह इच्छा नही रही होगी। लेकिन दूसरो के लिए नियम बनाना मेरा काम नही है। ईसाई-समाज की तरह एक व्यक्ति के विषय मे वोलते हुए, जो जेक्विस मेरीटन—कैथोलिक दार्शनिक—के समान इस बात मे विश्वास करते थे कि एक रहस्यवादी सत्य-निरीक्षण की बुद्धि ईश्वर ने कृपापूर्वक अपने उन सभी भक्तो को दी है, जो ईमानदारी और सच्चाई के साथ उन्हे खोजते है, इस विषय में मै इतना ही कह सकता हूँ—राजकुमारी अमृतकौर के ही शब्द मानो मेरे शब्दो मे भी प्रतिध्वनित होते है—"ईश्वर के द्वारा प्रशसित ऐसे वहुत कम लोग होगे, जैसे गाधीजी।" सतों के समान वे एक अति विनम्र व्यक्ति थे और मेरे लिए यह बहुत खुशी की वात है कि उनकी आत्मा की शाति के लिए मेरी जानकारी मे लदन और पेरिस के गिरजाघरो में प्रार्थना की गई। यह पर्याप्त है कि युग-युग तक एक सत के सदृश्य और निश्चय ही एक ईश्वर द्वारा निर्वाचित दूत के सदेश के समान उनका सदेश लोगो के कानों मे गूजता रहेगा। 'औसरवेटर रोमेनो' नामक अखवार के शब्दो मे—"उन्होने अपने तरीके से ईसा का अनुकरण किया था। ईसा ने कहा था, 'वे धन्य है जो शाति को प्राप्त हो चुके है' और गाधीजी को यह गौरव प्राप्त हुआ, हालाकि उन्हे इसके लिए अपना जीवन देना पडा।"

उनका सदेश है क्या ? वही पुराना सदेश कि जिन्हे आदेश दिया जाता है, उन्हे अनुशासन के चारो अगो, ब्रह्मचर्य, गरीवी, आध्यात्मिक साहस और सत्य के प्रति अडिग प्रेम का पालन करना ही चाहिए। उन्हे जीवमात्र के प्रति दया का व्यवहार करना चाहिए जैसाकि सत फ्रासिस ने भी कहा था, अहिंसा का मन और

कर्म से पालन करना चाहिए। और यह कि मृत्यु के बाद जीवन के आदि-भौतिक अनुमानो और ईश्वर की अप्रश्नात्मक इच्छा की परीक्षा करते रहने के बजाय अपने हृदय के इरादो पर अधिक विचार करना चाहिए, और यह कि उन्हे कष्ट पहुँचाने के बजाय सदा स्वय कष्टो का स्वागत करना चाहिए, क्योकि इससे व्यक्ति को मानवमात्र के प्रति कल्पना और समवेदना की प्रेरणा मिलती है, और यह कि वे सहनशील, नम्र, दयालु, लम्बे समय तक कष्टसहिष्णु बने, क्योकि इन बातो के विरुद्ध कोई नियम नही है।

मार्क्सवादियो के इस कथन के विरुद्ध कि सर्वप्रथम पृथ्वी पर 'पदार्थ' था गाधीजी ने 'आत्मा' का उपदेश दिया था। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार सत्य सापेक्ष है और वह सामाजिक सुविधाओ पर निर्भर करता है। गाधीजी का कहना था कि सत्य का मूल्य सदा निरपेक्ष है और यही ईश्वर का रूप है। वस्तुओ के द्वन्द्वात्मक तत्वज्ञान-सबधी निरर्थक शास्त्र के विरुद्ध उन्होने सीधे-सादे नैतिक सत्यो और आवश्यक एव स्वत-प्रमाणित मानव-आचरण के मूल्यो को हमारे सामने उपस्थित किया। प्रत्येक कार्य की जड में मूलत. आर्थिक कारण है—इस व्याख्या के विपरीत उन्होने मनुष्यो को युद्ध के मनोवैज्ञानिक प्रारभिक कारणो को अपने भीतर, अपने विचारो में एवं आत्म-नियत्रण-शून्य लोगो की ऐसी चर्चाओ में, जो हिंसा के नाटकीय प्रदर्शन को हमेशा प्रेम करते हैं, खोजने की शिक्षा दी। हिंसा की जडे किसी एक जाति की विशेषता नही, वरन् वे जडें प्रत्येक व्यक्ति के भीतर छिपी है। इसलिए कोई भी व्यक्ति इस पाप से मुक्त नही है। वर्ग-सघर्ष और वर्ग-द्वेष फैलाने वाले मार्क्सवादी एव उन सभी लोगो के विरुद्ध जो अन्य दूसरे प्रकार की सांप्रदायिक, धार्मिक, जातीय, वर्गीय या रगभेद-सबधी घृणा का प्रचार करते है उन्होने एक ऐसा रास्ता दिखाया जिस पर चलकर मानव-जाति अपनी शक्ति के विकास की दिशा म आगे बढेगी। इस भारी मार्क्सवादी संदेह की जगह उन्होने भरोसे और निष्कपट सदिच्छा से प्राप्त होने वाले पुरस्कार की शिक्षा दी। वे मार्क्सवाद के विरोधी नही थे। वे बहुत रचनात्मक थे और इसीलिए मार्क्सवादी होने से वे कोसो दूर थे।

यही कारण है कि उनका दर्शन एक प्रकार से नया न होते हुए भी दूसरी तरह से बिल्कुल नया, बिल्कुल सामयिक है, और भूल से आज लोग जिसे समाज का वैज्ञानिक दर्शन कहते है, उसके और दभ की बारीकियो के विरुद्ध वह एक प्रचड आग है। वे एक ऐसे स्वप्नदर्शी थे, जिसने अपने बहुत-से स्वप्नो को साकार

कर दिखाया। जहाँ कि एक ओर हिटलर, स्टेलिन जैसी विश्व की सफल हस्तियों ने लोगो की सभावना से अधिक शीघ्र दुनिया मे अपने शत्रुओ का ही निर्माण किया, वहीपर इस 'असफल' व्यक्ति ने, जो कभी जेल मे बन्द किया गया, कभी लोगो ने दुतकारा और अन्त मे जो कत्ल किया गया, और जो हमारे युग का एक वडा व्यवहारवादी राजनीतिज्ञ था, हमें केवल हिन्दुस्तान की आजादी ही नही दिलाई वरन् दुनिया को आशा का एक सदेश दिया—ऐसी दुनिया को जो आशा की माग कर रही है।

यह एक ऐसा दर्शन है जो यह दावा करता है कि इस दृश्य और चेतन जगत् से परे, जहा एक वस्तु दूसरी के वुरी तरह से पूरे क्रोध और जोर के साथ पीछे पड़ी है, एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ससार है—मानव-मूल्यो का एक ठोस जगत् है—जहा न तो भिन्नताए है और न परिवर्तन की छाया, और जहा सच्चाई और नम्रता के साथ अपने भीतर खोज करने वाला व्यक्ति शाति-रत्न को प्राप्त कर सकता है। उनका शांतिवाद एक वैरागी के शातिवाद से भिन्न था। फकीर वे अवश्य थे, परन्तु वे यथार्थ या तथ्य से भागते नही थे, उसमे प्रवेश करते थे। परन्तु वस्तुओ मे छिपे आसुओ को भली प्रकार जानते हुए, और दु ख के क्षेत्र में नौसिखिया न होते हुए भी, वे एक ऐसे व्यवहारवादी थे, जिन्होने मेहतर के काम तक से कभी नफरत नही की। अपने पीछे चलने वालो को वे हमेशा समाज-सुधार की दुनिया मे जाकर, राजनीति के नीरस रास्तो पर चलकर एक अच्छे मेहतर के समान, एक अच्छे हरिजन के समान दुनिया को स्वच्छ करते रहने का आग्रहपूर्ण उपदेश देते रहे।

वे अपने को हिन्दू कहते थे और सच्चे अर्थ मे वे टाल्स्टायवादी थे। परन्तु वे ऐसे हिन्दुओ में से एक हिन्दू थे जो अपनी जाति के ऐतिहासिक वोझ से डरते नही थे। इसपर भी डरवन में अपनी मेज के ऊपर दीवार पर उन्होंने ईसा का का एक चित्र लगा रखा था, जो वडा अनोखा और सुन्दर था। इसे उन्होंने इस ढग से लगा रखा था कि ऊपर निगाह करते ही वे उसे देखकर याद कर सके। श्रीमती पोलक के शब्दो मे, "उनकी आखो में सवसे अधिक दया थी।" भारत को उन्होने जो भी सदेश दिया, उतने ही अश तक उन्होने दुनिया को 'विश्व-ईसाईयत' की प्रेरणा का सदेश दिया था—और किसी भी दशा में कम उस पश्चिम को नही, जो दर्पपूर्वक पूर्व के ईसा को 'अपना' मानने का दावा करता था। पीटर के समान उन्होने पश्चिम को कितनी गहराई तक यह सोचने के लिए विवश किया

कि इसने इन दिनो अपने उस शहीद देवता को अपने आचरण से कितना अधिक धोखा दिया है। इस शक्ति-पूजक शताब्दी और हमारी वर्तमान सभ्यता के खिलाफ अत्याचारियो के इस नये युग मे जबकि इन्सान एक बार पुन अधर्म के घर में भौतिक शक्ति का पुजारी बन गया है, गाधीजी मानवता के एक साक्षी है।

गाधीजी के साथ आज वे सब पुकार रहे है जो युद्ध के अस्त्रो द्वारा कत्ल किये गये है, या जिन्हे दम घोट कर मारा गया है, या जो जीवित ही अत्याचारियो द्वारा दफना दिये गये है और जिन अत्याचारियो को हम बिना किसी हिंसक प्रतिरोध के क्षमा कर देते है। डचाउ से लेकर आर्कटिक तक के बन्दी और श्रम कैम्पो मे, जेलो एव धुधुकाते स्पेन के गिर्जाघरो मे जो लोग हिंसा द्वारा विजय पाने वाले दर्शन के, पवित्र भूमि और पवित्र मूर्ति के आसपास तक, शिकार हुए है, उन सब की कामना आज गाधीजी के साथ है। ये सब उन हिंसक और महत्त्वाकाक्षी लोगो के विरुद्ध सच्चे प्रेम-विज्ञान और मनोवैज्ञानिक बुद्धि के गवाह है जो पुकार-पुकार कर कहते है—'घृणा क्यो न करें', जो राष्ट्रीय तर्क के आगे सब बातो को तुच्छ समझते है, और जो सत्य को केवल एक ऐसी नीति मानते है जिसके अन्तर्गत शाति तक एक प्रकार का युद्ध है। 'कवेस्ट्री ड्रेस्डन' और जापान के देवदूत 'कागवा' के देशवासियो की पुकार भी गाधीजी के साथ है, क्योकि जहा न्यायालय होता है और सही न्याय, वहा हमारा राष्ट्रीय अभिमान ऊचा रहता है, लेकिन कुछ ऐसे भी लोग है, जो अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को भी महत्त्व देते है और मानते है कि हमारे दिलो की कठोरता और हमारी आत्माओ की महत्वाकाक्षा के कारण बाइवल-वर्णित घुडसवार हमारे बच्चो के शरीरो को रोदते हुए चलते रहने चाहिए। गाधीजी ने हमे बिना किसी भय के अपने दिमागो को शात रखने की, भय से शून्य उदारता की शिक्षा दी है जो कि अभिमान के साथ मिलकर सब बुराइयो की जड बन जाती है। साथ-ही-साथ सत्य के प्रति उस निष्ठा का उपदेश दिया है जिसमें कट्टरपन और घृणा के लिए कोई स्थान न हो।

हममे से कुछ लोगो ने अपनी आखो से इस युग के सीजरो—मुसोलिनी, हिटलर और स्टेलिन—को अपने वैभव के उत्कर्ष के दिनो में देखा है और फ्रेकलिन, रूज़वेल्ट, एव गरीव मैसारिक जैसे महान् लोकतत्रवादियो को भी देखा है। शीघ्र ही इन सवको निर्णय का सामना करना होगा। परन्तु इनसब से महत्त्वपूर्ण उस सत की वह शाति-आवाज है जो दबाय जाने के बाद भी आज सुनाई देती है, और जिसके समस्त रास्ते आनद के रास्ते थे, जिसकी सब पगडडिया शाति की पगडडिया थी।

: ४ :

मेरी श्रद्धांजलि

जी० डी० एच० कोल

प्रशसा करने योग्य गुण के विचार से महानता दो प्रकार की होती है। पहली वह जो विशुद्ध बौद्धिक या कलात्मक होती है, जिसके अधिकारी पात्र को चाहे जितनी ख्याति प्राप्त हो जाय, लेकिन यह महानता उसे दुनिया से बिल्कुल अलग कर देती है, जबकि दूसरे प्रकार की महानता अपने पात्र को, एक ऐसे प्रतिनिधित्व का गौरव देकर उसे दुनिया से मिला देती है जिसमे देश के बहुत-से नर-नारी अपनी आकाक्षाओ और भावनाओ की अभिव्यक्ति केवल शब्दो में नही अपितु जीवन की कला में देखते है। मै इस बात को अस्वीकार नही कर सकता कि यह दूसरे प्रकार की महानता कभी-कभी कलाकारो या लेखको म और प्राय: कर्मशील व्यक्तियो मे पाई जाती है; परन्तु प्राय से अधिक यह दार्शनिक की अपेक्षा कर्मठ व्यक्ति या सुन्दर वस्तुओ के निर्माता मे पाई जाती है।

गाधीजी प्रधानतया इस दूसरी श्रेणी के महान् व्यक्ति थे। उनकी महानता और अपने लोगो के एव दुनिया के हृदय पर उनके असीम प्रभाव का कारण यह था कि वे अपने देश के साधारण नर-नारी के साथ एक हो जाते थे और उन लोगो को इस तादात्म्य की अनुभूति करा देने की असीम शक्ति रखते थे। जब मै कहता हूँ "उनकी जाति" तब मेरा मतलब केवल हिन्दुओं से नही है, हालाकि उनपर उनकी अपील का प्रभाव पूरी तरह से पडता था, बल्कि मेरा मतलब उन सभी हिन्दुस्तानियो से है—हिन्दू, मुसलमान एव वे सभी जातिया, जो अपने रोजाना के सघर्ष और देश-विभाजन के बावजूद भी मिलकर एक विशाल राष्ट्र का निर्माण करती है और जिनके समान हित और भविष्य की समान सम्भावनाए है। गाधीजी भारतीय एकता की एक महान् प्रतिनिधि हस्ती थे और इसी एकता एवं उस एकता में अपने अडिग विश्वास के कारण उनकी मृत्यु हुई।

हिन्दुस्तान के एक ऐसे प्रतिनिधि को, पश्चिम के लिए, और पश्चिम के भीतर और बाहर रहने वाले उन लोगो के लिए जो उनकी बहुत प्रशसा करते थे, समझ सकना आसान नही है। जिस तरह गाधीजी ने सोचा या महसूस किया, उस

व्यक्ति के लिए नही वरन् अपवादस्वरूप सत के लिए ही निश्चित है, तो मै यह उत्तर दिये बिना नही रह सकता कि सत या वैराग्य का मेरा अपना आदर्श यह है कि साधारण मनुष्य के जिन्दगी के तरीके को ही एक इच ऊचे स्तर तक उठाया जाय, जो न तो इससे तत्व रूप मे सर्वथा भिन्न ही हो और न प्रतिकूल ही।

पाठक चाहे तो मेरे इस विचार को यह समझकर छोड सकते है कि मेरे न समझ सकने का ही यह नतीजा है। यह हो सकता है, लेकिन यह बात मुझे कभी यह सोचने के लिए मजबूर नही करती कि गाधीजी किसी भी दशा में कम मानव-प्रतिनिधि थे। आत्म-तादात्म्य द्वारा इस प्रतिनिधित्व के गुण के बिना उन्होने जो कुछ किया, वह कभी नही कर सकते थे और न उनके इतने अनुयायी हो सकते थे। भारतीयो की ओर से चलाया गया दक्षिण-अफ्रीका का उनका सत्याग्रह इस बात का जीता-जागता उदाहरण है। यह सर्वांश मे एक व्यक्तिगत सफलता थी जिस की विशेषता का पहला कारण गाधीजी की वह आश्चर्यजनक शक्ति थी जिससे वे अपने को उन सभी लोगो के साथ मिला देते थे, जिनके लिए वे सघर्ष करते थे। इस प्रकार संपूर्ण उद्देश्य को वे अपनी सच्चाई और सत्य के प्रति आदरभाव से भर देते थे।

उनके यही गुण उनके साथ हिन्दुस्तान मे आये और वे काग्रेस एवं अन्य राष्ट्रीय नेताओ से उनके सबध में आदि से अन्त तक प्रकट होते है। गोखले में, जिनकी प्राय गाधीजी बडी उदारता से प्रशसा किया करते थे, उनके बहुत-से गुण पाये जाते थे। भारतीय सघर्ष की साधना के समय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की अपेक्षा उन्हें अधिक जटिल और व्यापक मसलो का सामना करना पड़ा था। भारत में अग्रेजी राज्य की समाप्ति एव स्वराज्य की प्रतिष्ठा के प्रश्न से सर्वदा भिन्न एक ऐसा मसला था, जिसका कि उन्हें सामना करना था, और वह था भारत के निवासियो के लिए एक ऐसी 'जीवन-पद्धति' या जिन्दगी का नमूना मालूम करना, जिसका कि अमल यहा के लिए सबसे अधिक उपयोगी हो। इस विषय में भारत के राष्ट्रीय नेता स्वय अनेक मत रखते थे और यदि गाधीजी को मै ठीक समझता हूँ, तो जो रास्ता इस दिशा मे उन्होने अपनाया वह दूसरो से बिल्कुल भिन्न था। एक ओर, सभी धर्मो में मतभेद से परे उन समान तत्वो के वे कायल थे और इसलिए हिन्दू धर्म से उन निषेधात्मक दोषो को दूर करना चाहते थे, जिनके कारण समान मानव बधुत्व के विकास की इसमें गुजायश नही रही थी। यही कारण है कि अपने स्वधर्मियो में रूढिवादी और प्रतिक्रियावादी दलो का वे हमेशा विरोध करते

रहे। यह विरोध राजनैतिक और दार्शनिक दोनो दृष्टियो से था। वे एक ऐसे भारत के लिए प्रयत्नशील थे जिसमे भिन्न-भिन्न धर्मो के लोग केवल सहिष्णुता के साथ नही, वरन् भाई-भाई के समान साथ-साथ रह सकें। इसके लिए आवश्यक था कि हिन्दू मुसलमानो के प्रति और मुसलमान हिन्दुओ के प्रति अपने दृष्टिकोण को वदल दें, साथ-ही-साथ जाति को मनुष्य-मनुष्य के वीच एक अजेय वाधा के रूप में अस्वीकार कर दें। दूसरी ओर, वे ऐसे लोगो से सहमत नही थे जो यह चाहते थे कि पश्चिमी सभ्यता के सवक सीखते समय हिन्दुस्तान का जो कुछ अपना है, उसे भुला कर वह एकदम अपने को पश्चिमी जिन्दगी के तौर-तरीके के आधार पर ढाल ले। उनके आदर्श भारत की सीमा मे न तो दौलत को कोई स्थान था, फिर उसे चाहे जिस तरह से क्यो न बाटा गया हो, और न सैनिक शक्ति को। जीवन की सादगी और पार्थिव बल के विरुद्ध नैतिक शक्ति मे भरोसा उनके आदर्श का तकाजा था। इस आदर्श का एक पक्ष उन्हें खद्दर और सादे सघ-जीवन की वुनियाद पचायत की ओर ले गया, एव दूसरे पक्ष के भीतर से अहिंसक असहयोग की नीति का अथवा व्यवहार में अपने को असहयोग के रूप मे अभिव्यक्त करने वाली अहिंसा का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप इस दृष्टि से वे पूरे पश्चिमवादी लोगो के मौलिक विरोध में थे—एक ओर उन मिल-मालिको और इस्पात-उद्योगपतियो के गाधीजी खिलाफ थे जो हिन्दुस्तान में पूजीवादी औद्योगीकरण का स्वप्न देखते थे, और दूसरी ओर उन मार्क्सवादियो के जो सामाजिक क्राति द्वारा सर्वहारावर्ग के नियत्रण मे एक उसी प्रकार के औद्योगीकरण का सपना देखते थे। परन्तु ऐसा कभी नही हुआ कि अपने इस तीव्र मतभेद के कारण उनका कभी मिल-मालिकों से या मार्क्सवादियो से सीधा झगडा हुआ हो, अथवा इन दोनो पर उनका कोई प्रभाव न हो। वे झगडा करना पसन्द कर नही सकते थे, क्योकि वे हिन्दुस्तान को आजाद और संगठित देखना चाहते थे। वे यह कभी नही चाहते थे कि आजादी की लडाई के दौरान में या इसे प्राप्त करने के वाद देश आन्तरिक कलह से छिन्न-भिन्न हो जाय। फिर भी इन दोनो दलो का विरोध वे स्वय अपने जीवन के उदाहरण और अपने सिद्धान्त के उपदेश द्वारा किया करते थे। इस विषय में उनका यह कहना था कि भारतवर्ष पश्चिम से जो कुछ सीख रहा है उसमें से उन पश्चिमी विचारो और व्यवहार को लेकर अपने में पचा लेना चाहिए जो उसकी अपनी विल्कुल भिन्न जीवन-प्रणाली को विकसित करने मे सहायक हो, न कि अपनी परंपराओ और स्वभाव के विपरीत वह अपने को विल्कुल पश्चिम

में हजम हो जाने दें ।

इस सैद्धान्तिक सघर्ष के निश्चय करने में, स्वतंत्र भारत को गाधीजी की जीवित सहायता के विना अपना रास्ता आप खोजना होगा । समस्या के इस हल के प्रति गाधीजी के इस दृष्टिकोण को नगरो की अपेक्षा गावो में अथवा शहरों में रहने वाले शहरी दिमाग वाले लोगो की अपेक्षा देहाती ढाचे में ढले शहरियो से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ था । काग्रेस के भीतर किसानो को एक क्रियात्मक शक्ति के रूप मे लाने, एव राष्ट्रीय निर्माण के कार्यो में उन्हें अयोग्य और असमर्थ मानने वाली विचारधारा का मुकावला करने में उनका प्रभाव सर्वोपरि था । अभी पिछले दिनो मुझे काग्रेस की वित्त-नीति एव उद्योग-नीति-सवधी रिपोर्ट पढने का मौका मिला था । इस रिपोर्ट मे नीति-सवधी अस्पष्ट एव धुधले उल्लेखो को पढकर मै दग रह गया । यह सव इसलिए हुआ कि नीति निश्चित करते समय रिपोर्ट वनाने वाले ग्राम-उद्योग के विकास और पश्चिमी ढग पर सगठित व्यापक उद्योगीकरण के वीच ठीक चुनाव नही कर सके अथवा राष्ट्रीय संयुक्त योजना मे दोनो प्रणालियो को एक सतुलित स्थान दे सकने में वे असमर्थ रहे । मै ऐसा मानता हूँ कि दोनो मार्गो में समन्वय या मेल करने का रास्ता खोजा जा सकता था और यह भी विश्वास है कि कम खर्च एव अधिक श्रम पर आधारित ग्राम-विकास ही वुनियादी गरीवी के खिलाफ उठाये गये आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करेगा । यह धारणा विल्कुल अव्यावहारिक है कि भारतवर्ष को केवल वड़ी पूजी की लागत से ही दुनिया के अति वडे व्यवसायी देशो के समकक्ष तेजी से उठाया जा सकता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति या तो वडी तेजी से वढने वाली आवादी के कठिन आत्मत्याग द्वारा हो सकती है, जो अनिच्छा से पहले से ही काफी सयमी है अथवा सिद्धान्तरूप में विदेशो से विशेषकर सयुक्त राष्ट्र अमरीका से असख्य पूजी उधार लेकर हो सकती है । यह सोचना पागलपन होगा कि प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकतानुसार कर्ज मिल सकता है और यदि ऐसा हो भी सका तो उसका प्रभाव यह होगा कि हमें देश की आजादी से फिर हाथ धोना पडेगा । मेरा यह सुझाव नही है कि हिन्दुस्तान को लागत-पूजी या मूलधन को वढाने की आवश्यकता नही है । स्पष्टत. पूजी की आवश्यकता है, विशेषकर सिंचाई एव जल-विद्युत योजनाओ के लिए, अधिक उन्नत आवागमन के साधनो के लिए, और एक सीमा तक, इजिनियरिंग और उन्नत उद्योगो के विस्तार के लिए । परन्तु इस प्रकार किया गया प्रत्येक प्रयत्न वहुत दिनो तक जनता की गरीवी पर एक दवाव डालता रहेगा और

इस प्रकार उनके रहन-सहन के तरीको पर एक आक्रमण-सा होगा; परन्तु यदि इस योजना को ग्राम-उद्योगो के विकास और ग्राम-निर्माण के ऐसे कार्यो से मिला दिया जाय, जो असीम श्रम-साधनो से अधिक उपयोगी काम लेने के लिए निश्चित किये गए हो, न कि ऐसे साधनो का सहारा लिया जाय, जिनमें स्त्री-पुरुष का काम करने के लिए अधिक खर्चीली मशीनो की आवश्यकता हो; तो उनके रहन-सहन के तरीको और उनके जीवन-स्तर में अवश्य सुधार होगा और वह भी बिना किसी अनुचित दबाव के।

मुझे पूरा भरोसा है कि इस सबध में गाधीजी का सिद्धान्त पूर्णतया कल्याण-कारी था। यह एक अच्छे अर्थशास्त्र के साथ-साथ एक अच्छा समाज-शास्त्र भी था। इसका सकेत उस मार्ग की ओर था जो देश की बुनियादी गरीबी के खिलाफ हमें एक सफल सघर्ष की ओर ले जाता और जिसमें भारतीय जीवन-प्रणाली के तत्त्वो को पूर्ण सरक्षण भी प्राप्त होता।

यह अर्थ-नीति, अन्य बातो के समान, गांधीजी के लिए धर्म के प्रति उनके दृष्टिकोण से ही उद्भूत हुई थी। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक था, जिसकी विभिन्न तरीको, नामो और रूपो से लोग उपासना करते है। व्यक्तित्व की किसी साधारण धारणा के अनुसार यह ईश्वर किसी भी दशा मे व्यक्तिगत हस्ती नही रखता है। गाधीजी का ईश्वर एक प्रकार से एकता का, अर्थ का एव मूल्य का सिद्धान्त था, और इस ईश्वर की उपासना के स्वरूप स्वय सत्य के पहलुओ में समाविष्ट थे, जो प्रत्येक धर्म मे बहुत-कुछ नकलीपन और कट्टरपन से शामिल हो गए थे और इन्ही दोषो से वे धर्म की शुद्धि करना चाहते थे। उनका यह उद्देश्य कदापि नही था कि सभी लोग या सभी हिन्दुस्तानी इस ईश्वर की उपासना एक ही रूप या पद्धति से करे, बल्कि वे सब अपने सभी ईश्वरो और पूजा-विधियो को एक मौलिक सत्य के विभिन्न पहलुओ एव तरीको के रूप मे पहचानने के लिए सगठित हो।

पश्चिमी सभ्यता के विषय मे उनका लगभग वही दृष्टिकोण था, परन्तु कुछ बातो मे भिन्न था। पश्चिमी जीवन-प्रणाली में, कुछ स्पष्ट मूल्यो के साथ जो उन्हे अपने लोगो में भी दिखलाई देते थे, वे उसी आंशिक सत्य के मिश्रण को स्वीकार करते थे, परन्तु एक हिन्दुस्तानी के नाते और भारतीय परपराओ एवं लोगो के साथ अपनी एकरूपता की गहरी चेतना से पूर्ण होने के कारण वे पश्चिमी जीवन के मूल्यो से उसी सीमा तक अपना तादात्म्य स्थापित नही कर सके, जिस सीमा तक हिन्दुस्तान की प्रत्येक जाति के प्रति उन्होने किया। पश्चिमी जीवन के

मूल्यो को उन्होने देखा और कुछ हद तक उसके कायल भी रहे, पर उसमें हिस्सा नही ले सके। पश्चिमी मूल्य उनके लिए सदा वाह्य रहे और अधिकाश में उनके निजी मूल्यो से उनका मेल नही वैठता था। और इसलिए जव एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा जिसका जीवन पूर्णतया पश्चिमी रहा, गाधीजी की महानता के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने का कर्त्तव्य सामने आया, तो उस समय मुझमे एक वाहरी-पन के भाव का मौजूद रहना अनिवार्य था, क्योकि मै उनका आदर कर सकता हू, पर एकरूपता का अभाव तो रहता ही है। और मै ऐसा चाहता भी नही कि उसे होना चाहिए था।

: ५ :

गांधीजी की सफलता का रहस्य

स्टैफर्ड क्रिप्स

गाधीजी की जिन्दगी ठीक उसी तरह शुरू हुई थी जिस तरह हममें से कोई भी शुरू करता है। उन्होने वकील वनने के लिए पढाई शुरू की और इस सिलसिले मे लदन की 'मिडिल-टेम्पिल' नामक सस्था के वे विद्यार्थी हुए, जहाँ बाद में उन्होने वैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की। आगे चलकर अपने इन दिनो के लिए उन्हें पश्चाताप नही हुआ वल्कि मुझसे अक्सर वे जिन्दगी के उन दिनो की वाते किया करते थे। अपनी कानूनी योग्यताओ पर उन्हें अभिमान था और दक्षिण अफ्रीका में वकालत करते समय पायी गई अपनी कानूनी सफलताओ को वे वडा महत्त्व देते थे।

यहा आकर पहली वार वे अपने लोगो की मुसीवतो के निकट सपर्क में आये। यही वे हिन्दुस्तानियो और गरीवो के वकील वने और यहीपर उन्होने अपने लोगो को गुलामी से आजादी की ओर ले जाने वाले मानसिक निश्चय और उद्देश्य को मजवूत वनाया।

इस समय तक अहिंसा-सवधी उनका धार्मिक विश्वास एक रूप ले चुका था और इस विश्वास का आधार था भारत में हिन्दुत्व के गौरवपूर्ण दिनो में अपनाई गई नीति।

अहिंसा उनके लिए एक निषेधात्मक नीति नही थी। इसका उससे कही अधिक मूल्य था। प्रेम की शक्ति में विजय प्राप्त करने का यह दृढ निश्चय था।

यह निश्चय उस शक्ति के प्रति गहरे और अडिग विश्वास पर अवलम्बित था। प्रेम की इसी शक्ति की बदौलत वे अपने देश को बन्धन से मुक्त करने का आग्रह रखते थे और इसी उद्देश्य के लिए वे हिन्दुस्तान मे लौटकर आये। अहिंसा और प्रेम के द्वारा आज़ादी के इस सदेश को देश के कोने-कोने मे फैलाने के लिए उन्होने वर्षों इस छोर से उस छोर तक पैदल भ्रमण में लगा दिये।

अपने दैनिक जीवन से धर्म को अलग रखने का खयाल तक उनके मन में कभी नही आया। धर्म ही उनकी जिन्दगी थी और उनकी जिन्दगी ही धर्म था। जब वे कोई अन्याय होते देखते अथवा जब कोई उन्हें ऐसा लगता कि उनके लोगों के लिए आजादी की दिशा में आगे बढने का यही ठीक समय है तो ऐसी अवस्था में अपने विश्वास को वे सदा कार्य मे लाते थे। हिन्दुस्तान मे रहने वाले सभी धर्मों और जातियो के लोगो के चरित्र और भावना को उनसे अधिक समझने वाला और कोई व्यक्ति नही था। वे यह भी जानते थे कि आत्मत्याग की बात का उनपर कितना असर होता है और इसीलिए अपने आत्मत्याग को ही उन्होने अपने सभी कामो का केन्द्रीय लक्ष्य बनाया था। बढते हुए भक्त-अनुयायियो से सदा घिरा रहने वाला उनका जीवन सबसे सादा था। उनका भोजन, उनके कपडे, उनका घर, सभी कुछ बिल्कुल सीधा-सादा था।

उन्होने अपनेको आरामतलबी से सदा दूर रखा और ऐसी बहुत-सी चीजो के बिना रहे, जिन्हें हममे से अधिकाश लोग आवश्यकता मान सकते है।

उनका 'उपवास' अपने लोगो के बीच उनका सबसे शक्तिशाली हथियार था और इसके लिए वे हमेशा इच्छुक रहते थे। दूसरे के पापो को अपने ऊपर लेते हुए वे सदा उनके लिए प्रायश्चित्त करते थे।

वे जिद्दी नही थे, परन्तु उन्हे यदि एक बार अपने काम की अच्छाई पर विश्वास हो जाय तो उनके निश्चय की उस दृढता को जीत सकना असभव था।

वे एक साधारण साधु नही थे। कानूनी तौर पर दीक्षित उनका वकीली दिमाग़ उनके धार्मिक दृष्टिकोण के मेल से तर्क एवं निर्णय मे बड़ा कुशल बन गया था। तर्क के वे बडे अजेय विरोधी थे और प्राय उनका ऐसा रुख रहता था कि जिस नीति और विचार का वे समर्थन कर रहे है, वह ध्यानावस्था मे ईश्वर से आया है और तब दुनिया की कोई ताकत, कोई तर्क, उन्हें उससे हटा नही सकता था। वे जानते थे कि वे ठीक है, बल्कि प्राय प्रार्थना और ध्यान के द्वारा उनका मस्तिष्क किसी निर्णय पर पहुँचता था, अपने साथियो के साथ तर्क करके नही।

एक निष्ठावान व्यक्ति की तरह अपनी मान्यताओ को वे निर्भीकता के साथ सदा अमल में लाये और पूरी तरह से उनपर भरोसा किया। इस दृष्टि से अपने तमाम समकालीन व्यक्तियो से वे बहुत ऊचे थे। अपने युग में या पिछले इतिहास में मुझे ऐसा कोई व्यक्ति दिखलाई नही पडता जिसने भौतिक वस्तुओ के ऊपर आत्म-शक्ति का इस विश्वास और पूर्णता के साथ प्रयोग किया हो।

अपने धर्म के क्षेत्र मे उनका दृष्टिकोण बहुत उदार था। एक सच्चे हिन्दू के नाते उन्होने दूसरे को अपने धर्म मे कभी शुद्ध नही किया, क्योकि मानव-जीवन पर पडने वाले सभी धर्मो के प्रभाव के मूल्य को वे स्वीकार करते थे। वे हमेशा दूसरो से यह आशा रखते थे कि उनके समान ही वे लोग भी अपनी मान्यताओ और धार्मिक विश्वासो के अनुरूप जीवन बिताएँ।

उनका मुसलमानो, ईसाइयो या दूसरो के साथ कभी कोई धार्मिक या साप्र-दायिक विरोध नही रहा। जैसाकि वे कहा करते थे, उन्होने दूसरे धर्मो की सभी अच्छाइयो को अपने में मिला लेने की हमेशा कोशिश की थी और वे दूसरे धर्म वालो से भी हिन्दू धर्म की परीक्षा कर उसमे से उपयोगी तत्त्वो को अपने में ले लेने की बात कहा करते थे।

भारतीय स्वतत्रता किस प्रकार प्राप्त होगी, इस सबधी अपने विचारों पर वे मजबूती के साथ जमे रहे, परन्तु साप्रदायिक भावना और प्रतिद्वद्विता को टालने की उन्होने भरसक कोशिश की।

अपनी मृत्यु के समय जिस प्रयत्न मे वे जुटे थे, हिन्दू, मुसलमान और सिक्खो के आपसी मतभेदो को दूर करनेवाला वह प्रयत्न सचमुच बडा महान् था। इतना महान् कार्य अपने हाथो में उन्होने अभीतक कोई नही लिया था, और इसमें उन्हें बहुत हद तक सफलता भी मिली थी। करीब-करीब अकेले ही उन्होने बगाल की उस अशाति को शात किया, जो उनकी चारित्रिक शक्ति और शिक्षा के बिना नि:सं-देह बगाल में भी पजाब के समान भयकर और गंभीर सकट को फैलाने का कारण बनती।

एक व्यक्ति के नाते अग्रेजो के प्रति उनका विचार सदा मैत्रीपूर्ण रहा था और जहातक उनके सामान्य अस्तित्व का प्रश्न था, गाधीजी अग्रेज जाति को सदा सुखी देखना चाहते थे। सूत-उद्योग को लेकर जब हिन्दुस्तानियो के विरुद्ध एक कटु भावना इगलैण्ड में फैल रही थी, उस समय लकाशायर को जाकर देखने की गाधीजी की बात बहुतो को याद होगी। जैसाकि उनका नियम था, वे सीधे मजदूरो के बीच

में गए और अपने व्यक्तित्व और हमदर्दी के कारण वहा सभी की प्रशसा के पात्र वन गए। उनका व्यक्तित्व चुम्वक के समान आकर्षक था, विशेषकर निजी गहरी दोस्ताना वातचीत मे, जिसे वे हमेशा अपना वहुत समय दिया करते थे—केवल मौन के दिनो को छोडकर—वे सदा वडी-से-वडी और छोटी-से-छोटी वात पर चर्चा करने और अपना मत देने के लिए तैयार रहते थे। जिनसे वे मिले, उनके वे सच्चे दोस्त वन गए।

मैंने सदा उनमे एक ऐसे विश्वासपात्र और अच्छे दोस्त को पाया, जिसके शब्दो का मै पूरा भरोसा कर सकता था। कभी-कभी चीजो को उनकी निगाह से देखना और तर्क को समझ सकना मेरे लिए वडा कठिन होता था। परन्तु यह होना स्वाभाविक था, क्योकि मेरे पास पश्चिमी यूरोपीय विचारो की पृष्ठभूमि थी और वे भारत और पूर्व के दर्शन से पगे थे। अग्रेजी सरकार की जिस नीति को वे गलत और हमदर्दी से खाली समझते थे, उसके विरुद्ध उनका रुख वडा कडा रहता था, और युद्ध के वाद भी यह महसूस करने मे उन्हे वडी कठिनाई हुई कि इस देश (इगलैण्ड) के दृष्टिकोण मे कोई मौलिक परिवर्तन हुआ है, हालाकि मेरा विश्वास है कि सन १९४६ में केविनेट प्रतिनिधि-मडल के हिन्दुस्तान देखने के वाद आखिर वे यह वात मान गए थे। अपनी असहयोग की नीति से व्रिटिश सरकार द्वारा नियंत्रित हिन्दुस्तानी हुकूमत का विरोध करना विल्कुल स्वाभाविक था और मै तो यह कहूँगा कि अहिंसक साधनो द्वारा अपने लोगो की आजादी हासिल करने वाले सच्चे भारतीय राष्ट्र-वादी की यह एक अनुकूल प्रतिक्रिया थी। मुझे पूरा यकीन है कि यदि हमें अपने देश में उन्ही परिस्थितियो का सामना करना पडता, तो हम भी वही कदम उठाने को मजबूर होते, यदि हमारे भीतर भी उन जैसी ही आध्यात्मिक शक्ति और राजनैतिक दृढता होती।

हमारे सामने वे आज एक महान् आत्मिक शक्ति के रूप में आने वाली सकट-पूर्ण स्थिति के दिनो में हमारा और अपने लोगो का मार्ग-दर्शन करने के लिए खडे है।

हमारे वीच से उनका चला जाना दुनिया के लिए एक वड़ी भारी क्षति है, क्योकि आज हमें ऐसे नेता कहा मिल सकते है जो अपने जीवन और कर्म से प्रेम की असीम शक्ति के द्वारा दुनिया की मुसीवतो के हल पर जोर दे सकें। फिर भी यही वह सिद्धान्त है, जिसका ईसा ने उपदेश किया था और ईसाई होने के नाते जिसे मानने का हम दावा करते है।

हो सकता है कि दुनिया उनके जीवन से किसी वुनियादी उसूल की नसीहत

न ले, परन्तु यह निश्चित है कि वल-प्रयोग की सहायता से, सहार से, अपनी रक्षा की वातें करना आज व्यर्थ है और हमारी रक्षा या मुक्ति का सवसे वडा हथियार प्रेम की कल्याणकारी और असीम शक्ति ही है।

हम दिल से प्रार्थना करते है कि उनके देश में उनके धैर्य, सहिष्णुता, और लोक-प्रेम का उदाहरण सदा जीवित रहे और यह उदाहरण मुसीवत के उन वादलो के वीच से, जो आज देश पर छाये हुए है, उनके लोगो को सफलतापूर्वक सुन्दर और सुखमय भविष्य की ओर ले जाय, जैसा कि उनकी इच्छा थी और जिसके लिए सदा दृढता के साथ उन्होने काम किया और जीवन-पर्यंत जिसके लिए वे वलिदान करते रहे।

टामस ए केम्पिस के शव्दो से अधिक सुन्दर रूप उनकी भावना को और कोई नही दे सकता :—

"प्रेम वोझ का अनुभव नही करता, कठिनाई की वात नही सोचता, जो कुछ अपनी ताकत से वाहर है, उसके लिए कोशिश करता है, असभव का वहाना नही करता, क्योकि सभी वस्तुओ को वह अपने लिए न्यायपूर्ण और सभव मानता है।

"इसलिए किसी भी काम को हाथ में ले सकता है और वह वहुत-से ऐसे असभव कामो को पूरा करता है, उनके एक ऐसे निर्णय पर पहुँचाता है, जहापर प्रेम न करने वाला व्यक्ति वेहोश होकर वैठ जाता है।"

: ६ :

'एक बहुत बड़ा आदमी'

ई एम फॉर्स्टर

गाधीजी को सक्षिप्त श्रद्धाजलि भेट करते समय मै शोक पर अधिक जोर नही देना चाहता। शोक उन्हे हुआ है जो महात्मा गाधी को व्यक्तिगत रूप से जानते थे, या जो उनकी शिक्षाओ के वहुत निकट है। मै इन दोनो वातो का दावा नही कर सकता और न एक ऐसे व्यक्ति के विषय मे दया और करुणा से भरे शव्दो में वोलना उचित ही है, मानो उनकी मृत्यु का आघात हिन्दुस्तान या विश्वभर को नही, वल्कि स्वय उनपर हुआ हो। अगर मैंने उन्हे ठीक समझा है तो मै कह सकता हूँ कि वे मृत्यु के प्रति हमेशा उदासीन रहे। उनका स्वय का कार्य और दूसरो की भलाई उनके लिए सर्वोपरि थे और यदि उनका उद्देश्य जीवित रहने की अपेक्षा मरने से पूरा होता तो

वे निश्चित ही इससे सतुष्ट होते वे बाधा को सदा साधन मानने के अभ्यासी थे और इसी विषय को लेकर उन्होने अपनी 'आत्मकथा' मे लिखा है कि जो योजना मै तैयार करता था, ईश्वर की इच्छा सदा उसके अनुकूल नही होती थी, और १२५ वर्ष तक जीवित रहने की कल्पना की अपेक्षा, जिसकी उन्होंने अपने भोलेपन में आशा कर रखी थी, वे सबसे बड़ी बाधा मृत्यु तक को जीवन का सबसे वडा साधन मानते होते। उनकी हत्या हमारे लिए बडी भयकर और अविवेकपूर्ण है। अपने एक अग्रेज मित्र के शब्दो में हम यह चाहते थे कि यह वृद्ध सत जादू के समान हमारे बीच से ओझल हो। परन्तु हमे यह याद रखना चाहिए कि हम इस सारी घटना पर बाह्य दृष्टि से ही विचार कर रहे है, यह उनकी हार नही थी।

आज की इस सभा में यद्यपि शोक और करुणा का अभाव है, फिर भी हम एक श्रद्धामिश्रित आतक और अपने प्रति छोटेपन की भावना का अनुभव कर रहे है। गत सप्ताह मुझे जब यह समाचार मिला तो मुझे उस समय अपनी क्षुद्रता का गभीर अनुभव हुआ। मेरे चारो ओर के लोग कितने छोटे है, हममें से अधिकाश के जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से कितने अशक्त और सीमित है, और उस परिपक्व अच्छाई के मुकाबले में हमारे युग के ये तथाकथित महापुरुष शेखीवाज स्कूल-वालको से अधिक और कुछ नही है। कल समाचार-पत्र पढिए और देखिए कि वे क्या और किसलिए इतना विज्ञापन करते है। उन मूल्यो को परखिये, जिन्हें वे मानते हैं, उन कामो को समझिये, जिनपर वे जोर देते है। और तव नये सिरे से महात्मा गाधी के जीवन और चरित्र पर विचार कीजिए और भयमिश्रित श्रद्धा की एक कल्याण-कारी लहर से हमारा व्यक्तित्व हिल उठेगा। हम आज चीजो को गढना जानते हैं, स्थिति के अनुकूल अपने को बदल लेते है, हम अपने को निस्पृही और सहनशील समझते है। हमारे नौजवानो ने 'पीछे हटे हुए बहादुर' की मनोवृत्ति धारण कर ली है और यह सवकुछ ठीक माना जाता है। परन्तु हम आश्चर्य के भाव को खो रहे है। हम यह भूल रहे है कि मानव-स्वभाव क्या-क्या कर सकता है और इसका क्षेत्र कितना व्यापक है। इस महापुरुष की मृत्यु हमें यह याद दिलाती है कि उन्होने अपने अस्तित्व से उन सभावनाओ की ओर सकेत किया है, जिनकी आज भी खोज की जा सकती है।

उनका चरित्र वडा पेचीदा था, पर उसके विश्लेषण का यह स्थान नही है। परन्तु जो कोई उनसे मिला, उनके आलोचक तक ने उनसे उनकी अच्छाई का सबूत पाया—एक ऐसी अच्छाई जो साधारण प्रकाश से नही चमकती। उनकी व्यावहारिक

शिक्षा—अहिसा और सादगी का सिद्धान्त, जो चर्खे में मूर्त्तरूप हुआ था, उसी अच्छाई से उत्पन्न होता है और इसीने उनके भीतर स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की प्रेरणा को जन्म दिया था। वे सिर्फ अच्छे नही थे, उन्होने अच्छाई को रूप दिया था और इसीलिए आज दुनिया का प्रत्येक साधारण व्यक्ति उनकी ओर देखता है। उन्होने हिन्दुस्तान को उनके आध्यात्मिक नक्शे मे स्थान दिलाया। विद्यार्थियो और विद्वानो के लिए तो वह हमेशा उसी नक्शे मे था, परन्तु साधारण व्यक्ति को स्पष्ट साक्षी चाहिए, चारित्रिक दृढता के आध्यात्मिक प्रमाण चाहिए, और ये प्रमाण उसे उनके बन्दी जीवन मे, उनके उपवास मे, स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की उनकी आदत मे और आखिर मे उनकी इस मृत्यु मे मिले। अभी मै टैक्सी की कतारो के सामने से होकर गुजरा और वहा मैने ड्राइवरो को आपस में 'बूढे गाधी' के विषय मे चर्चा करते सुना। वे सब अपने तरीके से उनकी बडाई कर रहे थे। वे उनकी बडाई की कद्र अवश्य करते, वे किसी भी विद्वान् या विद्यार्थी की श्रद्धाजलि से अधिक महत्त्व इसे देते, क्योकि यह सादगी के भीतर से निकली थी।

मैंने उन्हे "एक बहुत बडा आदमी" कहा है। वे इस शताब्दी के महानतम व्यक्ति हो सकते है। लोग कभी-कभी लेनिन को उनके बराबर रखते है, परन्तु लेनिन का साम्राज्य इस दुनिया का था, और हमें यह भी पता नही कि आगे चलकर दुनिया उसके साथ कैसा व्यवहार करेगी। गाधीजी के साथ ऐसी बात नही थी। यद्यपि वे घटनाओ से सघर्ष करते थे, राजनीति पर असर डालते थे, तथापि उनकी जडें देश-काल से परे थी और यही से उन्हे शक्ति प्राप्त होती थी।

उन्होने चाहे किसी धर्म की प्रतिष्ठा न की हो, पर वे धर्म-प्रवर्तको के साथ रखे जा सकते है। वे बडे कलाकारो के साथ है हालाकि कला उनके जीवन का माध्यम नही थी। वे उन सभी स्त्री-पुरुषो के साथ है, जिन्होने यन्त्रवाद और विप्लव से अलग जीवन में कोई नई बात खोजने की कोशिश की, जिन्होने आनन्द को स्वामित्व या अधिकार से, विजय को सफलता से सदा अलग समझा और जिनका प्रेम में अटल विश्वास रहा।

: ७ :

गांधीजी की महानता का कारण

एल० डब्ल्यू० ग्रेनस्टेड

अपने समयातीत गुण से सम्पन्न यदा-कदा कोई ऐसी खबर हमे मिल जाती है, जो आघात और महत्त्व से भरी हुई होती है और जिसे सुनते ही ऐसा प्रतीत होता है कि मानो यह दुनिया के किसी अमर अर्थ और सत्य की द्योतक हो। कभी-कभी ऐसे समाचारो का सबध केवल व्यक्तिगत विषय तक ही सीमित रहता है। इसका सदेश केवल हमारे लिए ही महत्त्व रखता है, दूसरो के लिए इसका कोई अर्थ नही। परन्तु, कभी, प्राय नही, ऐसे समाचार विश्व के व्यापक विषयो से सवध रखते है और इसमें निहित सदेश को वहुत-से लोग पढ सकते है, यद्यपि उसे भली प्रकार समझने वाले लोग वहुत थोडे ही होते हैं और उसे पूर्णतया समझ सकने वाले तो और भी कम होते हैं। सभवत ऐसे सभी मामलो मे घनिष्टता और व्यक्तिगत सवध का तत्त्व रहता ही है, जिसके पीछे केवल अभिरुचि या दिलचस्पी ही नही, वरन् आत्म-तादात्म्य का गुण भी होता है, जिसके कारण होने वाली घटना की हमें केवल चिन्ता ही नही होती क्योकि ऐसी चिन्ता या उत्सुकता बहुत दूर की भी हो सकती है, वरन् ऐसा लगता है कि वह घटना मानो हमो पर घटित हुई हो। ऐसे समाचार केवल इतिहास की सामयिक घटनाओ की चर्चा ही नही करते अपितु उनके भीतर एक अनत तत्त्व भी रहता है। और ऐसे अनन्त तत्त्वो के ही हिस्से हम लोग है। आक्सफोर्ड में रहने वाले एक अग्रेज के लिए गाधीजी की मृत्यु का समाचार ऐसा ही था।

मेरे लिए यह किसी मित्र की मृत्यु का समाचार नही था, क्योकि मै गाधीजी से कभी मिला भी नही था। फिर भी मै गाधीजी के विपय मे उन लोगो से कही आधिक जानकारी रखता था, जिनके लिए उनकी मैत्री एक वडी वात थी। और यद्यपि हिन्दुस्तान, उसकी सस्कृति, उसकी आकाक्षाओ एव अन्य समस्याओ के लिए मै सदा उत्सुक रहा हूँ, फिर भी यह कहना कल्पना-मात्र होगा कि मै गहराई के साथ उसके मामले को जानता हूँ क्योकि स्वीज़रलैण्ड से आगे पूर्व की ओर मै कभी नही गया। परन्तु उस घातक रविवार के दिन, जव हमे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में चलने वाली, विनाशक शक्तियो का पता भी न था, मेरे लिए ईसाइयो की एक सभा मे गाधीजी की मृत्यु और जीवन के अलावा किसी दूसरे विषय पर वोल सकना असभव

था और सचमुच उसी सध्या को भारतीय विद्यार्थियो के साथ आक्सफोर्ड की एक शोक-सभा मे महात्माजी के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करना और उन विद्यार्थियो के प्रति—और विद्यार्थियो के ज़रिये भारत के प्रति पश्चिमी और ईसाई मित्रो की समवेदना प्रकट करने का कार्य सचमुच वडा नाजुक और हृदय-विदारक था। और एक ईसाई होने के नाते यह सदेश दे सकना मेरे लिए कठिन नही था, क्योकि यह मैं पूरी सच्चाई के साथ कह सकता हूँ कि गाधीजी के जीवन में ईसा मसीह की शिक्षा के बहुत-से तत्त्व अति अनुरूपता के साथ अभिव्यक्त हुए है, जिन्हे देखकर हम ईसाइयो का सिर लज्जा से झुक जाता है, और जब मैं उन सिद्धान्तो पर विचार करता हूँ, जिनकी उन्हे सदा चिन्ता थी और जिनके लिए उनका सपूर्ण जीवन ही एक नमूना बन गया था, तो स्वय मेरा विश्वास एक नया रूप ले लेता है और इस व्यक्ति की उस नई चुनौती को अगीकार कर लेता है, जिसने स्वय अपने को कभी ईसाई कहने का दावा न करते हुए भी जीवन में ईसा का अनुसरण और सम्मान किया। मैं उस सध्या को, विभिन्न राष्ट्रो के विद्यार्थियो की मूक सच्चाई को, चन्दन की लकडी की सुगन्ध को, अल्प-आलोकित आल-सोल्स कालेज के विशाल कानूनी पुस्तकालय को और समस्त ससार में व्याप्त शक्तिपूर्ण जीवन और मृत्यु की तीव्र अनुभूति को आसानी से नही भूल सकता हूँ।

अब कुछ समय बीत जाने के बाद, मैं उस विषय पर अधिक तटस्थ भाव से लिखने की कोशिश कर सकता हूँ कि आखिर गाधीजी मे ऐसी कौन-सी बात थी, जिसने उन्हें मेरे लिए और मेरे समान अन्य लोगो के लिए, जो मेरी तरह ही, जिन लोगो के बीच वे काम करते थे, उनकी राजनैतिक और सामाजिक समस्याओ से बिल्कुल अवगत न होते हुए भी ऐसी प्रभावशाली और चुनौती देने वाली हस्ती बना दिया था। शायद इस बात को सक्षेप में मैं इस तरह कह सकता हूँ कि उनकी महानता, क्योकि इतिहास उन्हे निश्चय ही महान् व्यक्तियो की श्रेणी मे ही रखेगा, उनके कामो में नही, उनके चरित्र में थी। नि सदेह उनके कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण थे, और थोडी देर के लिए यह विचारणीय बात है, क्योकि दुनिया में पवित्रता और प्रभावशीलता हमेशा साथ-साथ नही चलते, परन्तु गाधीजी के कार्यों या सफलताओ ने विश्व को इतना प्रभावित नही किया, जितना उनके भीतर की किसी चीज ने। उनके कार्य अभी इतिहास की आलोचना के विषय है, वे इतिहास के फैसले का इन्तज़ार कर रहे है, और गाधीजी सबसे पहले यह कहते थे कि उनकी अन्तर्दृष्टि के समान ही उनकी भूलो को भी उस निर्णय का सामना करना चाहिए। लेकिन उनकी

भावना आज भी जीवित है और वही भावना इतिहास को आज एक शक्ल दे रही है, उसे बना रही है और यही गाधीजी के महान् होने का सबसे प्रबल प्रमाण है।

अपनी तमाम प्रारम्भिक पश्चिमी सस्कृति और कानूनी शिक्षण की पृष्ठ-भूमि के बावजूद वे एक पक्के हिन्दुस्तानी थे। भारत की मूल आत्मा उनके भीतर मौजूद थी और वे सदा अपने स्वप्न के, अपनी कल्पना के, भारत के लिए जिये और मरे। भारत के लिए तैयार की गई उनकी योजना और आकाक्षाओ पर कोई फैसला देना मेरे जैसे एक पश्चिमी का कर्तव्य नही है। उनके जीवन मे सबसे अधिक प्रभावशाली बात अपनी कल्पनाओ को मूर्त्तरूप देने का ढग था। किसी राजनीतिज्ञ के विषय मे यह कहना सर्वथा असत्य होगा कि उसमे राजनैतिक कार्य और अतर धार्मिक प्रवृत्ति मिलकर एक हो गई थी और दो विभिन्न प्रवृत्तियो की इसी एकता को वाह्य तथ्य मे बदलने की आज भारत को सबसे अधिक जरूरत है और यदि इगलैण्ड में हममे से बहुत-से लोग इस महान् प्रयोग की ओर आशा और सद्भावना से देख रहे है तो निश्चय ही यह स्वीकार करना चाहिए कि हमारी आशा और सद्भावना केवल गाधीजी के कारण है।

उनके आचरण और उनके कार्यो मे जो बात मुझे सबसे महत्व की मालूम हुई, उसका मैं विश्लेषण करना चाहता हूँ।

पहली बात का उल्लेख मैं कर चुका हूँ। अपनी गलतियो को स्वीकार न करने वाली निजी-बचाव और मुह छिपाने की प्रवृत्ति से वे सदा दूर रहते थे। उनके निर्णय और नीति-सबधी गलतियो को प्राय उद्धृत किया जा चुका है। वे उन अहंकारी धार्मिक नेताओ से कोसो दूर थे जो केवल अपनी वात की सच्चाई का ही आग्रह रखते है। परिणामस्वरूप वे अपने अनुयायियो और राजनीतिज्ञो के लिए, जिन्हे सदा उनसे काम पडता था, एक परेशानी का कारण रहे है, परन्तु कभी कोई उनकी ईमानदारी के बारे में प्रश्न नही उठा सका। और हालाकि कभी-कभी किसी विशेष कार्य-पद्धति के औचित्य के वारे मे उनके दिमाग में कई विचार उठते थे, तथापि उसे व्यवहार में लाने में उनका कोई निजी स्वार्थ या तरीका नही रहता था। वे अपने मित्रो और अनुयायियो से कभी उस नियम का पालन करवाने का आग्रह नही करते थे, जिसे वे स्वय अधिक कठोरता के साथ न निभा सकें।

यही कारण था कि उन्होने अपने लिए एक सीधा-सादा सत का रास्ता चुना और इस मार्ग का अनुसरण उन्होने सदा मुक्त आजादी, आनद और निर्दोषपूर्ण विनोद के साथ किया। इस आदत के गवाह उनके सभी मित्र है। अपने इसी विनोदी

स्वभाव के कारण वे उन पूर्वी और पश्चिमी लोगो की महान् सगति से पृथक् नही मालूम पडते थे, जिन्होने गाधीजी के इस तौर-तरीके को अच्छा मानकर अपना लिया था।

सबसे विचित्र और एक पश्चिमी के लिए समझने मे सबसे कठिन बात थी, उनका उपवास का प्रयोग, जिसे वे प्राय घटनाओ की गति को प्रभावित करने और सकट-काल मे शीघ्र-निर्णय के लिए करते थे। पश्चिमी देशो मे भूख-हडताल का इतिहास न तो बहुत कल्याणकारी ही रहा है और न बहुत प्रशसनीय ही। जहाँतक मेरी जानकारी का सवाल है, पूर्व मे यह और भी खराब रहा है और इसका सबध भी ऐसी विश्वास और मान्यताओ से रहा है, जो गाधीजी के स्वभाव के बिल्कुल विपरीत थी। परन्तु उन्होने इसकी जो व्याख्या की है, और जिस तरह से इसे अमल मे लाये, उससे उपवास का स्तर नि सदेह बहुत ऊपर उठ गया है। दूसरो के कामो की जिम्मेदारी और परिणाम को अपने ऊपर ले लेना उनकी दिली इच्छा का प्रतीक बन गया था और हालाकि इस उपवास का इस्तेमाल दूसरो के समान वे उन लोगो पर असर डालने के लिए ही करते थे, जिनके कि कामो को वे प्रभावित करना चाहते थे, फिर भी बिना विशेष प्रयत्न के उन्होने अपने इस प्रयोग को कटुता और विद्वेष की शकामात्र से ही मुक्त रखा था और इसीलिए सचमुच जिन लोगो की नीति के खिलाफ उन्होने उपवास का प्रयोग भी किया, उनके साथ भी सदा मित्रतापूर्ण सबधो को कायम रखा। उनके उपवास मे अमगल की कामना नही थी, बल्कि स्वय अपने ऊपर अभिशाप को लेने की चाह रहती थी।

इससे उनके जीवन के वे पक्ष हमारे सामने आते है, जो सबसे महत्त्वपूर्ण थे। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति याद नही आता, जो दुनिया की राजनीति के क्षेत्र मे ईसा मसीह की जीवन-प्रणाली को मूर्त्तरूप देने और प्रभावपूर्ण बनाने में इतना आगे जा सका हो। मेरे समान एक ईसाई की दृष्टि मे उन्होने केवल अपनी शिक्षा की आत्मा को ही बाइबिल से नही लिया, वरन् अपने हिन्दू धार्मिक ग्रथो तक को उन्होने ईसा मसीह के सिद्धान्त के प्रकाश मे पढा। हिन्दू धर्म उन्हे अपना मानने का दावा कर सकता है, परन्तु उनकी आत्मा सभी धर्मो की उस गहरी-से-गहरी भूमि से अवतरित हुई थी, जहापर सब धर्मो का मेल होता है। अछूतो के हको के हिमायती होने के कारण वे जिस आग्रह और तीव्रता से हिन्दू धर्म की कट्टरता के कुछ पहलुओ को चुनौती दे सकते थे, उसी तरह ईसाईयत के उन दावो का भी वे खडन कर सकते थे, जोकि वास्तविक जीवन मे अमल मे नही लाये जा सकते। अपने-अपने युगो

के धार्मिक विश्वासो के अनुसार ईसा और गौतम दोनो विद्रोही थे। गाधीजी न तो बौद्ध थे और न ईसाई, पर उन दोनो के अति निकट थे। उनका राजनैतिक जीवन इसीलिए इतना प्रभावपूर्ण था, क्योकि उन्होने राजनीति की आत्मा के भीतर धर्म की प्रतिष्ठा की थी। अन्य लोगो की तरह अपनी आत्म-मुक्ति के लिए दूर जगल में जाने के वे समर्थक नही थे, परन्तु विश्व-कार्यक्षेत्र के बीच जिस विश्वास या धर्म को उन्होने पाया, दूसरो को मुक्ति दिलाने की उस धर्म की क्षमता को वे प्रमाणित करना चाहते थे।

भारत के प्रति उनकी भक्ति और उसकी आजादी की तीव्र भावना अधी और सकीर्ण देश-भक्ति के अभिशाप से बिल्कुल मुक्त थी और नि सदेह यह बात उनके विचारो के बिल्कुल अनुकूल थी। दुनिया मे जो कुछ अच्छे-से-अच्छा मिला, उसकी उन्होने अपने देश मे प्रतिष्ठा करनी चाही, परन्तु उससे भी अधिक स्वय भारत की विशेषताओ को सामने लाने की उन्होने कोशिश की। अपने ही देशवासियो से अधिक-से-अधिक आत्म-त्याग की माग करके उन्होने उनके ऊपर असीम अधिकार प्राप्त कर लिया था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आजतक दुनिया मे आजादी बिना रक्तपात के प्राप्त नही हुई है। "परन्तु याद रखिये, यह रक्त आपका हो। किसी दूसरे के खून की एक बूद भी नही गिरना चाहिए।" स्वागत की आवाज बुलन्द करते हुए विद्यार्थियो से वे एक वाक्य मे हमेशा ईश्वर से यह प्रार्थना करने को कहते थे कि हिन्दुस्तान वह न रहे जो आज है, वरन् वह बने जो ईश्वर उसे बनाना चाहता है। उनके अन्तिम उपवास के समय प्रायश्चित्त की सात शर्तें केवल हिन्दुस्तान के लिए थी, पाकिस्तान के लिए नही।

प्राय अपने देश मे और इगलैण्ड मे इस बात के लिए उनकी आलोचना होती थी कि वे जो कुछ भी कहे, उनकी नीति से वास्तव में हिंसा के कार्य शुरू हो जाते थे। इस सबध मे उनका उत्तर बडा विचित्र था। उन्होने बन्दी-जीवन का खुशी के साथ स्वागत किया और लेशमात्र भी इस भावना के बिना कि उनके प्रति कोई अन्याय किया जा रहा है, या उन्हे शहीद बनाया जा रहा है। जब उत्तेजना फैलाने के अपराध मे उन्हे दड दिया गया तो उन्होने तत्काल अपने अनुयायियो के उन सारे कार्यो की जिम्मेदारी अपने कधो पर ले ली, जो उन लोगो ने उनकी सख्त हिदायतो के बावजूद किये थे और अदालत से प्रार्थना की कि दड-विधान के अनुसार उन्हे ज्यादा-से-ज्यादा सजा दी जाय। वे गवर्नरो और शासको के लिए एक समस्या थे, क्योकि कोई प्रशासकीय कार्य उनके आचरण के गहरे सिद्धात को छू तक न पाता था और न उनके मैत्री-

पूर्ण व्यवहार या मेलजोल को सरकारी अनुशासन की कोई ऐसी कार्यवाही तोड ही सकती थी, जिसे करने के लिए वह विवश थे। जहातक असर की ताकत का सवाल था, आजाद गाधी और वन्दी गाधी मे कोई अन्तर नही था। आत्म-शक्ति के अलावा वे किसी दूसरी शक्ति को जानते नही थे और आत्म-शक्ति के लिए जेल के सीखचो का कोई अर्थ नही, सिवाय इसके कि वस्तुत बलिदान की रचनात्मक शक्ति की अंत में जीत होती है। उनकी पूर्ण निर्भीकता और व्यक्तिगत खतरे के प्रति उनकी उदासीनता से वढकर असर करने वाली वात उनकी जिन्दगी मे और कोई नही थी।

इसके पीछे उनकी अहिंसा की सारगर्भित और अर्थपूर्ण व्याख्या थी और इसीने उन्हे पूर्ण अहिंसा की शिक्षा और मानवमात्र के लिए आदर-भाव का मार्ग दिखाया। लदन के पूर्वी छोर पर वसने वाले गरीबो के साथ वे उतने ही घुले-मिले थे, जितने कि हिन्दुस्तान मे। दलितो के प्रति उनकी चिन्ता केवल भावुकता नही थी, वरन् जीवन के प्रति पवित्रता के व्यापक अर्थ की अभिव्यक्ति थी। उनके एक मित्र ने एक वार मुझसे कहा था कि गाधीजी के दो तीव्र भाव थे—शाति और गरीवी, परन्तु असल में ये दोनो एक ही चीज थे। वे मानव-प्रेमी थे और इस नाते मानव-मात्र के लिए सघर्ष करना भी उनके लिए आवश्यक था। परन्तु अपने इस सघर्ष में आत्म-शक्ति के सिवा किसी दूसरे हथियार का प्रयोग वे नही करते थे, क्योकि बल प्रेम को नष्ट कर देता है।

आज वे हमारे वीच नही है, और जैसा कि उनकी मृत्यु के वाद मैंने कहा था, "यह अच्छा ही हुआ कि उनका देहावसान किसी पूर्व निश्चित उपवास के कारण नही हुआ, वल्कि ससार के कुतर्क का सामना करते हुए, उसका स्वागत करते हुए हुआ, और वह भी इस महत्ता के साथ कि अन्त मे कुतर्क और दु ख स्वय अजेय प्रेम की विजय द्वारा रूपान्तरित हो जायगे। वे मरे नही है। जिस मृत्यु से वे मरे है, उसने उन्हे मुक्त कर दिया है और आज हम पश्चिम-निवासी फिर से नया जन्म लेने वाले उस भारत का अभिवादन करते है, जहा कि उनकी आत्मा आज भी जीवित है और जिसका पूर्ण परिणाम देखने तक शायद हम लोग जीवित भी न रहें।

: ८ :

उनका महान् गुण

हैलीफैक्स

गाधीजी का मित्र होने और उन्हे जानने के सुअवसर के प्रति मै हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। उनकी दु खदाई मृत्यु के बाद आजतक उनके गुणो के विषय में इतना लिखा और कहा गया है कि ससार का प्रत्येक देश आज उस महान् विभूति से बहुत अश तक परिचित हो गया है। प्रत्येक महापुरुष के बारे मे कहा जा सकता है कि उसके जीवन के भिन्न-भिन्न पक्ष अलग-अलग लोगो के लिए अपना अलग-अलग महत्व रखते है। हिन्दुस्तान मे जिस गुण के कारण उन्हे ऐसा अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ, वह उस गुण से सर्वथा भिन्न था जिसके कारण पश्चिम मे उनके मित्रो से उन्हे प्रशसा मिली। इसी बात को दूसरे शब्दो मे इस तरह कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व असल मे उनका चित्र खीचने के किसी भी प्रयत्न से कही अधिक वडा था।

उनमे एक ऐसी स्पष्टता थी जो लोगो को पूरी तरह अपनी ओर खीच लेती थी। परन्तु इसके साथ ही उनके व्यवहार मे एक ऐसी बौद्धिक बारीकी थी, जो कभी-कभी वडी उलझानेवाली मालूम होती थी। उनके दिमाग मे क्या चल रहा है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए यह आवश्यक था कि यदि हम स्वय उसी बिंदु से शुरू न कर सकें तो कम-से-कम उस बिंदु को भली प्रकार समझ लें कि उन्होने अपना सोचना कहाँ से शुरू किया था, और यह बात हमेशा बडी मानवीय और सीधी होती थी।

मुझे अच्छी तरह याद है जब पहली बार हिन्दुस्तान जाकर मैंने सी एफ एन्ड्रूज से उनके विषय मे बातचीत की थी, जोकि मेरे खयाल से किसी अग्रेज की अपेक्षा गाधीजी के अधिक निकट थे। उस समय मुझसे उन्होने कहा था कि मि गाधी विधान और वैधानिक रूप की कम परवाह करते है और वह गोलमेज कान्फ्रेंस के समय और भी स्पष्ट हो गया। हिन्दुस्तान का गरीब किस तरह रहता है, इस मानवीय समस्या की उन्हे सबसे अधिक चिन्ता थी। वैधानिक सुधार हिन्दुस्तान के व्यक्तित्त्व और आत्म-सम्मान के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण था, परन्तु सबसे अहम सवाल लाखो लोगो की रोजाना की जिन्दगी पर असर डालने वाला—नमक, अफीम, घरेलू धधे और दूसरी ऐसी ही चीजो का था।

हालाकि चर्खे के प्रति गाधीजी की आस्था पर हँसना बहुत आसान है, विशेष-

कर ऐसी अवस्था मे जबकि एक ओर काग्रेस अपने चन्दे के लिए ज्यादातर धनी हिन्दुस्तानी मिल-मालिको की उदारता पर निर्भर थी, तो भी चर्खे का उनके जीवन-दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो मे एक विशेष स्थान था, यह बात बिल्कुल सत्य थी और मुझे इसमे कोई सदेह नही है।

वे स्वाभाविक योद्धा थे। गरीबो के साथ किये गए अन्याय और दिये गए कष्टो के खिलाफ वे हमेशा लडते रहे। दक्षिण-अफ्रीका मे भारतीयो के अधिकार, नील के खेतो मे हिन्दुस्तानी मजदूरो के साथ होने वाला व्यवहार, उडीसा की बाढ से बेघरबार होने वाले हजारो लोग और सबसे ज्यादा साप्रदायिक घृणा से उत्पन्न कष्ट और पीडा—ये सब बारी-बारी से उनकी लडाई के मैदान थे, जहा वे अपनी सारी ताकत के साथ मानवता और अधिकारो के लिए लडे थे।

उनके साथ सन् १९३१ के वसन्त के दिनो मे दिल्ली मे होने वाली वातचीत को जब याद करता हूँ तो उस समय की दो बाते आज भी मेरे दिमाग मे साफ झलक आती है। अन्य बातो की अपेक्षा उनके मस्तिष्क और पद्धति की ये दोनो बाते अधिक अच्छी व्याख्या करती है—और ये दोनो बाते हमे ऐसा रास्ता दिखाती है, जहा आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनो मिल सके।

पहली बात असहयोग आन्दोलन बन्द करने के बाद उस बीच मे पुलिस ारा किये गए जुल्मो की जाच करवाने की उनकी माग से सबधित है। कई एक कारणो से मैंने इस माग का विरोध किया। अन्य दलीलो के साथ इस तर्क को भी मैंने उनके सामने रख की कोशिश की कि हो सकता है कि दूसरे लोगो के समान पुलिस ने भी कुछ गलतिया की हो, परन्तु अब बारह महीने के बाद उन स्थानीय झझटो या उपद्रवो के विषय मे ठीक-ठीक बातो का पता लगाने का प्रयत्न बेकार साबित होगा और इसका नतीजा यह होगा कि दोनो ओर अधिक उत्तेजना बढेगी। इससे उन्हे सन्तोष नही हुआ और इस मुद्दे पर तीन दिन तक हमारी बहस चलती रही। अत मे मैंने उनसे कहा कि मै उन्हें वह असली कारण बताऊँगा जिसकी वजह से मै उनकी उस माग को स्वीकार नही कर सका। मुझे इस बात का भरोसा नही है कि अगले चन्द दिनो मे वह फिर कही आन्दोलन न छेड दे और जब कभी वे ऐसा करे तो मै चाहता हूँ कि पुलिस का जोश ठढा न पडे बल्कि और बढे। इसपर उनका चेहरा चमक उठा और वे बोले—"ओह, आप श्रीमान मेरे साथ वैसी ही बात कर रहे है, जैसीकि जनरल स्मट्स ने दक्षिण-अफ्रीका सत्याग्रह के समय की थी। आप इस बात से इन्कार नही करते कि मेरा दावा उचित नही है, परन्तु सरकारी दृष्टिकोण से आप अपनी

असमर्थता की ऐसी दलील पेश कर रहे है, जिनका जवाब नही दिया जा सकता। मै अपनी माग वापस लेता हूँ।"

दूसरी घटना भी उसी दिन की है और अगर मेरी सूचना गलत नही है तो इससे गाधीजी के साहस और वचन पालन करने के गुणो का सबूत मिलता है। गाधी-अर्विन समझौता पूर्ण होने के वाद दूसरे दिन सुवह वे मेरे पास आए और मुझसे एक दूसरे विषय पर वात करने की इच्छा प्रगट की। वे उस समय कराची-काग्रेस मे भाग लेने जा रहे थे, जोकि उनके विचार से इस समझौते का अतिम निर्णय करने वाली थी। उन्होने इसी सिलसिले मे मुझसे भगतसिह नाम के एक नौजवान की जिन्दगी की अपील करनी चाही, जिन्हे कि विभिन्न आतकपूर्ण अपराधो के लिए मृत्यु-दड दिया जा चुका था। वे स्वय प्राण-दड के विरोधी थे, पर इस समय हमारे तर्क का यह विषय नही था। उन्होने कहा कि यदि इस समय भगतसिह को फासी दी गई तो वे राष्ट्रीय शहीद का गौरव प्राप्त कर लेगे और इससे समझौते के आम वातावरण को वडा धक्का पहुँचेगा। मैने कहा कि उनके उस विचार की मै क़द्र करता हूँ, इस समय प्राण-दड की अच्छाई-बुराई का खयाल भी मेरे सामने नही है, क्योकि न्याय का आज जो रूप है, उसीके अनुसार मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना है। इस आधार पर मै किसी दूसरे व्यक्ति की कल्पना भी नही कर सकता कि जो भगतसिह से अधिक प्राण-दड का अधिकारी हो। इसके अलावा गाधीजी ने यह अपील वडे वेमौके की थी, क्योकि पिछली शाम को ही मेरे पास प्राण-दड को कुछ समय तक रोकने के विषय मे स्वय भगतसिह की अपील आ चुकी थी जिसे अस्वीकृत करना ही मैने ठीक समझा था, और इसलिए शनिवार को प्रात काल उन्हे फासी दी जाने वाली थी (हमारी वातचीत का दिन, जहातक मुझे याद है, गुरु-वार था)। गाधीजी काग्रेस-अधिवेशन के लिए शनिवार की शाम को कराची पहुँ-चने वाले थे। तवतक भगतसिह की फासी के समाचार फैल चुके होगे। अत उनके विचार से दोनो बातो की तारीख के एक ही दिन पडने से अधिक उलझाने वाली वात और कोई नही हो सकती थी।

गाधीजी ने चलते समय मुझसे अपने भय का सकेत किया था कि यदि मै उस दिशा मे कुछ नही कर सका तो इसका प्रभाव हमारे समझौते पर वहुत वुरा पडेगा।

मैने उनसे कहा कि यह तो स्पष्ट ही है कि इसके अव तीन ही सभव रास्ते है। पहला रास्ता यह है कि कुछ न करना और फासी लगने देना, दूसरा यह कि आदेश

देकर दड को कुछ समय के लिए स्थगित करना और तीसरा रास्ता यह था कि काग्रेस-अधिवेशन के खत्म होने तक इस निर्णय को रोक रखना। मैंने उनसे कहा कि मेरे विचार से वे इस वात से सहमत होगे कि मेरे लिए प्राण-दड को स्थगित रखना असभव है, और निर्णय को कुछ समय के लिए रोक कर किसी प्रकार की रियायत मिलने की सभावना है, लोगो को ऐसा सोचने का मौका देना न तो ईमानदारी ही है, और न खरापन ही। इसलिए तमाम मुसीबतो के वावजूद पहला रास्ता ही ठीक है। गाधीजी ने थोडी देर तक सोचा और कहा—"क्या आपको एक नौजवान की जिन्दगी के लिए की जाने वाली मेरी प्रार्थना मे आपत्ति है ?" मैंने कहा, "मुझे कोई आपत्ति नही है यदि वे इसमे इतना और जोड दे कि मेरे दृष्टिकोण से मेरे लिए इसके सिवा और कोई रास्ता दिखलाई नही पडता।" उन्होंने एक क्षण के लिए सोचा और अत में मेरे विचार से सहमत हो गए, और वात को स्वीकार कर वे कराची गए। वहा जिस वात का डर था, वही हुआ, उनके पहुँचने से पूर्व फासी का समाचार प्रकाशित हो चुका था, लोगो की भीड में भयकर उत्तेजना फैल चुकी थी और वाद में मुझे पता चला कि उनके साथ भी वडा भद्दा सलूक, किया गया। परतु जव उन्हे अधिवेशन मे वोलने का अवसर मिला तो वे उसी समझ से वोले, जैसाकि हमारे वीच समझौता हुआ था।

जिन दो घटनाओ का उल्लेख मैंने किया है, वे उनके व्यक्तिगत पक्ष पर प्रकाश डालने के लिए काफी है और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनकी मित्रता को इतना कीमती मैं क्यो समझता था। किसीके विश्वास की रक्षा करने के विचार से मुझे ऐसा कोई व्यक्ति याद नही आता, जिसे अपने विश्वास मे लेने के लिए मैं इतना तैयार रहूँ, जितना गाधीजी को।

अपने स्तर से नापने पर एक ऐसी जिन्दगी का एकाएक खत्म हो जाना नि सदेह उस देश के लिए असीम सकट का कारण हो सकता है, जिसे उन्होंने इतना प्यार किया था। परतु जो उनके कार्यो को अच्छी तरह जानते है, और जो यह भी जानते है कि वे जिन्दगी में और क्या करते, वे ईश्वर से प्रार्थना करेगे कि उनकी मृत्यु से एक-दूसरे को और अधिक अच्छी तरह समझने का मौका मिले—मृत्यु, जिसने एक ऐसी जिन्दगी को समेट लिया, जो सदा सेवा के लिए समर्पित थी और जो खुशी-खुशी उसी रास्ते पर कुर्वान हो गई।

: ६ :

श्रेष्ठतम अमर पुरुष

एस० आई० हसिंग

युद्धोत्तरकालीन इगलैण्ड मे कुछ कमिया यदि युद्ध-काल से ज्यादा नहीं तो कम तो किसी भी हालत मे नही है। अन्न में चावल एक ऐसा धान्य था, जिसके बिना भी यूरोप में लोग रहना सीख गये थे, इसलिए बहुत वर्षो से चावल बाजार से ओझल ही हो गया था। मै और मेरा परिवार भी इसपर रहने का आदी था, इसलिए हम लोग इस अभाव को बहुत महसूस करते थे, परन्तु कुछ सुविधाप्राप्त देशवासियो की कृपा से ३० जनवरी, १९४८ के दिन हम एक असली चीनी भोजन पाने वाले थे। आक्सफोर्ड के शात घर में मेरे मित्र और मेरा परिवार मेज के चारों ओर बैठे थे। लेकिन उस दिन का भोजन हमें बेस्वाद लग रहा था। भोजन शुरू करने से कुछ ही मिनट पहले हमने बिना बे-तार के तार से गाधीजी की हत्या की बात सुनी।

व्यक्तिगत रूप से हममें से किसीको भी महात्मा गांधी को जानने का गौरव प्राप्त नही हुआ था और न हम विश्व-राजनीति में कोई रुचि रखते थे। न केवल मै बल्कि मेरे सभी बच्चे आक्सफोर्ड मे केवल साहित्य-अध्ययन तक ही अपने को सीमित रखते थे। "इस खबर के बारे में आपकी क्या राय है कि हिटलर अभी-अभी मर गया है ?" मेरे एक मित्र ने मेरे एक बच्चे से, जो अग्रेजी साहित्य पर भाषण दे रहा था, पूछा। उत्तर बडा नम्र परन्तु दृढ था—"ऐसे विषयो में मेरी अज्ञानता के लिए क्षमा करे। शायद हमारा एक भाई आपसे इस विषय मे अधिक दिलचस्पी के साथ बात करने की रुचि रखता हो।" हमें बातचीत का विषय बदल देना पडा।

परतु महात्मा गाधी की मृत्यु से हमें बडा धक्का लगा। ऐसा जान पडा, मानो हमारे निकट का, कोई बडा प्रिय व्यक्ति कत्ल कर दिया गया हो। बहुत दिनो तक उदासीनता की वह भावना दिमाग में बनी रही। उनकी हत्या के बाद दुनिया हमें बहुत गरीब-सी मालूम होने लगी। केवल हिन्दुस्तान के लिए नही, वरन् समस्त मानव-जाति के लिए यह एक ऐसी क्षति थी, जिसे कभी पूरा नही किया जा सकता था।

चीन के लिए भारतीयो के दो नाम ऐसे है, जो प्रत्येक की जवान पर हमेशा रहते है—वुद्ध और गाधी। वे एक दूसरे से हजारो वर्ष के अतर से पैदा हुए है। परन्तु उनकी महानता हमेशा जीवित रही है और समय के व्यवधान की परवाह किये विना यह महानता सदा अमर रहेगी। हम लोगो ने पिछले सौ वर्षो मे वेशुमार मुसीवते झेलो है, इसलिए हम यह अच्छी तरह जानते है कि भारतवर्ष, उसकी जनता और उसके नेताओ के लिए गाधीजी की मृत्यु के क्या माने है। एक राष्ट्रीय वीर, एक राजनैतिक पडित अथवा एक विद्वान के लिए जो आदर हमारे मन मे होता है, वह वहुत सीमित होता है, परन्तु महात्मा गाधी की आध्यात्मिक महानता के प्रति हमारे मन मे जो श्रद्धा है वह असीम है, अमर है। हमारे लिए उनका स्थान उन सत और महात्माओ के वीच है, जिनकी स्मृति हमारे मानस मे सदा अमर है।

क्या कनफ्यूशस ने यह नही कहा था, "यदि एक वार कोई व्यक्ति अपनेको ठीक रास्ते पर लाने की व्यवस्था कर ले, तो फिर एक राजनीतिज्ञ होने में उसे कोई कठिनाई नही होती, परतु यदि वह अपनेको ठीक नही कर सकता तो फिर वह दूसरो को ठीक करने की वात कैसे सोच सकता है?" इसी तरह महात्मा गाधी ने अपने से कहा था, "सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने मुझे राजनीति के मैदान में खीचा है।" और, "धर्म से शून्य राजनीति एक मृत्यु-जाल है, क्योकि उससे आत्मा का नाश होता है।"

मानवता की उस आत्मा की तुलना मेनशियस की शिक्षाओ से की जा सकती है, जिसने गाधीजी को ग्राम-उद्योगो के पुनरुद्धार के लिए उत्साहित किया, विशेषकर ऐसे समय मे जव सैनिक विजय ही राष्ट्रीय नेताओ का एकमात्र उद्देश्य था। आज से दो हजार वर्ष पहले चीन के एक राजा ने अपने राज्य को विशाल साम्राज्य का रूप देने के लिए युद्ध करना चाहा था। इसपर मेनशियस ने उससे कहा था कि वह एक ऐसे व्यक्ति के समान है जो मछलिया पकडने के लिए पेड पर चढना चाहता है। मेनशियस के अनुसार एक राजा दुनिया को एक ही तरह से समृद्ध कर सकता है— घर के पास की ५ एकड भूमि मे वह शहतूत के पेड लगाये, जिससे कि ५० वर्ष की उम्र के लोग रेशम पहन सके।" और, "मुर्गी-पालन, वतख-पालन के काम शुरू करें, ताकि ७० वर्ष की उम्र के लोगो को खाने के लिए गोश्त मिल सके।"

हमारे ताओवादी पंथ के सस्थापक लाओ-जे ने जोकि कनफ्यूशस के अग्र-समकालीन थे, हमे यह सिखाया था, "दुनिया की सव चीजो में सिपाही वुराई

के सबसे बडे हथियार है, जिन्हे सब घृणा करते है।" और यह भी कहा था, "एक जीत का उत्सव मृत्यु-सस्कार के समान मनाया जाना चाहिए।" उनका यह उपदेश भी था, "कुछ न करने से सब कुछ हो जाता है। जो विश्व-विजय करता है वह भी कुछ न करके ही ऐसा करता है।" आज की दुनिया मे राष्ट्रो के प्रधान यह सुनना पसन्द नही करेगे, क्योकि वे सदा ऐसे सिद्धान्तो के विपरीत कार्य करते है। लेकिन महात्मा गाधी एक ऐसी हस्ती थे जिन्होने अहिंसा और असहयोग का उपदेश दिया और उसके अनुसार आचरण किया।

यही कारण है कि हम चीनी लोग उन्हे सदा मानव-इतिहास के श्रेष्ठतम अमर पुरुषो की श्रेणी मे रखेगे।

: १० :

उनके बुनियादी सिद्धान्त

आल्डस हक्सले

गाधीजी की अर्थी एक सैनिक गाडी द्वारा चिता-स्थल तक ले जाई गई। उनकी शव-यात्रा के साथ टैक और हथियारो से सज्जित सैनिक मोटरे थी, सैनिक और सिपाही जत्थे थे। उनकी अर्थी के ऊपर भारतीय वायु सेना के लडाकू जहाज चक्कर काट रहे थे। आत्मशक्ति और अहिंसा के इस देवदूत के सम्मान में हिंसा और बल के समस्त साधनो का प्रदर्शन किया गया था। भाग्य का यह एक अटल विद्रूप था, क्योकि राष्ट्र की व्याख्या के आधार पर वह प्रभुत्वसपन्न एक ऐसा सघ है, जिसे दूसरे प्रभुत्वसपन्न सघो के विरुद्ध युद्ध करने का अधिकार है। ऐसी दशा मे किसी व्यक्ति के प्रति राष्ट्रीय सम्मान के अर्थ, चाहे वह व्यक्ति स्वय गाधी ही क्यो न हो, निश्चय रूप से सैनिक और प्रतिरोधी शक्तियो का प्रदर्शन ही होगा।

आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व उन्होने 'हिन्द स्वराज्य' में अपने देशवासियो से एक प्रश्न किया था कि आखिर "स्वराज्य और गृह-शासन" से क्या मतलब है? क्या वे उसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चाहते है जो उस समय प्रचलित थी? यानी सत्ता का अग्रेजो के स्थान पर हिन्दुस्तानी शासको और राजनीतिज्ञो के हाथ मे चला जाना? अगर ऐसा है तो उनकी इच्छा शेर से मुक्ति पाकर, अपने स्वभाव मे शेर की तमाम खूख्वार प्रवृत्तियो को सुरक्षित रख लेने की है। अथवा

वे 'स्वराज्य' के वही अर्थ करने को तैयार हैं, जो स्वयं गांधीजी के थे, अर्थात्—भारतीय सभ्यता की उन समस्त शक्तियों का प्राप्त करना, जिन्होंने उन्हें अपने पर शासन करना सिखाया था और सत्याग्रह के जरिये जिन्होंने भावना द्वारा मानुषिक मार्गों को स्वीकार किया था ?

एक ऐसे विश्व में जिसका संगठन ही युद्ध के लिए किया गया हो, हिन्दुस्तान के लिए दूसरा रास्ता चुन सकना बड़ा कठिन था, बिल्कुल असम्भव था। उसके लिए भी एक ही रास्ता था कि दूसरे राष्ट्रों के समान वह भी एक राष्ट्र बन जाय। स्वराज्य के पहले एक विदेशी अत्याचार के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष को चलाने वाले स्त्री-पुरुषों ने एकाएक अपनेको एक सर्वप्रभुत्वसंपन्न सत्ता के नियन्त्रण में पाया, जोकि अब युद्ध और प्रतिरोध के तमाम साधनों से पूर्ण थी। भूतपूर्व उग्री और भूतपूर्व शांतिवादी एक रात में जेलरों और सेनापतियों में बदल गए। उन्हें यह परिवर्तन चाहे अच्छा लगा हो या नहीं।

ऐतिहासिक पूर्व-दृष्टान्तों से इस आशावाद की पुष्टि नहीं होती। स्पेन के उपनिवेशों ने जब एक आजाद राष्ट्र की तरह अपनी स्वाधीनता प्राप्त की, तो क्या हुआ ? उनके नये शासकों ने सेनाएं इकट्ठी कीं और एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ाई के मोर्चे पर डट गये। यूरोप में मेजिनी की राष्ट्रीयता का सूत्र आदर्शवादी और मानवीय था। परन्तु अत्याचार से पीड़ित लोगों ने जब अपनी आजादी हासिल की तो वे अपने तरीके से बड़ी जल्दी आक्रमणकारी और साम्राज्यवादी बन गये। इससे भिन्न और कुछ नहीं हो सकता था। क्योंकि जिस प्रसंग के ढांचे में एक व्यक्ति विचार करता है, वही ढांचा उसके निर्णयों की प्रकृति का द्योतक होता है। वे निर्णय सैद्धान्तिक भी हो सकते हैं और व्यावहारिक भी। भूमिति-शास्त्र के स्वयंसिद्ध प्रमाणों से आरंभ करने पर कोई भी व्यक्ति इस नतीजे पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि एक त्रिभुज के तीनों कोणों का जोड़ हमेशा दो समकोण (१८०°) होता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय मान्यताओं से आरंभ करने पर कोई व्यक्ति शस्त्रीकरण, युद्ध और राजनैतिक एवं आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण के निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता।

भावना और विचार के बुनियादी रूपों को जल्दी बदला नहीं जा सकता। राष्ट्रीय प्रसंग के ढांचे के स्थान पर एक ऐसी शब्दावली तैयार करने के काम को पूरा करने में अभी बहुत वर्ष लगेंगे, जिसमें लोग राष्ट्र-निरपेक्ष ढंग से राजनैतिक चिंतन कर सकें, लेकिन इसी बीच में शिल्प-शास्त्र का बड़ी तेजी से विकास हो

रहा है। ऐसी व्यवस्था में राष्ट्रीय तौर पर सोचने के जडीभूत स्वभाव से उत्पन्न हुए मानसिक शैथिल्य पर विजय पाने मे दो पीढिया, शायद दो शताब्दियां, लगेंगी। युद्ध-कौशल के क्षेत्र मे उन वैज्ञानिक खोजो के प्रयोग अभिनदनीय हैं। केवल दो वर्ष के समय में हम इतना वडा काम कर सके है। यह काम इतने कम समय में पूरा हो सकेगा, यह कह सकना विल्कुल असगत-सा प्रतीत होता है।

गाधीजी ने अपनेको राष्ट्रीय आजादी के युद्ध मे व्यस्त पाया, परन्तु उन्हें इस काबिल होने की बराबर उम्मीद थी कि वे जिस राष्ट्रीयता के नाम पर लड रहे है उसे वे रूपान्तरित कर सकेंगे—सवसे पहले हिंसा के स्थान पर सत्याग्रह को स्थान देकर, और दूसरे सामाजिक और आर्थिक जीवन मे विकेन्द्रीकरण को स्थान देकर। परन्तु आजतक उनकी आशा को मूर्तरूप नही दिया जा सका। यह नया राष्ट्र जहातक हिंसक साधन और प्रतिरोधी साधनो का सवध है, दूसरे राष्ट्रो के समान ही है, और साथ-ही-साथ इसके आर्थिक विकास की योजनाओ का उद्देश्य भी एक ऐसा औद्योगिक राज्य वनाना है, जो सरकारी या पूजीवादी नियत्रण द्वारा सचालित वडे-वडे कल-कारखानो से परिपूर्ण हो, जहा दिनोदिन सत्ता का केन्द्रीयकरण बढता जाय, जीवन का स्तर ऊचा होता चले, और इसके साथ ही उन्माद की घटनाओ और मानसिक एव उदर-सवधी रोगो की वृद्धि होती चले। गाधीजी विदेशी शेर के पजे से अपने देश को मुक्त करने मे सफल हुए, परन्तु राष्ट्रीयता के रूप में वे उस खूंख्वार प्रकृति को सुधारने के प्रयत्न मे असफल रहे।

क्या इसलिए हमें निराश होना चाहिए? मैं ऐसा नही सोचता। असलियत बडी कष्टदायक होती है और आखिर मे इसको रोका भी नही जा सकता। देर या सबेर से लोग यह महसूस करेंगे कि इस स्वप्न-चेता के पैर जमीन मे वडी मजबूती से गडे थे, और यह आदर्शवादी सवसे अधिक व्यवहारवादी व्यक्ति था, क्योंकि गाधीजी के सामाजिक और आर्थिक विचार मानव स्वभाव की यथार्थवादी मान्यताओ एव विश्व मे उसकी स्थिति के स्वभाव पर निर्भर है। एक ओर, वे यह जानते थे कि वढते हुए सगठनो की सामूहिक विजय और विकासशील शिल्प-विज्ञान इस वुनियादी सच्चाई को नही वदल सकते कि मनुष्य एक छोटे कद का जानवर है, और बहुत-सी चीजो मे उसकी योग्यता भी वहुत सीमित है। दूसरी ओर वे यह भी जानते थे कि शारीरिक और मानसिक सीमाए, आध्यात्मिक प्रगति के लिए की गई असीम क्षमता के व्यावहारिक रूप के अनुरूप है। अर्थात् दोनो विकास या दोनो प्रकार की प्रगति साथ-साथ चल सकती है। गाधीजी के अधिकाश

समकालीन लोगों की भूल यह थी कि वे यह मानते थे कि शिल्प-विज्ञान और संगठन तुच्छ मानव प्राणी को एक श्रेष्ठ मानव बना सकते हैं, और इस प्रकार आत्मिक अनुभूति की अधीनताओं के स्थान पर एक दूसरी चीज दुनिया को दी जा सकती है, जिसके अस्तित्व से इन्कार करना शास्त्रानुकूल माना जाता था। इस जमीन और पानी पर चलने वाले प्राणी के लिए, जो देव और दानव की सीमा पर खड़ा है, किस प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएं सबसे अधिक उपयोगी होंगी? इस सवाल का गांधीजी ने बड़ा सीधा और समझदारी से भरा हुआ जवाब दिया था। मनुष्य को ऐसे संगठनों के बीच जीना और काम करना चाहिए, जो उसकी शारीरिक और मानसिक रचना के अनुरूप हों, ऐसे छोटे संघ, जहां वास्तविक स्व-शासन और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को निभाने का अवसर मिल सके। इन छोटी-छोटी स्वतंत्र इकाइयों को मिलाकर एक ऐसा संघ बनाया जा सकता है जिसमें बड़ी सत्ता के दुरुपयोग के लोभ का सवाल ही पैदा न हो। लोकतंत्री राज्य जितना बड़ा होता जायगा, जनता की वास्तविक हुकूमत उतनी ही अवास्तविक होती जायगी। और अपने भाग्य के निर्माण-संबंधी प्रश्नों पर लोगों और स्थानीय संगठनों की राय उतनी ही क्षीण होती जायगी। इसके सिवाय प्रेम और ममता प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संबंध से पैदा होते हैं, इसलिए पाल के अर्थ में केवल छोटे संगठनों में ही उदारता अपने को आसानी से जाहिर कर सकती है। यह कहना अनावश्यक है कि किसी संगठन के छोटे होने मात्र से ही सदस्यों में आपस में उदारता और करुणा का भाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु इससे उदारता के विकास की संभावना तो होती ही है। बड़े-बड़े संगठनों में जहां कोई किसीको जानता भी नहीं यह संभावना भी नहीं रहती और इसका यही कारण है कि इनके अधिकांश सदस्य एक दूसरे से व्यक्तिगत संबंध नहीं रख सकते। "जो प्यार नहीं करता, वह ईश्वर को नहीं जानता, क्योंकि ईश्वर ही प्रेम है।" करुणा एकदम आध्यात्मिकता का साध्य और साधन दोनों है। ऐसा सामाजिक संगठन जिसमें मानवीय कार्यों के अधिकांश क्षेत्र में करुणा की अभिव्यक्ति ही असंभव हो, स्पष्ट रूप से एक बुरा संगठन है।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ राजनैतिक विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। व्यक्ति, परिवार, और छोटे-छोटे सहयोगी संगठनों के पास अपनी जमीन और औजार अपने लिए और पास के बाजार की पूर्ति के लिए होने चाहिएं। उत्पादन के इन आवश्यक औजारों में गांधीजी केवल हाथ-औजारों को ही

शामिल करना चाहते थे। दूसरे विकेन्द्रीकरणवादी विद्युत-चालित यन्त्रो के प्रयोग का विरोध नही करते—मै स्वय इसी विचार का हूँ, बशर्ते कि इसका संचालन इस तरह से हो कि यह व्यक्ति और छोटे-छोटे सगठनो से मेल खाये। इन विद्युत-चालित मशीनो को बडे पैमाने पर बनाने के लिए वास्तव मे विशेष प्रकार के अच्छे कल-कारखानो की आवश्यकता होगी। प्रत्येक व्यक्ति और छोटे सगठनो को अधिक उत्पादक यंत्र मुहय्या हो सकें, इसके लिए शायद कुल उत्पादन का एक तिहाई इन कारखानो में पूरा करना पड़ेगा। विकेन्द्रीकरण से यात्रिक चातुर्य का सामजस्य हो, इस खयाल से यह कोई ज्यादा कीमत नही है। जरूरत से ज्यादा यात्रिक कुशलता स्वतत्रता का शत्रु है, क्योकि इससे अधीनता को प्रोत्साहन मिलता है और आन्तरिक स्फूर्ति की हानि होती है। साथ ही बहुत कम यात्रिक कुशलता भी स्वाधीनता की शत्रु है; क्योकि इसका नतीजा हमेशा स्थायी गरीबी और क्लान्ति होता है। इन दो छोरो के बीच मे एक सुखदाई मध्यम रास्ता है—यह एक ऐसा समझौता है जहा हम आधुनिकतम शैल्पिक सुविधाओ का आनन्द सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कीमत पर ही उठा सकते है और यह कीमत भी बहुत ज्यादा नही होगी।

यह बात स्मरण करते बडी खुशी होती है कि यदि पश्चिमी लोकतंत्र के देवदूत जेफरसन के मन की चलती तो अमरीका आज केवल ४८ राज्यो का नही, वरन् हजारो स्व-शासन सपन्न इकाइयो का एक सघ होता। अपनी लम्बी जिन्दगी के अन्तिम दिनो मे जेफरसन ने अपने देशवासियो को इस सीमा तक अपनी सरकारो के विकेन्द्रीकरण करने के लिए समझाया था। जैसाकि केटो अपने प्रत्येक भाषण के अन्त मे कहा करता था, "कारथागो डीलेन्डा ईस्ट (कारथेगो को पूरी तरह खत्म कर दो)," उसी प्रकार मै अपनी प्रत्येक राय को इस आदेश से खत्म करता हू, "जिलो को ताल्लुको मे बाट दीजिये।" प्रोफेसर जॉन ड्यूई के शब्दो में उनका उद्देश्य "ताल्लुको को छोटी-छोटी रिपब्लिक (गणतत्र) बनाने का था, जिनके ऊपर एक वार्डन रहे। अपनी निगाह के नीचे सारे विषयो को वे लोग बडे राज्यो के गण-राज्यो से अधिक अच्छी तरह चला सकते है। सक्षेप मे सिविल और सैनिक सभी सरकारी मामलो में वे सीधे तौर से अपनी राय और निर्णय का प्रयोग कर सकते है। इसके सिवाय जब कोई व्यापक और अहम मसला निर्णय के लिए आये तो सभी ताल्लुको या मुहल्लो को उसी दिन बैठक के लिए बुलाया जा सकता है, जिससे कि वहीपर लोगो की सामूहिक राय की अभिव्यक्ति हो सके।" इस योजना

को कार्यान्वित नही किया गया। लेकिन जेफरसन के राजनीति-दर्शन का यह तत्त्वपूर्ण अग था। उसके राजनैतिक दर्शन का यह इसलिए महत्त्वपूर्ण भाग था, कि महात्मा गाधी के समान उसका दर्शन भी नीतिशास्त्र-सबधी और धार्मिक था। उसकी राय से सभी मानव समान पैदा हुए है, क्योकि वे सभी ईश्वर के पुत्र है। ईश्वर के पुत्र होने के नाते उनके कुछ कर्त्तव्य और कुछ अधिकार है—और इन अधिकार और कर्त्तव्यो का व्यवहार प्रभावपूर्ण ढग से केवल स्वायत्त सत्ता-सपन्न जातत्री धर्म राज्यो मे ही हो सकता है, जो कि ताल्लुके से राज्य और राज्य से सघ मे बढते हुए चले जाय।

प्रो० ड्यूई ने लिखा है, "जो शब्द काम मे आ चुके है उनके पीछे अन्य दिवस दूसरे शब्द और दूसरी राये लाकर खडी करते है। सभी राजनैतिक व्यवस्थाओं के निर्णय की नैतिक कसौटी की जिन शर्तों में जेफरसन ने अपने विश्वास को प्रकट किया है और जिस शर्त के द्वारा गणतत्री सस्थाओ की न्याय-सगति में उन्होने विश्वास प्रकट किया है, वे शर्ते आज चलन मे नही है। फिर भी यह सदिग्ध है कि क्या होने वाले उन आक्रमणो के विरुद्ध लोकतत्र की सुरक्षा उस स्थिति पर निर्भर करती है जिसे जेफरसन ने अपने नैतिक आधार और उद्देश्य की दृष्टि से स्वीकार किया है, चाहे हमे लोकतत्र द्वारा व्यवहृत नैतिक आदर्श को सूत्ररूप देने के लिए दूसरे शब्द खोजने पडे।

"साधारण मानव-स्वभाव में, आम तौर से उसकी सभाव्यताओ मे और विशेष रूप से उसकी शक्ति मे फिर से भरोसा कायम करना, और तर्क एव सत्य का अनुकरण करना सर्वसत्तावाद के विरुद्ध भौतिक सफलता अथवा विशेष कानूनी और राजनैतिक स्वरूपो की गहरी पूजा के प्रदर्शन की अपेक्षा अधिक मजबूत घेरा-बन्दी है।"

गाधीजी ने जेफरसन के समान राजनीति को नैतिक एव धार्मिक रूप में ही सोचा था और इसीलिए उनके प्रस्तावित-हल उस महान् अमरीकी द्वारा प्रस्तावित-हलो से इतना मेल खाते है। किन्ही बातो मे वे जेफरसन से भी आगे बढ गये थे—उदाहरण के लिए, आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण और मुहल्लो मे "आरभिक सैनिक शिक्षण" के स्थान पर सत्याग्रह के प्रयोग के समर्थन में—परन्तु इसका कारण यह था कि जेफरसन की अपेक्षा गाधीजी का आचार-शास्त्र अधिक तर्कपूर्ण और धर्म पूरा यथार्थवादी था। जेफरसन की योजना अमल में

नहीं लाई गई, और न गाधीजी की। और यह हमारे एव हमारी संतानो के लिए बडे दुर्भाग्य की बात है।

: ११ :

गांधीजी की देन

किंग्स्ले मार्टिन

सन् १९३१ मे मैंने पहले-पहल महात्माजी को 'गोलमेज-कान्फ्रेंस' के समय देखा था। उसी समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा था कि वे कहातक संत हैं और कहातक एक कुशल राजनीतिज्ञ। बाद मे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रश्न का उत्तर दिया ही नही जा सकता है, क्योकि दोनो प्रश्न बडे पेचीदा ढग से मिल कर एक-रूप हो गये है। हिन्दुस्तान मे सत राजनीतिज्ञ हो सकते है, जिस तरह से कि वे मध्यकालीन यूरोप मे हो सकते थे। धर्म-ग्रन्थो का सत भाष्यकार व्यापक धर्म-प्रधान समाज मे अपने लिए एक स्थान बना सकता है, जिसकी कि यत्रवादी और नास्तिक यूरोप में कम सभावना है। गाधीजी हिन्दुस्तान के कोने-कोने में मिलने वाले दिगम्बर साधुओ से सर्वदा भिन्न है, क्योकि उनकी धार्मिक प्रेरणा, वकील की शिक्षा, पाश्चात्य पुस्तको के व्यापक अध्ययन, विश्व-ज्ञान एव उनकी कुशाग्र बुद्धि के कठोर परीक्षण के बाद भी जीवित रही है। अपनी तर्क-पद्धति के द्वारा धार्मिक सिद्धान्तो का अनवरत परीक्षण और व्यवहार ही गाधीजी की ऐसी विशेषता है, जिसने मुझे सबसे अधिक वशीभूत किया है।

महात्माजी ने अपनी विचार-पद्धति अथवा किसी निर्णय पर पहुचने के मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो को कभी गुप्त नही रखा। व्यक्तिगत बातचीत तक मे वे हमेशा दलील करने को तैयार रहते थे और हँसते-हँसते अपनी अनियमितताओ तक को स्वीकार कर लेते थे। दूसरे पत्रो से भिन्न 'हरिजन' में वे सदा सत्य को खोजने के प्रयत्न के साथ-साथ अपने आन्तरिक सघर्ष को भी प्रकाश मे लाते थे। मेरा खयाल है कि वे इस बात को अवश्य मान लेते कि उनका राजनैतिक स्थान हमेशा सन्तोषजनक नही होता था, विशेषकर १९४२ के कठिन समय में अपनी गिरफ्तारी से पूर्व, जबकि उन्हे अपने पुराने साथी श्री राजगोपालाचार्य से अलग होना पडा था, और जब उन्हे स्वय यह भरोसा नही था कि सभाव्य

जापानी आक्रमण के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध मे अपने अनुयायियो को वे कितनी दूर तक साथ ले जा सकते है। अपने ऐसे भोले-भाले अनुयायियो पर उनका क्रोधित होना भी ठीक था, जो यह समझते थे कि एक बार अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने मात्र से सब कुछ आसान हो जायगा। वे घुमा-फिरा कर हमेशा उनसे यह कहा करते थे कि उन्हे कोई समस्या आसान प्रतीत नही होती। सिद्धान्त बिल्कुल स्पष्ट था, परन्तु सामाजिक और राजनैतिक गुत्थियो के सुलझाने में इस सिद्धान्त का व्यवहार एक बडा दिमागी काम था।

आप यह भरोसा रखिये कि महात्माजी को धोखा नही दिया जा सकता था। आक्सफोर्ड के 'नैतिक शस्त्रीकरण' के प्रवर्तक दलो के भीतर की बात को, जब वे लोग महात्माजी से मिलने आये, समझते उन्हें देर नही लगी। अपने 'हरिजन' के अक मे उनकी बातो का उत्तर देते हुए गाधीजी ने लिखा था कि ईश्वरी सदेश को सुनने के लिए 'सुनने की योग्यता' भी चाहिए। यह कहना किसीके लिए कितना आसान है कि वह ईश्वर की बात सुन रहा है! अग्रेजी साम्राज्यवादियो का उनसे यह कहने का क्या मतलब था कि हिन्दुस्तान को पश्चात्ताप करना चाहिए? "जबतक साहूकार या ऋणदाता कर्ज देता नही या अपने को पवित्र नही करता तबतक कर्जदार के यह कहने का क्या मतलब कि वह कर्ज अदा नही करेगा।" और इसपर उन्होने एक बडी तेज चुटकी ली, जो टाल्स्टाय की याद दिलाने वाली और जो उनके वैराग्य को समझने के खयाल से बडी महत्वपूर्ण थी। "शाति और जीवन का ऊचा स्तर दोनो बाते असगत है।" यदि इन्सान अपने को दौलत से लाद लेता है तो बिना पुलिस के काम चलाना उसके लिए कठिन है। इसी नियम के आधीन साम्राज्य के लिए सेना और युद्ध अनिवार्य है।

गाधीजी के उपवास अग्रेजो की समझ से परे थे। ये उपवास भारतीय परपरा के अग है। गाधीजी स्वय कहा करते थे कि उपवास का विचार उनमे मा के दूध के साथ आया है। अपनी किसी सतान की बीमारी पर वे स्वय उपवास का सहारा लेती थी। गाधीजी के उपवासो की कीमत उनके धार्मिक असर मे थी। ये उपवास किसीपर दबाव डालने के साधन नही थे। उपवास का प्रथम उद्देश्य आत्म-शुद्धि था। सरकार को परेशान करना अथवा जिनके खिलाफ उपवास किया जाता था, उनपर असर डालना बिल्कुल गौण था। उन्होने यह भी कहा था कि वे दुश्मनो के खिलाफ उपवास कभी नही करते, "जिनका मुझपर प्रेम है, उन्हे काम की दिशा में बढाना," ऐसी उनकी आशा थी। लेकिन वे कहते थे कि उन्हे स्वय यह पता नही

कि ये उपवास किस तरह असर करते है। उन्हे अनुभव से सिर्फ यह पता था कि वे असर करते है। किसीका ऐसा कहना कि ये उपवास उस सत्य को स्पष्ट करने के खयाल से किये जाते थे, जिसके लिए वे जान की वाजी लगाने को तैयार होते थे, जिससे कि उन लोगो को फिर से अपनी स्थिति पर गौर करने और अपनी गलतियो पर विचार करने के लिए विवश किया जा सके—मेरा खयाल है कि ऐसा सोचना विषय को जरूरत से ज्यादा सरल वनाना होगा। वलिदान के विचार से आमरण अनशन का वही महत्त्व है, जो फासी पर मरने का। और फिर भी, गाधीजी के अद्वितीय जीवन के द्वारा उठाई गई अन्य समस्याओ के समान, कभी-कभी उनके धार्मिक कार्य और अति प्रभावशाली ससारी दवाव के वीच भेद कर सकना वडा कठिन था। गाधीजी इस बात को नही मानते थे कि वे कभी दवाव डालने के खयाल से ऐसा करते थे। श्री अम्वेडकर और हरिजनो को समझाने के खयाल से किये गए उनके उपवास का इतना तीव्र प्रभाव मेरे विचार से इसलिए हुआ था कि लोग यह जानते थे कि यदि गाधीजी की मृत्यु हो गई तो इसका परिणाम अपनी जिद्द पर अडे रहने वाले व्यक्तियो के लिए वहुत वुरा होगा। लेकिन स्वयं गाधीजी ने अपनी सफलता की इस व्याख्या का विरोध किया था। उनका यह कहना था कि ऐसा करने मे उनका मशा विरोधियो पर दवाव डालना नही, "वरन् उन हजारो लोगो को ज्यादा काम करने के लिए प्रेरित करना था, जिन्होने अस्पृश्यतानिवारण की प्रतिज्ञा की थी।"

वगाल मे होने वाले साम्प्रदायिक दगे को खत्म करने वाला गाधीजी का उपवास उनकी अपूर्व विजय का सूचक है। ठीक उसी समय मै पूर्व मे पहुँचा था, जवकि दिल्ली मे मुसलमानो के खिलाफ चलने वाली हिदुओ की हिंसा को खत्म करने के उद्देश्य से किया गया गाधीजी का उपवास खत्म हो चुका था। यह वह उपवास था, जो कि लगभग मृत्यु मे समाप्त हुआ था, और महात्माजी ने इसे उस समय तोडा था जवकि अधिकार-सपन्न सभी लोगो की ओर से उन्हे भरोसा दिलाया गया था कि दिल्ली मे मुसलमानो की जान-माल की रक्षा के लिए सभी कुछ किया जायगा। यह कहना विल्कुल गलत है कि इससे पटेल एव दूसरे अधिकारी पाकिस्तान को ५० करोड रुपये देने के लिए वाध्य किये गए थे। इस उपवास के वाद, मुसलमान दिल्ली की सडको पर, कम-से-कम दिन मे, अपनी पीठ मे सिक्खो की तलवार के घुसने के डर के विना घूम सकते थे। उसी समय महरौली मे होने वाले मुस्लिम मेले में मै स्वय मौजूद था जोकि विना गाधीजी की इस शर्त के कभी नही हो सकता था

कि महरौली के मेले की रक्षा और व्यवस्था का भार सरकार ले। उपवास तोड़ने की शर्तों मे एक शर्त उनकी यह भी थी। गाधीजी को अन्तिम बार जीवित अवस्था मे मैने महरौली में होने वाली प्रार्थना-सभा मे देखा था, जिसमे कि लगभग चार हजार उत्सुक और परेशान मुसलमानो ने भाग लिया था।

गाधीजी एक राजनीतिज्ञ थे। अपने उपवासो मे वे मरना नही चाहते थे, और राजनैतिक स्थिति पर भली प्रकार विचार करने के बाद ही वे इसके औचित्य का निर्णय करते थे। महात्माजी के सभी कामो को देखकर मुझे सचमुच बर्नाड-शा के, 'सेंट-जोन' नामक नाटक के एक अश की याद आती है, जहा ड्यूनो नामक उसका एक साथी सेनापति उससे यह कहता है कि वह उसे 'बिल्कुल सनकी' समझता यदि वह स्वय यह न देख लेता कि अपने कामो के पक्ष में दी गई उस (सेंट-जोन) की दलीलें बडी बुद्धिमत्तापूर्ण होती है, हालाकि उसने दूसरे लोगो से उसे यही कहते सुना था कि वह (सेंट-जोन) सेट केथेराइन की वाणी का हुकुम मानती है। इसके उत्तर में सेंट जोन यह कहती, "दैवी आदेश पहले होता है, उसके पक्ष मे तर्क बाद में खोजा जाता है।"बिल्कुल यही बात गाधीजी पर लागू होती है। यह धार्मिक व्यक्ति अपनी अन्तर्प्रेरणा पर भरोसा करता था, परन्तु वे केवल उन्ही प्रेरणाओ पर अमल करते थे, जो उनकी तर्क की कसौटी पर खरी उतरती थी। उदाहरण के लिए 'मौन-दिन' का उनका खयाल कितना अच्छा है। लदन के लिए न सही, दिल्ली के दूसरे राजनीतिज्ञो के लिए भी यह साप्ताहिक 'मौन-दिन' कितना उपयोगी हो सकता है? पश्चिमी राजनीतिज्ञो की अपेक्षा हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ हमेशा ऐसे लोगो की भीड से घिरे रहते है, जो यह समझते है कि उनतक हर समय उसकी पहुँच होनी ही चाहिए। ये लोग यह मानते है कि किसी नेता के घर में प्रवेश करने का उनका अधिकार है। यहा के लोग ऐसा समझते है कि उनकी शिकायतें सुनना, उनकी पत्नियो और परिवार से भेंट करना, और राज्य के मामलो पर उनसे चर्चा करना उसका कर्त्तव्य है। हिन्दुस्तानी नेताओ के ऊपर इन बातो का बहुत बडा बोझ रहता है। वह पहले से ही शासन-सबधी मामलो, भाषणो एव दलीय राजनीति से घिरे रहते है। इस मौन-दिन का यह अर्थ था कि कम-से-कम एक दिन गाधीजी इस अनधिकार प्रवेश के आक्रमण से बचे रहे। इस दिन वे खूब सोच सकते थे। गभीर कार्यो के निर्णय के लिए वे अपने दिमाग को तैयार करते थे। इसी तरह चर्खे के समर्थन मे दी जाने वाली उनकी दलील को बहुत-से लोगो ने गलत समझा था। ये लोग ऐसा समझते थे कि हिन्दुस्तान की औद्योगिक उन्नति मे रुकावट डालने वाला यह एक

अव्यावहारिक सुझाव है। नि सदेह कोटि-कोटि लोगो की ओर से उस यत्र-युग के विरुद्ध महात्माजी का यह एक प्रतीक था,जिसकी चोट से दुनिया के वडे देशो मे केवल हिन्दुस्तान ही बचा था। इसे हमेशा वचाए रखने की गाधीजी की इच्छा थी। परन्तु गाधीजी हमेशा चर्खे को एक तात्कालिक व्यावहारिक महत्व भी देते थे। वे यह भली प्रकार जानते थे कि यदि हिन्दुस्तानो ग्रामीण विदेश से आए सूती माल को खरीदने के लिए विवश नही है तो राजनैतिक एव आर्थिक क्षेत्र मे उसे ज्यादा आज़ादी मिल सकेगी। दूसरी वात यह थी कि पश्चिमी देशो के राजनीतिज्ञो की अपेक्षा हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञ को थका डालने वाली यात्राओ मे अपनी वहुत-सी शक्ति वरवाद करनी पडती है। ये लम्बे सफर हिन्दुस्तानी नेता की नस-नस को थका डालने वाले और उसकी पाचन-शक्ति को बिगाडने वाले होते है। हारो से लदे जव यह नेता स्टेशन पर उतरते है, तो उन्हे बडी दावतो मे ले जाया जाता है और इसके बाद उनसे लम्बे व्याख्यान की आशा की जाती है । गाधीजी के एक मित्र ने, जो इस प्रकार की ज़िन्दगी बहुत भुगत चुके थे, एक वार मुझसे गाधीजी की इस स्वस्थ और व्यावहारिक वुद्धि की वडी प्रशसा की थी, जिसके कारण उन्होने अपने-को केवल पाच सीधे-सादे पदार्थो तक ही सीमित रख छोड़ा था। लोग जानते थे कि महात्मा होने के कारण वे हलुआ अथवा ऐसे ही दूसरे स्वादपूर्ण भोजन नही करेंगे, इसलिए महात्माजी के इन दावतो में शरीक न होने से लोग नाराज़ नहीं होते थे, वल्कि इसके विपरीत इस साधुता के कारण वे अपनेको हमेशा अधिक चुस्त और योग्य रख सकते थे, जबकि उनके दूसरे साथी सुस्त और स्थूल होते जाते थे। मेरा खयाल है कि महात्माजी स्वय अपने बहुत-से कार्यो के लिए दिये गए इन कारणो मे से कुछ को स्वीकार कर लेते। मुझे यह सदेह है कि वे स्वय भी राजनैतिक बुद्धि की सूक्ष्मता और धार्मिक प्रेरणा के इस पेचीदे सवध को क्या सुलझा सकते थे?

उनकी हत्या से पूर्व सोमवार को गाधीजी से मेरी अतिम वातचीत हुई थी। इस समय तक उनके उपवास की कमजोरी करीब-करीव दूर हो चुकी थी। उनका दिमाग अव उतना ही तेज़ था, जितना पहली भेंट के समय मैंने पाया था इस समय उनकी दलीलो मे अधिकार का स्वर अधिक था, कानून का कम। हमेशा की तरह अपने सिद्धान्त की समुचित व्याख्या करने को वे तैयार थे। व्रिटिश-नियंत्रण के खत्म होने के वाद हिन्दुस्तानी दिमाग की इस तरह की अभिव्यक्ति पर उन्होने सार्वजनिक रूप से अपनी निराशा और आत्मिक क्षोभ को प्रकट किया था। मैने उनसे यह भी पूछा कि 'हरिजन' के अको में प्रकाशित अपनी असफलता की आत्म-

स्वीकृति क्या उनके अहिंसा-सिद्धान्त में किसी परिवर्तन की सूचक है ? इसके उत्तर में उन्होने कहा कि उनका यह सिद्धान्त कभी नही बदला। "बडे दु ख के साथ मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अग्रेजो को हटाने के उद्देश्य से प्रयोग में लाई जाने वाली 'सविनय-अवज्ञा' केवल कमजोर के हथियार के रूप मे ही व्यवहार में आई, अहिंसा के शुद्ध रूप में नही, जो सत्य, प्रेम और बलिदान पर ही निर्भर करती है।" उन्होने मुझसे यह भी कहा कि यह फर्क दक्षिण-अफ्रीका के अपने सत्याग्रह के समय ही पहले-पहल उनके ध्यान में आया और तभी "निष्क्रिय-प्रतिरोध" का समर्थन करने वाले अपने विचार को उन्होने छोड दिया था। उन्होने निष्क्रियता पर कभी विश्वास नही किया, और न आज जिसे 'खुश करना' कहा जाता है, उसपर उनका कभी भरोसा रहा। मानव-मात्र के लिए उनकी पहली शिक्षा यह थी कि उसे सर्वप्रथम सत्य का पता लगाना चाहिए और इसके बाद अपने उद्देश्य की शुद्धि करनी चाहिए इस तरह के प्रतिरोध द्वारा यदि कोई व्यक्ति अपनेको सत्याग्रह की पद्धति में सिद्ध-हस्त कर लेता है तो वह निश्चय ही सत्य और अहिंसा के सिद्धात पर अटल रहेगा। कई बार उन्होने दुनिया को यह कहकर आश्चर्य मे डाल दिया कि जो पूर्ण अहिंसा के लिए तैयार नही है, उनके लिए बुराई के सामने कायरतापूर्वक सिर झुका देने की अपेक्षा हिंसक तरीके से उसका प्रतिरोध करना ज्यादा अच्छा है।

बाह्य रूप से अहिंसा सफल है या नही, यह प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है कि विरोधी के भीतर कोई विवेक नाम की चीज है या नही। मैंने 'हरिजन' मे यह पढा था, "हमारी विजय बिना अपराध या गलती किये जेल में रहने पर निर्भर है।" अग्रेजो के विरुद्ध सघर्ष मे क्लेश या पीडा को जीवन का एक अग बनाना पडा था। हिंसक प्रतिरोध के अभाव में "अपराधी अपराध करने से स्वय तंग आ जाता है"; इसपर जब बर्नार्ड-शा ने टीका करते हुए कहा, "भेड का शाकाहारी होना शेर पर कोई असर नही डालता", तो गाधीजी ने यह जवाब दिया था कि वे यह नही मानते कि "अग्रेज बिल्कुल शेर हैं, इन्सान नही।" नाजी लोगो के समान मामलो में अहिंसा के प्रयोग की कठिनाई को स्वीकार करने के लिए वे तैयार थे, क्योकि उन्हे दूसरे की पीडा मे मजा लेने की शिक्षा दी गई थी—जिन्होने ६० लाख मासूम यहूदियो को तलवार के घाट उतार दिया था। परन्तु उनका यह दावा बिल्कुल सच था कि अग्रेजो के विरुद्ध दुर्बल की अहिंसा का भी असर पडेगा, क्योकि नि शस्त्र प्रतिरोधको पर लाठी बरसाना उन्हें अच्छा नही लगता। वास्तव में यह बात सभी अग्रेज अधिकारी स्वीकार करते है कि यदि निष्क्रिय-प्रतिरोध की पद्धति हिन्दुस्तानियों

द्वारा लगातार आग्रहपूर्वक अमल मे लाई जाती तो अग्रेज लोग हिन्दुस्तान से बहुत पहले ही चले जाते, लेकिन, महात्माजी ने यह अनुभव किया कि यह सचमुच अहिंसा नही है। निष्क्रिय-प्रतिरोध एक ऐसा शस्त्र है, जिसका व्यवहार प्रभावपूर्ण ढग से उन लोगो के द्वारा किया जा सकता है, जिनके पास हथियार नही है, लेकिन अहिंसा एक ऐसा आत्मिक प्रयत्न है, जो उन लोगो के द्वारा अधिक सफलतापूर्वक व्यवहार में लाया जा सकता है जो यदि चाहते तो जुल्म करने वाले को हथियार के बल से जुल्म करने से रोक सकते थे। संक्षेप मे, अहिंसा मे सर्वप्रथम उद्देश्य की शुद्धि और सत्य मे पूर्ण विश्वास आवश्यक है ; विरोधी को वे सभी उचित रिआयते देने के वाद भी, जो देनी चाहिए थी, जहा विरोधी साफ गलती पर हो, वहा सिद्धान्त की वात पर दृढ रहना अहिंसा की दूसरी शर्त है। विजय प्रेम द्वारा ही प्राप्त होनी चाहिए, चाहे अहिंसा का प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने शत्रु का हृदय-परिवर्तन करने से पहले ही मर जाय। महात्माजी यह स्वीकार करते थे कि इस सिद्धान्त को आम तौर पर अग्रेजो के खिलाफ निष्क्रिय-प्रतिरोध करने वाले लोगो तक ने भली प्रकार नही समझा था।

इसपर गाधीजी के दर्शन की एक महत्वपूर्ण कमी की ओर मैंने सकेत किया, जिसे मैं हमेशा से अनुभव करता रहा हूँ। मैंने कहा कि अपने बचपन मे मैंने ईसा की शिक्षाओ को पढा था और तब जैसा कुछ समझा था उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि ईसा के उपदेश से यह बहुत भिन्न नही है और इस कारण उसके महत्व को पूरी तरह स्वीकार करते हुए भी मुझे ऐसा लगता है कि परिपक्वता की पूर्ण दशा में शासन-सूत्र चलाने वाले लोगो के लिए इसके पास कोई उचित उत्तर नही है। मैं यह अच्छी तरह देख सकता हूँ कि अहिंसा एक आक्रमणकारी शक्ति को पराजित कर सकती है, परन्तु जव उन्ही विजयी लोगो के सामने हुकूमत का सवाल आता है तो वे स्वय ऐसी मशीन से काम लेते हैं जो स्वभावत वल और जोर पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए काश्मीर के तात्कालिक मसले मे महात्माजी अहिंसा का प्रयोग किस प्रकार करेंगे ? इसपर उन्होने यह उत्तर दिया था कि सरकार के लिए अहिंसा का प्रयोग संभव है, और इस सम्बन्ध मे टाल्सटाय द्वारा लिखित 'मूरखराज' की कहानी सुनाई। उन्होने यह कहा कि शेख अब्दुल्ला काश्मीर मे अहिंसा का प्रयोग कर सकते थे, यदि स्वय उनका अहिंसा मे विश्वास होता। उन्होने यह भी कहा, "मैं कवाइलियो के विरुद्ध सफलतापूर्वक अहिंसा का इस्तेमाल कर सकता हूँ। लेकिन शेख अब्दुल्ला का अहिंसा मे भरोसा नही है।" इसपर मैंने पूछा, "क्या आप ऐसे

राजनैतिक मामलो में, जहा अहिंसा का प्रश्न ही नही उठता, व्यावहारिक सलाह नही देते ?" वे हँसे और कहा, "जरूर देता हूँ।" और इसके वाद काश्मीर के मसले को लेकर हमारी वातचीत ने ऊँचे यथार्थवादी और व्यावहारिक वाद-विवाद का रूप ले लिया।

महात्माजी की यह अपनी विशेषता थी। राजनैतिक मसलों पर वात-चीत करते समय वे साधारण समझौते का रास्ता कभी नही अपनाते थे, क्योकि वे इस क्षेत्र मे सिद्धात को हमेशा अपने असली रूप में ही अपनाने के पक्षपाती थे। सिद्धान्त के प्रश्न पर वे उस समय तक ऊपरी तौर से खामोश रहते थे, जवतक कि उन्हें या तो अपने विरोधी की स्वेच्छा का भरोसा न हो जाय—जैसा कि केविनेट-मिशन द्वारा उनके मन पर अपनी सच्चाई की छाप डाल देने के वाद हुआ था—या काश्मीर के मसले में, जहा उन्होने समझौता न होने तक आदर्श सुझाव के सवाल को कुछ समय तक उठाना ही उचित नही समझा था। इसके वाद वे एकाएक, और प्राय पश्चिमी-निवासी को आश्चर्य में डालते हुए, सिद्धान्तो को व्यावहारिक दृष्टि से समझौते के लिए रखते हुए दिखलाई देते और तव वातचीत पूरी तरह यथार्थ-वादी तर्क में वदल जाती, जहा थोडी देर के लिए ऐसा लगता, मानो सिद्धान्त को विल्कुल भुला दिया गया हो। शायद इस वात को इस तरह से ठीक कहा जा सकता है कि दूसरे लोगो की अपेक्षा प्रत्येक समस्या के दोनो पक्षो पर विचार करने का वे आग्रह रखते थे। यदि व्यावहारिक दृष्टि से रास्ता वन्द होता तो वे अपने पाल को फिर से सँभाल लेते और इसका नतीजा यह होता कि आदर्श को खोजने का वहाना करते हुए भी उन्हें ऐसा लगता कि मानो उनका उद्देश्य उनकी निगाह से ओझल हो गया हो। ऐसी अवस्था मे अपने उद्देश्य तक यदि वे सीधे नही पहुँच सकते थे, तो व्यावहारिक राजनीति के निचले स्तर को स्वीकार कर लेते थे और औचित्य के आधार पर वडी सफाई के साथ अपनी राय देते थे। इस तरह रास्ता वदलने से वे अपने व्यवहार को भूल नही जाते थे और इसलिए वे पुन. सच्चे रास्ते पर हमेशा वढ सकते थे।

महात्माजी की हत्या के नाटकीय दिनो के वाद दो वातें मेरे दिमाग में एकदम पैदा हुई। पहली वात थी दूसरे भारतीय नेताओ की उनकी सलाह और मशविरा पर निर्भरता। उनकी प्रतिष्ठा इतनी महान् थी, उनका स्थान इतना ऊंचा था, कि विभिन्न विचार के राजनैतिक नेता उन्हे अपना गुरू समझते थे। वे उनपर शायद वहुत भरोसा करते थे। और उनमें से कुछ अव अपनेको वडा राजनीतिज्ञ मान सकते है,

क्योकि उनका विश्वासपात्र मत्री अव उनके वीच मे नही है। 'राष्ट्रपिता' की हैसियत से उनकी स्थिति की अद्वितीय विशेषता यह थी कि सारे देश में उनकी एक विशेष खुफिया फैली हुई थी। राजा से लेकर रक तक उनके पास आकर अपने व्यक्तिगत दुखो को उडेल देते थे। राजनीति में इस तरह का दूसरा उदाहरण नही मिलता। सिविल सर्विस का एक छोटे-से-छोटा अधिकारी तक उनसे अपने मत्री के दुर्व्यवहार की शिकायत कर सकता था और गाधीजी फौरन सवधित मत्री से जवाव तलव करते थे, और जो आलोचना के विरुद्ध इसलिए कोई विरोध नही कर सकता था कि वह आलोचना उसकी जानकारी के विना हुई है अथवा गैर सरकारी ढंग पर हुई है। भारतीय राजनीति मे यह अद्भुत व्यक्तित्व और एक में मिलाने वाला प्रभाव आज ओझल हो गया है। इस क्षति का अदाज लगाना कठिन है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता उन कारणो मे से एक कारण थी, जिसके लिए महात्माजी ने अपने सपूर्ण जीवन को उत्सर्ग कर दिया था। छुआछूत, खद्दर और ग्राम-निर्माण के कार्य मे वे अपनेको पहले ही खपा चुके थे। मै यह भी जानता हूँ कि वे असफलता की एक भावना को लेकर मरे। उनके वहुत कम अनुयायी अहिंसा को समझ सके, और उनमें से भी और कम उसके आचरण में दक्ष हो सके। अहिंसा के मत्र से उन्होने वहुतो को दीक्षित किया था, मगर अग्रेजो के जाने के वाद यह स्पष्ट हो गया कि ये लोग कमजोर का निष्क्रिय प्रतिरोध समझ सके, वलवान् की अहिंसा नही। गांधीजी यह स्वीकार करते थे कि विना हिंसा के अग्रेजो का हिन्दुस्तान छोड देना एक अपूर्व वात थी। अपने जीवन के अन्तिम सप्ताह मे उन्होने एडगर स्नो से कहा था कि अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचारशास्त्र का ही विषय नही है, वरन् वह एक ऊँचा राजनैतिक साधन भी है—और इस प्रकार दुनिया को उनकी एक देन है। उन्हे यह पता था कि क्रोध और हिंसा की ताकतें नये हिन्दुस्तान मे वढ रही है। उनका कहना था कि अहिंसा को कभी हराया नही जा सकता, क्योकि यह एक मानसिक अवस्था का नाम है, जो स्वय ही एक जीत है और जो वाहरी सफलता न मिलने पर भी दूसरो के अदर हमेशा अच्छे आध्यात्मिक परिणाम पैदा कर सकती है। परन्तु साम्प्रदायिक सघर्ष एक तात्कालिक चुनौती थी। दिल्ली के उपवास से ठीक होने के वाद उन्होने पाकिस्तान जाकर अपने मित्रो से अपील करने की वात सोची थी। उन्हे यह भी पता था कि यह कार्य पूरा करने तक शायद वे जीवित न रहे। उपवास के दिनो में उनपर फेका गया वम उग्र हिन्दुओ की कट्टरता की एक चेतावनी थी। अपनी हत्या के ठीक एक दिन पहले उन्होने कहा था कि प्रार्थना-सभा के

बीच उन्हें मारना बहुत आसान है। यह बात सिद्ध हो गई। परन्तु उनकी मृत्यु ने एक उपाख्यान का श्रीगणेश किया है। और आज हिन्दुस्तानियो के दिमाग में गाधीजी स्वर्गीय देवताओ के समूह के बीच खडे दिखलाई पड रहे हैं। उत्सर्ग की रात को गहरी भावना के साथ आकाशवाणी के द्वारा प्रसारित की गई अपनी मार्मिक वाणी में पडित नेहरू ने सहिष्णुता और अच्छाई की तमाम ताकतो को इस अवसर पर सगठित होने की अपील की थी। किसी प्रकार, थोडे समय तक महात्माजी की मृत्यु ने उनके उपवास के उपदेशो की पुष्टि की और इससे साप्रदायिक शाति की आशा अधिक बलवती हुई। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान मे कुछ भी हो, गाधीजी की 'देन' कभी व्यर्थ नही होगी। वास्तव में यह भी एक खतरा है कि उनसे सबध रखने वाले इस उपाख्यान को ही लोग विकृत कर दें, जब सत मरता है, तब कुछ लोग उसकी स्मृति का इसलिए गुणगान करने लगते है, ताकि दुनिया उसकी नसीहतो को आसानी से भूल सके। लेकिन इस दिशा में उन्हे पूरी सफलता नही मिलती। ईसाई धर्म के विषय मे भी यही हुआ है। जहाँ एक ओर चर्च के आपसी झगडो एव पोपो की घोषणाओ ने ईसा के उसूलो को बहुत विकृत कर दिया है, वही दूसरी ओर ईसा की नसीहते चर्च-सुधार के विरोध के भीतर से सामने आकर उसके शिष्यो को उपदेश और नव-जीवन देती रही है। इसी प्रकार गाधीजी की जिन्दगी और मौत इस विश्वास के अमर साक्षी बने रहेगे कि मानव इतने पर भी बर्बादी, हिंसा और क्रूरता पर सत्य और प्रेम के द्वारा विजय पा सकता है।

: १२ :

एक महान् आत्मा की चुनौती

जॉन मिडिलटन मर्रे

मै नही सोचता कि गाधीजी की शिक्षाओ का कोई गंभीर विद्यार्थी इस बात से इन्कार करेगा कि 'हिन्द स्वराज्य' एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। यह विचित्र स्पष्टवादिता और प्रभाव से भरी हुई एक छोटी पुस्तिका है जो प्रकाश और ज्ञान के गहरे अनुभवो का परिणाम प्रतीत होती है, ऐसा प्रकाश जो समान रूप से लगभग सभी महान् धार्मिक शिक्षको के भाग्य मे होता है और विशेष रूप से, पश्चिमी सभ्यता के उस जोरदार खडन की समानता, उस बातचीत से की जा सकती है, जो रूसो के आत्म-ज्ञान का परिणाम थी। रूसो के नैसर्गिक मानव का स्थान, जिसे "सभ्यता"

भ्रष्ट नही कर सकी है, गाधीजी के दिमाग मे हिन्दुस्तानी किसान ने लिया है, जोकि रूसो के नैसर्गिक-मानव की अपेक्षा स्वय एक असलियत है। रूसो का नैसर्गिक-मानव केवल एक विचित्र कल्पना-मात्र है। वह एक आदर्श या मॉडेल का मानसिक प्रतीक है। परन्तु गाधीजी का आदर्श मानव ऐसा ठोस व्यक्ति है, जो आज तक सभ्यता से भ्रष्ट नही हुआ है और जिसका अपना पार्थिव अस्तित्व भी है। ऐसे लाखो लोग भारत के गावो मे निवास कर रहे है, जिनका साप्रदायिक भाईचारे, कमखर्ची और आडम्बर-शून्य कर्तव्य-निष्ठा का जीवन है—ऐसा कर्त्तव्य जिसकी जडे अचल धार्मिक विश्वास मे गहरी जमी है—इन लोगो के लिए बुद्धि-प्रधान हिन्दुस्तानियो द्वारा किया जाने वाला पश्चिमीकरण न तो कोई अर्थ रखता था और न वे उसके कभी नजदीक ही आए थे। 'हिन्द स्वराज्य' की गाधीजी की परिभाषा तत्त्वत इस आत्म-शासनप्रिय महान् जाति द्वारा भ्रष्ट पश्चिमी सभ्यताप्रिय लोगो पर आध्यात्मिक पुनर्विजय प्राप्त करना थी। यह विजय पश्चिम का अनुकरण करने वाले लोगो द्वारा स्वय अपने नये आध्यात्मिक जीवन से, अपने भ्रष्टाचार की आत्म-स्वीकृति से, एव भारत की ग्रामीण सभ्यता मे अपनेको नम्रतापूर्वक मिला देने से ही प्राप्त हो सकती है। गाधीजी का कहना था, "सभ्यता आचार की उस पद्धति का नाम है, जो व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य-मार्ग का सकेत करती है।" इस मार्ग पर आज भी और विगत शताब्दियो से भारतीय किसान बराबर चलता आया है।

दूसरे शब्दो मे गाधीजी ने भारतीय पूर्वजो के जीवन के भीतर छिपी व्यक्त चेतना बन जाने का विचार किया और ऐसे शिक्षित भारतीयो की दूसरी सतह को उसमे शुद्ध करने का निश्चय किया, जो अच्छे या बुरे उद्देश्य से पश्चिमी सभ्यता के मूल्यो के प्रभाव से अपनेको विकृत कर चुके थे। परम्परागत अर्थ-व्यवस्था और प्राचीन ग्रामीण जीवन-प्रणाली मे उन्हे आत्म-शक्ति की प्रधानता दिखलाई दी और इसी शक्ति को आध्यात्मिक अनुशासन के रूप मे वे प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर प्रयोग करना चाहते थे। साथ ही विदेशी व्यावसायिक सभ्यता से हिन्दुस्तान की मुक्ति का साधन भी इसी शक्ति को मानते थे। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि गाधीजी के दर्शन में इस आत्म-शक्ति का कोई गुप्त स्थान नही था।

हजारो-लाखो लोग अपने अस्तित्व के लिए इस अति क्रियाशील शक्ति के ऊपर निर्भर है। इस शक्ति के सामने लाखो परिवारो के छोटे-मोटे सघर्ष अपने-आप समाप्त हो जाते है। इतिहास इस तथ्य पर न तो ध्यान देता है और न दे सकता है। इतिहास असल मे प्रेम और आत्म-शक्ति के आसानी से काम करने के मार्ग में

आने वाली प्रत्येक वाधा का अनुलेखन करता है। इतिहास प्रकृति के रास्ते की वाधाओ का लेखा रखता है। आत्म-शक्ति के स्वाभाविक होने के कारण वह इतिहास में कोई स्थान नही पाती।

यह एक गभीर विचार-पूर्ण कथन है, यद्यपि 'प्रकृति' की परिभाषा के विषय में आम कठिनाइया उठाई जा सकती है, तथापि प्रसग से यह वात विल्कुल स्पष्ट है कि गाधीजी के लिए 'नैसर्गिक' समाज एक गहरी धार्मिक पर परस्पर निर्भर है, जिसने शताब्दियो से आग्रहपूर्ण दैनिक जीवन को मूर्त्त रूप दिया है। उस स्वरूप का दर्शन गान्धीजी को भारत में विशेष रूप से हुआ। भारतीय सभ्यता पश्चिमी व्यावसायिक या औद्योगिक अस्थिर सभ्यता के विपरीत सदा टिकाऊ रही है।

कभी-कभी, गाधीजी अपने महान् देश के पुनर्दर्शन के नशे में डूबकर 'हिन्द स्वराज्य' के पृष्ठो को इन विचित्र विचारो से भर देते थे। वे आलोचक पाठक को यह कहकर नही समझायगे, जैसेकि—

"इसका यह अर्थ कदापि नही है कि हम यत्र का आविष्कार करना जानते नही थे, परन्तु हमारे पूर्वजो को पता था कि यदि उन्होने अपना दिमाग इस दिशा मे लगाया तो हम इसके गुलाम वन जायगे और इस प्रकार हम अपनी नैतिक रचना को खो वैठेगे। इसलिए वहुत विचार-मंथन के वाद उन्होने यह निश्चय किया कि हमें वही करना चाहिए, जो हम अपने हाथ-पाव से कर सकते है।"

यह विचार सचमुच वडा काल्पनिक है कि हजारो वर्ष पूर्व भारतवर्ष के ऋषियो ने वहुत विचार और चिंतन के पश्चात्, इरादतन और जानवूझकर उस शिल्पकर्म को छोड दिया था, जिसे वाद मे पश्चिमी यूरोप के लोगो ने खोज निकाला और शोषण का एक साधन वनाया। परन्तु यदि इस कथन की ध्वनि को लें, अक्षरो को नहीं, तो इससे एक सच्चाई प्रकट होती है और वह यह कि हिन्दुस्तान की अति रूढिवादी सभ्यता अपनी अनेक भूलो और दोषो के वावजूद एक धार्मिक विवेक पर आश्रित है, जिसने विचारपूर्वक भौतिक वस्तुओ के मुकाविले आध्यात्मिक तथ्यों को पसद किया है। इस विषय में भारतीय और पश्चिमी सभ्यता के वीच का भेद वडा तीव्र है और ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा का हिंसा की कीमत पर भी लोगो के दिलो में यह वात विठाना गाधीजी के लिए विल्कुल न्यायसगत है। यद्यपि इतिहास की किसी भी अवस्था में भारतवर्ष उस शिल्प-आविष्कार के करने के, अथवा उसे इन्कार करने के योग्य नही रहा है, जिसके कि आविष्कार का पूरा श्रेय आज पश्चिम को है। भारतवर्ष ने एक धार्मिक और पारलौकिक मार्ग चुना और इस कारण

शिल्प-विज्ञान के क्षेत्र मे वढने के वह अयोग्य रहा। नि सदेह इस तथ्य के पीछे हिन्दुस्तान और ईसाईयत की सामान्य प्रकृति का गहरा भेद छिपा है, जिसके विवाद में जाना हम यहा पसद नही करते।

'हिन्द स्वराज्य' से यह वात विल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि गाधीजी द्वारा पश्चिमी सभ्यता की अमान्यता विल्कुल मौलिक है, और यह सोचना पूर्णतया गलत है कि अमली कला और विज्ञान के प्रति उनका विरोध किसी छलपूर्ण मन स्थिति का सूचक है। वे इस विषय में सदा वहुत गभीर रहे है, क्योकि यह उनके धार्मिक दर्शन का एक अति अनिवार्य भाग था। उनकी दृष्टि मे पश्चिमी सभ्यता आध्यात्मिक सत्य की अमान्यता का और भौतिक वस्तुओ पर चित्त केन्द्रित करने का नतीजा है, जो बडा भयकर है। जव वे दृढतापूर्वक यह घोषणा करते है कि "मशीन पाप का प्रतीक है", तो 'पाप' शब्द को अधिक-से-अधिक सख्ती के अर्थ मे लेने का उनका मतलव था।

इसलिए, १९वी शती के यूरोपीय स्वतत्रता के आदर्श पर चलाये गये राष्ट्रीय स्वतत्रता-आन्दोलन मे गाधीजी का इस गहराई तक पड जाना, एक प्रकार का असत्याभास या आत्मविरोध ही है। उस आन्दोलन का नेतृत्व करना उनके लिए न्याय-सगत था, क्योकि उनके विचार से ब्रिटिश नियत्रण के हटे विना भारत अपने स्वाभाविक परम्परागत जीवन मे आ नही सकता था। आरम्भ मे पापपूर्ण पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को वढाने वाली और फैलाने वाली एजेसी के रूप मे ही अग्रेजो का यहा से भागना आवश्यक था। परन्तु यह मत उन वहुत-से काग्रेसियो के विचार से सिद्धान्तत भिन्न था जो पश्चिमी सभ्यता की सपूर्ण परिपाटी को सुरक्षित रखते हुए भी स्वय अपने घर के स्वामी होना चाहते थे। ये दोनो उद्देश्य अर्थ विपरीत थे और उनका मेल अनिश्चित था। इसी कारण गाधीजी की स्थिति निराली थी। तत्त्वत वे एक धार्मिक सुधारक और हिन्दुत्व को एक नया रूप देने वाले होते हुए भी क्रातिकारी हर्गिज नही थे। इसके विपरीत वे एक ऐसी नवीन आध्यात्मिक पूर्णता के शिक्षक थे जो अपने परिचित मार्ग से अलग हो गई थी। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से उनकी स्थिति की असीम शक्ति इस सच्चाई मे छिपी थी कि वे भारतीय किसान की नजर मे पूरे सत थे। भारतवर्ष की जनता पूरी तरह से पश्चिमी-रग में डूवी काग्रेस के पीछे नही, उनके पीछे थी। यद्यपि काग्रेस के भीतर उनके वहुत-से वुद्धिमान एव भक्त समर्थको के विषय मे यह सोचना वडा अन्यायपूर्ण होगा कि गाधीजी के नेतृत्व मे उनका व्यवहार वडा उद्धृत या अडियल था; क्योकि वे लोग भी उनके आध्यात्मिक महत्व और हिन्दुस्तानी जनता के प्रति उनके प्रभाव

को स्वीकार करते थे, फिर भी बहुसख्यक काग्रेसियो और उनके बीच के उद्देश्य और मूल्यो के मौलिक भेद पर जोर देना आवश्यक है।

अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि गाधीजी के उद्देश्य और मूल्य व्यावहारिक थे अथवा केवल काल्पनिक। एक उदाहरण, जिसको ट्वानबी ने अपनी पुस्तक 'स्टडी ऑव हिस्ट्री' (इतिहास का अध्ययन) मे "प्राचीनतावाद" की सज्ञा दी है—अतीत की ओर मुडने का वह असंभव प्रयत्न, जिसका कि प्रभाव ट्वानबी के शब्दो मे और अधिक क्रातिकारी होता है। मुझे सदेह है कि कोई भारत-वासी पूर्ण विश्वास के साथ इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। निश्चय ही मेरे लिए भी इस विषय में कुछ कहना बडा उपहासजनक होगा। फिर भी गाधीजी की अन्तिम स्थिति की नाप-तौल करने के विचार से यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि कोई भी उसपर विचार किये बिना नही रह सकता।

गान्धीजी देश को जिस रास्ते पर ले जाना चाहते थे, सबसे पहले उसके बारे मे हमें स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। अपनी धार्मिक और आर्थिक स्थिति की वजह से पश्चिमी सभ्यता का त्याग करना उनके लिए अति आवश्यक था। ऐसा कहकर उनके विचारो की हँसी उडाना होगा कि यदि उनके हाथ मे सत्ता आ जाती तो वे हिन्दुस्तान से रेले खत्म करने और सूती मिलो को बन्द करने का निश्चय किये बैठे थे। यदि उनके सिद्धान्त का शाब्दिक अर्थ करे तो उससे साफ यही ध्वनि निकलती है। परन्तु सर्व प्रथम, उनके सिद्धान्त से यह प्रकट होता है कि उनके उद्देश्य की सीमा मे तो सत्ता प्राप्त करना भी नही आता। हिटलर या मुसोलनी के विपरीत तानाशाही ताकत हासिल करना उनके स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था, परन्तु उतना ही बेमेल उनके लिए नेहरूजी की वैधानिक राजनैतिक सत्ता भी थी। गाधीजी ने केवल विवेकपूर्ण मानव की शक्ति को पाने का प्रयत्न किया और पाई भी—सत, धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षक जो अपने उदाहरण और शिक्षा से लोगो को वही करना सिखाता है, जो उचित है। वे भौतिक सुखो की ओर दौडने को बिल्कुल गलत समझते थे। मितव्ययता और आत्म-सयम को वे ठीक समझते थे और इसलिए उद्योगीकरण द्वारा हिन्दुस्तान के जीवन-स्तर को उठाने की समस्या के विचार को उन्होने बिल्कुल अस्वीकार कर दिया था। वे समान भाव से पूजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद के विरोधी थे, क्योकि साध्य की आध्यात्मिक पुष्टि का उन्हे ऐसे सभी आर्थिक और राजनैतिक सगठनो में अभाव दिखलाई पडता था, जिनका उद्देश्य केवल उत्पादन की वृद्धि और भौतिक वस्तुओ का उपभोग मात्र था।

ऐसा नही कि हिन्दुस्तान की जनता की भीषण गरीबी की उन्हे चिन्ता नही थी। वे यह मानते थे कि जल्दी-से-जल्दी उसके सुधार के लिए कोई व्यावहारिक कदम उठाना चाहिए। परन्तु यह बात बहुत महत्त्व की है कि गाधीजी की दृष्टि मे इन्सान की जिन्दगी की वही अवस्था उचित और श्रेष्ठ है, जिसे पश्चिमी स्तर की नजर मे घोर और भयकर गरीबी का नाम दिया जाता है। इस प्रकार गाधीजी का व्यावहारिक उद्देश्य हिन्दुस्तान के किसान को विनाशकारी और असह्य गरीबी के चगुल से निकाल कर एक सुन्दर, सुखदाई और पवित्र गरीबी की ओर ले जाना था। उनका यह विश्वास था कि प्राचीन काल मे किसान की यही अवस्था थी, लेकिन उस उच्च पूर्व सतुलन को ब्रिटिश विजय ने और लकाशायर के सूती माल ने नष्ट कर दिया था। इसलिए गावो मे कताई और बुनाई के पुनरुद्धार पर उन्होने अधिक जोर दिया और इसे ही वे ग्राम के सर्वसाधारण की आर्थिक व्यवस्था के सुधार की प्रस्तावना मानते थे।

मुझे ऐसा लगता है कि एक पेशेवर अर्थशास्त्री के लिए, जोकि पूर्णतया विरोध का गुलाम नही हुआ है, चर्खा-आन्दोलन की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से इन्कार करना कठिन है। विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से भी भारतवर्ष की सबसे आवश्यक समस्या किसान का साल मे अधिक समय तक बेकार रहना है। जलवायु-सबधी अवस्था और थोडी कृषि के कारण, जोकि औसतन तीन एकड तक होती है, उसे वर्ष मे चार महीने तक बेकार रहना पडता है। इसलिए थोडी पूजी से चलने वाले किसी उद्योग-धधे की आज सबसे अधिक जरूरत है। चर्खे से सूत की कताई इस आवश्यकता की पूर्त्ति करती है। यद्यपि पैसे के विचार से मशीन द्वारा तैयार किये गए सूत से इसके सूत की कीमत ज्यादा पडती है, फिर भी कम काम पाने वाले किसान के लिए बेकार समय मे अपने लिए कपडे बना लेने के खयाल से इस तरीके के खिलाफ कोई आवाज नही उठाई जा सकती है। और इसी प्रकार 'इन्सानी घटो' से तैयार हुई खद्दर और मशीन द्वारा तैयार कपडे की लागत मूल्य की तुलना करना असगत है। गाँवो मे लाखो मनुष्यो के घटे योही बरबाद जा रहे है। अत सवाल यह है कि आज उस समय को कम-से-कम उत्पादक तो बनाया जाय।

इस दृष्टि से एक बाहरी आदमी के लिए चर्खे का आन्दोलन पूरी तरह से न्यायसगत है और इसलिए यह उस प्राथमिकता का अधिकारी है जो गाधीजी ने उसे दी थी। परन्तु हमे इस प्रश्न का उत्तर देना है कि क्या यह एक अल्पसामयिक साधन है, अथवा इसे समाज का स्थायी आधार माना जा सकता है ? यद्यपि 'हिन्द

स्वराज्य' के लेखो से यह प्रकट होता है कि गाधीजी ने हिन्दुस्तान के लिए हाथ के श्रम पर आधारित अर्थ-व्यवस्था की ओर पुन लौटने को एक आध्यात्मिक और नैतिक भलाई माना है, और इसीलिए मशीन और पाश्चात्य विज्ञान के बहिष्कार की बात वे सोच रहे थे, फिर भी यह कहना संदेहयुक्त है कि उन्होने इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार किया था नही। उन्होने सिलाई की मशीन को अपने मशीन-अभियोग आन्दोलन में अपवाद रूप माना था, शायद इसीलिए, क्योकि वह हाथ या पाव से सचालित होती है और शायद इसलिए भी कि इसका बनना अब अच्छी व्यवस्था के भीतर राष्ट्रीय कारखानो में भी सभव हो सकेगा। इस उदाहरण से हम यह नतीजा निकाल सकते है कि गाधीजी शायद ऐसी मशीनो को स्वीकार कर लेते जोकि ग्राम अर्थ-व्यवस्था की विनाशक नही, बल्कि उसे मजबूत करने वाली साबित होती। अर्थात् उनका चालन विद्युत शक्ति से नही होना चाहिए और न उनसे मौजूदा अर्द्ध-बेकारी को और बढावा मिलना चाहिए। इस बात को सिद्धान्त में फैलाना उस समय तक बडी कठिन आर्थिक धारणा होगी जबतक कि कोई पूर्ण आत्म-निर्भर ग्राम-समुदायको स्पष्ट भारतीय सभ्यता की सिद्धान्त रूप से एक अभिन्न और महत्त्वपूर्ण इकाई नही मान लेता। ऐसी जाति ही इस सिद्धान्त को संभवत मूर्त रूप दे सकती है, जो जीवित धार्मिक परम्पराओ मे निहित नैतिक मूल्य को ही अपना निर्णायक मानती हो। भौतिक जीवन-स्तर को एक सीमा तक ही उठाने की इजाजत मिलनी चाहिए और तभी इससे कुछ अश मे एक मानवीय आनन्द प्राप्त हो सकता है। और तभी सर्वसामान्य में व्यापक रूप से उस उल्लास की प्रतिष्ठा हो सकती है, जिससे कि पाश्चात्य सभ्यता हमेशा के लिए अपना मुह मोड़ चुकी है। इस व्यवस्था में भारत जैसे बडे-से-बडे देश तक को चाहे वह एक महाद्वीप के समान ही क्यो न हो, 'एक महान् शक्ति' बनने और उसी तरह की किसी ताकत मे उसे आगे नही बढने दिया जायगा। हा, आत्मिक शक्ति में वह किसी हद तक बढ सकता है।

गाधीजी की भारतीय अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा पूरी तरह से शातिवादी है। इस प्रकार गाधीजी का शातिवाद पश्चिमी सभ्यता में विकसित होने वाले शातिवाद से सर्वथा भिन्न है, विशेष रूप से व्यक्तिगत अर्थ-व्यवस्था के पोषक के रूप में। गाधीजी का शातिवाद, भौतिक वस्तुओ के प्रति मोह नही रखता और इसलिए वह पश्चिमी शातिवाद की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण है। पश्चिमी शातिवाद भौतिक जीवन-स्तर को कायम रखने और ऊपर उठाने के पक्ष में है और जो भौतिक उद्देश्यो के मुकाबले मे आध्यात्मिक उद्देश्यो के परिणाम

से दूर भागने की इच्छा रखता है।

इससे यह अर्थ नही निकलता कि गाधीजी का विचार पश्चिमी सभ्यता के सबध से अपरिचित है। उनके जीवन पर थॉरो और टाल्स्टाय का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित है और इसे उन्होंने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है। परतु ये सत पश्चिमी विचार की प्रधान धारा के प्रति कुछ सनकी होते हुए भी अनवरत युगव्यापी भारत की धार्मिक परपराओ से जुडे है। अमरीका और रूस के अरण्य से उठने वाली चीखे गाधीजी के भीतर जाकर व्यापक मानव-आत्मा की पुकार मे बदल गई है। यह बात किसी प्रकार भी अविचारणीय या असभव नही है कि अपनी बहादुराना और प्रतीकात्मक मृत्यु के बाद गाधीजी आध्यात्मिक रूप से पुनर्जीवित भारत की केन्द्रीय विभूति और आत्मिक प्रतीक बनेगे। उन्होने आध्यात्मिक सन्तोष की भावना से पूरित शातिपूर्ण ढग से व्यावसायिक सभ्यता के भौतिक मूल्यो के विरुद्ध अपनी आध्यात्मिक जीवन-प्रणाली को रखा। पश्चिम के एक निवासी के लिए इस सभावना की कल्पना कर सकना बडा कठिन है, हालाकि उसके नाममात्र के ईसाईयत के खयाल से यह विचार बिल्कुल पराया नही है, परन्तु दुर्भाग्यवश पश्चिम का धर्म बिल्कुल नाममात्र का रह गया है। बहुत दिनो से भौतिक उन्नति और भौतिक सकट पर से नियत्रण उठ-सा गया है और इसलिए आज यह एक का समर्थन और दूसरे की निन्दा करने लगा है। यत्र सभ्यता क्या सचमुच किसी धर्म के अनुरूप हो सकती है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे पूछने के लिए ईसाई सदस्यो तक मे एक उत्साह की आवश्यकता है और उसी प्रकार इसका उत्तर दे सकने के लिए एक दैवी विवेक की आवश्यकता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जो वर्तमान समय के पूजीवाद और साम्यवाद तथा लोक-तत्रवाद और साम्यवाद के बीच की सभी प्रत्यक्ष और भयपूर्ण अर्थ-विपरीतताओ को स्पष्टत. काट देता है। ये विरोधी अनुमान शैल्पिक सभ्यता मे हमेशा मौजूद रहते है, जिसके दोनो छोरो पर यह मान लिया गया है कि शिल्प एक अच्छी और आवश्यक वस्तु है, जोकि लोगो को भौतिक लाभो का उपहार देने की क्षमता रखती है, जो लाभ स्वय-प्रमाण की तरह से व्यापक मानव-समाज के लिए सबसे अधिक कल्याणकारी है। इस प्रकार पश्चिमी राजनीतिज्ञो के लिए यह स्वत.-सिद्ध है कि साम्यवाद के आक्रमण को सफलतापूर्वक पश्चिमी जगत के भौतिक स्तर को उस सीमा तक उठाकर ही रोका जा सकता है, जिस सीमा तक साम्यवाद के लिए पहुँचना व्यावहारिक दृष्टि से असभव हो। भौतिक उन्नति हो सके यह बात

सभव है। परन्तु यदि यह उन्नति हो भी गई तो क्या पश्चिमी मानवता इस जगल से वाहर जा सकेगी या उसमें और उलझेगी ? तब क्या शाति और सन्तोष की दृष्टि से यह पश्चिमी समाज अधिक योग्य हो सकेगा ?

इस विषय मे गाधीजी ने सीधा और स्पष्ट उत्तर दिया था। सैद्धान्तिक रूप से वुनियादी असन्तोष का शाति के साथ कोई मेल नही वैठता—कभी-कभी इसे "दैवी असन्तोष" के नाम से पुकारा जाता है और उसे शिल्प-विज्ञान के द्वारा अनुमान और प्रेरणा प्राप्त होती है, क्योकि शाति एक मन स्थिति, एक जीवन-प्रणाली है। व्यक्तिगत रूप से मानव के धार्मिक चुनाव पर अवलबित आध्यात्मिक वस्तुओ के मुकाविले मे भौतिक वस्तुओ के त्याग का ही रूप है—ऐसा त्याग जिसका कि आचरण उस व्यापक मानव-समुदाय द्वारा एक जीवित पारलौकिक और सर्वव्यापी धार्मिक परपरा के गुण के रूप मे होना चाहिए। मै यह नही जानता कि गाधीजी की वात ठीक थी या गलत। इससे भी कम कल्पना मै इस वात की कर सकता हूँ कि भारत उनका अनुकरण कर सकेगा या नही, परतु मुझे इसमें कोई सदेह नही कि जिस चुनौती को उन्होने पश्चिम के सामने रखा, वह नि सदेह एक महान् आत्मा की चुनौती थी जिसके भीतर भारत का आध्यात्मिक और धार्मिक विवेक एक नये अधिकार के साथ मुखरित हुआ था।

: १३ :

गांधीजी के काम और नसीहतें

हरमन ओल्ड

गाधीजी के चरित-लेखको के लिए कल्पना को तथ्य से और जनश्रुति को सत्य से अलग करना वडा कठिन होगा। अपने जीवन-काल ही मे गाधीजी के साथ एक पौराणिक हस्ती की कहानी जुड गई थी, वे एक प्रतिमा वन गए थे जिसके नाम की शपथ ली जा सकती है। एक आश्चर्यजनक शक्ति और ईश्वरी गुणो के प्रतीक का स्थान उन्हे मिल गया था। स्वय मैंने कई बार उचित तर्क को पकडने के लिए अथवा नसीहत का सकेत करने के लिए, उनके नाम का स्मरण किया है—विशेषकर १९१४-१८ के युद्ध के समय जवकि अपनेको मै एक शातिवादी कहता था। मेरा शातिवाद वाह्य तौर पर ईसा की शिक्षा या टाल्स्टाय द्वारा की

गई व्याख्या के अनुरूप प्रेरित हुआ था। 'वाह्य' शब्द का प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि तवसे मै यह मानने लगा हू कि महान् व्यक्ति अपने उपदेशो को देते नही है, लेकिन चेतना मे छिपे खयालो और भावना को केवल उभाडते है, जोकि शिष्यो के दिमाग मे दवे पडे रहते है। वात ऐसी है या नही, परन्तु यह वात विल्कुल सच है कि जब प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ तो मै स्वय सत्याग्रह और अहिंसा के विचार का पोषक था और उस समय मै गाधीजी को इस विश्वास का पोषक और पथ-प्रदर्शक मानता था, क्योकि उनके उपदेश और कार्य मेरे विश्वास के अनुरूप थे, इसलिए मैंने उन्हे पूरी तरह से विना सदेह या प्रश्न के स्वीकार कर लिया था।

तीस वर्ष के इस बीते हुए युग के दौरान मे मेरे दिमाग और आचरण मे कुछ अनिवार्य परिवर्तन हुए है। मेरा विचार है, मै अव कम कट्टर और ज्यादा सहिष्णु वन गया हू। किसी वुराई को आम मान लेने का मै कम आदी हो गया हू और उन लोगो की सच्चाई को स्वीकार करने मे ज्यादा तैयार हो गया हू, जिन्हे पहले मै गलत समझता था। पहले जव अग्रेजी पत्र समय-समय पर गाधीजी के कार्यो और भाषणो पर प्रकाश डालते थे तो मै कभी-कभी उनके कामो की आलोचना करता था और उनके उपदेश को शका की दृष्टि से देखता था। उनके काम मुझे कुछ-कुछ चमत्कारपूर्ण और नसीहते वडी कठोर प्रतीत होती थी। अव मैंने यह वात आसानी से मान ली है कि परिस्थितियो के अपूर्ण ज्ञान के आधार पर निर्णय करना यदि असभव नही तो कठिन अवश्य था, और विशेषकर एक अग्रेज के लिए, जो कभी हिन्दुस्तान मे न रहा हो और जो एक सामान्य अग्रेज से एक हिन्दुस्तानी के विषय मे थोडा ही अधिक परिचित हो, हिन्दुस्तान के मसलो पर गाधीजी के योग का अदाज लगाना उसके लिए वडा कठिन है। मै सचमुच उस वात का फैसला नही करना चाहता, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि गाधीजी के सदेश या पुकार के प्रति उस समय मेरा कम झुकाव था।

मै गाधीजी के सच्चे स्वरूप को उस समय समझ सका जवकि सन् १९४५ मे मै हिन्दुस्तान गया और कुछ महीनो तक सभी स्थिति के लोगो से मिला और जगह-जगह सभाओ और भाषणो मे शरीक हुआ। यह कहना तो वेकार है कि वे एक अजीव हिन्दुस्तानी थे—गाधीजी के समान महापुरुष किसी देश और किसी समय के लिए विचित्र नही होते—वे अद्वितीय होते है। फिर भी वे पक्के हिन्दुस्तानी थे और उन्हे हिन्दुस्तान ही पैदा कर सकता था। यह वात कहना विल्कुल

असगत होगा कि उनकी विशेष ताकत और असर यूरोप में भी वैसे ही फैलते, जैसे कि हिन्दुस्तान मे जहा अपने युगवर्ती प्राचीन इतिहास और परपरा के बावजूद आज भी अधिकाश निवासी अशिक्षित है और जहा का जीवन तत्त्वत सादा है। यद्यपि गाधीजी का अपना चरित्र बडा पेचीदा और सूक्ष्म था, परन्तु अपने लोगो के लिए दिया गया उनका उपदेश बडा सहल और सीधा होता था और वे इसे बिना किसी अस्पष्टता के प्रकट करते थे। इसमे कोई सदेह नही कि पश्चिमी सभ्यता की प्रगति बहुत अश तक भ्रष्टता और सशय की ओर हुई है और यह बात कहना व्यावहारिक नही है कि गाधीजी का सीधे-सादे शब्दो में दिया गया सदेश उन देशो को अपने साथ बहा ले जा सकता था, जिनमें अधिकाश निवासी यूरोपीय है। सचमुच मै प्राय हिन्दुस्तान की शिक्षित नौजवान पीढी से मिला, विशेषकर ऐसे लोगो से जो उद्योग-धधो मे लगे है और जहा राजनैतिक सिद्धान्तो पर अधिक वाद-विवाद चलता है, वहा भी महात्माजी की शिक्षा के बारे मे मैने वही सशय पाया जैसा कि यूरोप के शिक्षित समाज के बीच पाने की मै आशा करता था। 'महात्मा' शब्द के बोलते समय ये नौजवान प्राय अपने ओठ सिकोड कर एक अजीब तिरस्कार-मिश्रित हँसी के साथ बात करते थे।

परन्तु आम लोगो को मैंने गाधीजी का नाम बडी श्रद्धा और आदर के साथ लेते सुना है। हिन्दुस्तानियो मे श्रद्धा की भावना अग्रेजो से कही अधिक है। एक अग्रेज किसी व्यक्ति के प्रति साधारणतया श्रद्धा का भाव अपने मन मे पैदा करना पसन्द नही करता, वह उस भाव को केवल ईश्वर और सतो के लिए ही सुरक्षित रखता है जबकि एक हिन्दुस्तानी ह‍ेशा ऐसे व्यक्ति की तलाश मे रहता है, जिसे वह अपनी श्रद्धा का पात्र बना सके। हिन्दुस्तानी किसी सदिग्ध सतपन के प्रतीक के ऊपर श्रद्धा की बौछार करने मे सकोच नही करेगा। यही क्यो, मै तो अनुशासन तक को प्रोत्साहन न देना ही पसन्द करता हू। ऐसे वातावरण में जहा ये बाते सभव है, गाधीजी के लिए अपने लाखो देशवासियो के हृदय में पूजा की ज्योति जगा सकना कितना स्वाभाविक था। वे उनकी आकाक्षाओ के प्रतीक थे। हिन्दुस्तान की आवाज उन लाखो मूक हिन्दुस्तानियो की आवाज थी, जोकि यह मानने लगे थे कि अग्रेजी हुकूमत से आजादी पाने का अर्थ सचमुच आजादी है।

मै जब बबई मे था तो मुझे जनता की इस उमडती भावना का नजारा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र, जो अपनेको गाधीजी का अनुयायी मानते थे, एक दिन मेरे पास आकर यह उत्तेजनापूर्ण खबर सुनाने

लगे कि गाधीजी वहुत जल्दी एक दिन के लिए ववई आने वाले है। उनकी वडी इच्छा थी कि मै ऐसे व्यक्ति के सामने आऊ, जिन्हें वे इतनी श्रद्धा करते थे और साथ ही यह वादा किया कि वे उनके साथ मेरी भेट का भी इतजाम कर देगे। मेरे मित्र भी वडे सत स्वभाव के व्यक्ति थे। इनसे मेरा काफी स्नेह था। अत मै ऐसे मौके के प्रति कम उत्साह दिखा कर उन्हें घवराना नही चाहता था, परन्तु फिर भी लाचारी मे मुझे कहना पडा कि मेरे लिए यह आखिरी चीज होगी कि मै अपनी उपस्थिति एक ऐसे व्यक्ति पर लादू जो हमेशा विभिन्न लोगो से घिरा रहता है, और निस्सदेह जिनपर वहुत-से लोग मुझसे अधिक दावा रखते है। मै दूर से ही उनकी प्रशसा करने मे सन्तोष मान लूगा। लेकिन मेरे मित्र अपने मनमें तय कर चुके थे, और कुछ दिन के वाद मैंने सुना कि महात्माजी मुझसे मिल सकेगे, यदि मै पेटिटहाल मे जाकर प्रार्थना-सभा मे शामिल हो सकू, जहा वे ठहरे हुए थे। उस विशाल भवन के सामने पहुचने पर मैने उस इलाके में फैले हुए उत्सुक वातावरण का अनुभव किया। पेटिट-हाल की ओर जाने वाली मोटरो के सिवा मैंने वहुत कम लोगो को उस सडक पर चलते हुए देखा, जिसके दोनो ओर सावधान स्काउट खडे थे। उस वडे हाल मे मुझे कुछ ऐसे लोग दिखलाई दिये, जो सिर्फ हिन्दुस्तान मे ही मिल सकते है—वडी आखे, चिकने चेहरे, स्वप्नदर्शी प्राणी, सफेद लम्बे कपडे पहने, जोकि उनकी काली सूरतो पर काफी फवते थे। इन लोगो ने मुझे बताया कि महात्माजी शीघ्र वाहर आ रहे है, परन्तु उन्होने मेरा नाम अदर भेज दिया।

मै जैसे ही उनकी वैठक से मिले कमरे मे पहुचा, मुझे वडा धक्का लगा, क्योकि वहा मेरे मित्र जूते उतारने के लिए किसीसे कानाफूसी कर रहे थे। अव-तक मै बहुत वार मसजिद मे घुसते समय जूते उतार लेता था, लेकिन यह मुझे अजीव नही लगता था, क्योकि मसजिद खुदा का घर होता है। परन्तु मेरे जैसे ही एक दूसरे इन्सान के सामने जो चाहे जितनी श्रद्धा का ही पात्र क्यो न हो, जूते उतारने के सवाल पर मेरे मन मे विद्रोह-सा उठा। सौभाग्य से इसी समय कुछ स्त्री-पुरुषो के साथ आते हुए महात्माजी दिखलाई दिये और इस तरह मै फैसले के निर्णय से वच गया। सपूर्ण वातावरण श्रद्धा की स्पष्ट भावना से भर गया था। आवाजे खामोश हो गई थी। सभी की आखे गाधीजी की ओर उठी। उनके साथ उनकी पत्नी और एक लडकी थी और इन दोनो के कधो का सहारा लिये हुए वे चल रहे थे। उनसे मेरा परिचय कराने से पूर्व मेरे मित्र उनके सामने लेट गये और उन

के चरणो को छुआ—मुझे यह काम वडा अरुचिकर लगा। जव गांधीजी ने मेरा नाम सुना तो उन्होंने मेरे नमस्कार का नमस्कार से उत्तर दिया, जैसा कि उनकी आदत पड गई थी। और तव उन्होने मुस्कराते हुए मुझसे यूरोपीय ढग से हाथ मिलाया, लेकिन कहा कुछ नही। इस समय तक हम लोग एक जुलूस की शक्ल मे दरवाजे की ओर वढ रहे थे, गाधीजी अभी भी उस नौजवान लडकी का सहारा लिये हुए थे और उनके पीछे सफेद साडियां पहने स्त्रियो की एक कतार और प्रतीक्षा करने वाले पुरुष चले आ रहे थे।

ज्योही हम नीचे पहुचे, दोनो ओर खडे स्काउटो ने अभिवादन किया। इस समय तक हमारी तादाद काफी वढ गई थी और अव मैंने अपनेको ५०-६० व्यक्तियो के जुलूस के आगे पाया। महात्माजी ने मुझे अपने निकट रहने का सकेत किया और मेरी तरफ मुडते हुए अपने दोनो ओठो को वन्द कर अपनी अगुली से उन्हें थपथपाया। श्रीमती गाधी ने कहा, "इसका मतलव यह है कि आज मौन है।" और मेरे मित्र ने जो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, आदरपूर्वक कहा, "यद्यपि गाधीजी आज नही वोल सकते, पर आप उनसे वात कर सकेगे।" मै यह मानने को तैयार हू कि इस स्थिति ने मुझे थोडी देर के लिए परेशानी मे डाल दिया। यदि मै गाधीजी के या किसीके साथ अकेला होता तो मै वात करने के लिए शायद इस आशा से लालायित भी हो उठता कि उनकी आखो में मैं अपनी वातचीत की प्रतिक्रिया पढ सकूगा, लेकिन एक सार्वजनिक स्थान पर चलते हुए, जहा पुलिस-मैन भीड को दूर रखने की कोशिश कर रहे हो, जहा स्काउट सलामी की हालत मे खडे हो, मैंने अपनेको वात करने के लिए विल्कुल अयोग्य अनुभव किया। मैंने तय किया कि मेरे समय का गाधीजी को निकट से देखने मे अच्छा उपयोग होगा। गाधीजी का इन दिनो वडा अच्छा स्वास्थ्य था। दो महिलाओ का सहारा लिए हुए भी वे विलकुल सीधे चल रहे थे। उनका शरीर कसा हुआ और पुष्ट था और उनकी लम्वी पतली टागें उनके शरीर को तेज कदमो पर चलने के लिए पर्याप्त मजवूत थी। वे धोती और शाल लपेटे थे। पैरो मे जूते नही थे। उनका खुला हुआ शरीर पालिश लगे तावे की तरह चमक रहा था और उनका चमकदार सिर घुटा हुआ था। यद्यपि वे वोल नही रहे थे, फिर भी उनकी छोटी पैनी आखे वरावर लोगो को मुग्ध करने, खुश करने, शात रहने, चेतावनी देने—परन्तु जैसा मुझे लगा मुग्ध करने में—मशगूल थी।

हम उस भवन के लॉन के नजदीक पहुचे, जहा प्रार्थना-सभा होने

वाली थी। इस समय तक काफी भीड इकट्ठी हो चुकी थी। और वहा स्काउट और पुलिस के गारद को नजदीक आकर लाइन वनानी पडी। घर के पीछे एक मंच तैयार किया गया था, जिसके सामने एक हरा मैदान समुद्र तक फैला था। मच पर कुछ सोफे सफेद कपडे से ढके रखे थे और एक वर्गाकार गद्दी पर गाधीजी पलथी मारे वैठे थे। उनके पीछे मसनदो का एक ढेर था, हालाकि जिनका सहारा वे नही ले रहे थे। वे वहा सरस्वती की एक पुरानी प्रतिमा के समान वैठे थे। उनकी आखे बन्द और शात थी—जो मच के ऊपर से नीचे घास पर वैठे सैकडो-हजारो स्त्री-पुरुषो को आलोकित कर रही थी।

एक भजन-गान से प्रार्थना शुरू हुई। इस गाने मे पीडा भरी थी, जो हिन्दुस्तान के पवित्र गीतो की अपनी विशेषता है। सर्वप्रथम कुछ गीत या भजन गाए गए और बाद मे एक नेता ने 'राम धुनि' चलाई, जिसे सभी उपस्थित लोगो ने दुहराया। लाउड स्पीकर वहा थे, पर उनका इस्तेमाल नही किया जा रहा था। मंच के पास एक दरी विछी थी जिसपर वैठने के लिए मुझे आमन्त्रित किया गया, लेकिन मै वरावर मच की उस स्थिर प्रतिमा को खडा-खडा ही देखता रहा, जिसके वैठने के ढग से मै बडा प्रभावित हो रहा था। उनका दवा हुआ नीचे का होठ निश्चय का सूचक था। मेरे चारो ओर एक भाव-विह्वल भीड जमा थी। सवाददाता, फोटोग्राफर और यहातक कि चलचित्र वाले फोटोग्राफर भी चारो ओर खडे थे। मिठाई और फूलो को वेचने वाले भी वहा मौजूद थे। खूख्वार आखोवाली एक स्त्री एक वर्तन लिये जा रही थी, जिसमे कुछ खाने की चीजे मिली थी। उसमे से एक मुट्ठी भरकर प्रसाद उसने मुझे दिया। मेरे पास खडे एक पत्रकार ने मुझसे उसे न खाने को कहा। इसलिए वडी चालाकी से मैने वह चिकना पदार्थ अपनी अँगुलियो के वीच से गिर जाने दिया। प्रार्थना खत्म हुई। हस्ताक्षर लेने वालो की भीड ने महात्माजी को घेर लिया। जिन्हे उनके हस्ताक्षर पा सकने का सौभाग्य मिला, उन्होने पाच-पाच रुपये हरिजन फड मे दिये। सवाददाताओ ने मुझे भी घेर लिया और मुझसे भेंट देने के लिए अनुरोध किया। महात्मा गाधी के वारे में मेरी क्या राय है? उन्हे निराश लौटना पडा। लेकिन मैने उनसे और दूसरे लोगो से ऐसी-ऐसी छोटी-छोटी कहानिया गान्धीजी के विषय मे सुनी, जोकि इस श्रद्धा को प्रकट करने के लिए पर्याप्त थी, जिसके कि भागीदार मेरे वे सत मित्र और वहा इकट्ठी हुई जनता थी। एक उत्सुक नौजवान ने वही खडे होकर घोषणा की कि मानो खोज का यह काम उसी ने किया हो कि गाधीजी एक लोकतत्रवादी, एक कुलीनवादी, धनिको के आदमी

थे—प्रजातन्त्रवादी जैसाकि उनके 'हस्ताक्षर' करने से प्रकट होता है, कुलीनवादी, क्योकि वे सचमुच कुलीन थे; और धनिको के इसलिए कि उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए लखपतियो का उपयोग किया है।

इस घटना के प्रकाश मे, जो स्वय मेरी रुचि के अधिक अनुकूल नही थी, मैंने गाधीजी के बारे मे एक स्पष्ट जानकारी हासिल की। उनके बारे में कुछ बातो को, कुछ तरीको को, उनके उद्देश्यो को मैंने हमेशा ज्यो-का-त्यो माना है। हिन्दुस्तान के लिए उनका प्रेम, अग्रेजी हुकूमत से भारत की आजादी की अनिवार्यता के प्रति उनका विश्वास, अहिंसा की नीति में उनकी अडिग आस्था, सविनय-अवज्ञा के लिए उनका सच्चा समर्थन—कोई भी व्यक्ति इनमे से एक या सभी मान्यताओ की बुद्धिमानी पर सदेह कर सकता है। परन्तु मुझे इस उत्साह के प्रति गाधीजी की सच्चाई पर कभी सदेह नही हुआ। मेरे मन मे उनके इन तरीको के प्रति सदेह पैदा हुआ था जिनकी सहायता से वे अपने उद्देश्यो को आगे बढाना चाहते थे। सविनय-अवज्ञा कार्य की एक पद्धति थी, क्योकि १९१४-१८ के युद्ध मे मै लडाई का एक विरोधी था और इसलिए अनिवार्य सैनिक भर्ती सबधी कानूनो को पालन करने से मैंने इन्कार कर दिया था परतु ऐसा करने में मैने अपने सिवा और किसी को शामिल नही किया था और मेरी इस अवज्ञा का नतीजा भी केवल मुझे ही भोगना पडा था जबकि गान्धीजी ने केवल खुद इन्कार नही किया था, लेकिन हजारो लोगो की इन्कार के वे कारण थे। जब प्रतिरोध न करने वाले हजारो स्त्री-पुरुषो पर जिन्हे कष्ट सहन करते हुए भी अग्रेजी हुकूमत को परेशान करने की प्रेरणा गाधीजी से मिली थी, लाठी चलाने के समाचार मैंने पढे, तो इन सीधे-सादे लोगो के साहस के प्रति मेरी प्रशसा की कोई सीमा न रही, परन्तु मुझे इस बात के कारण बनने के पाप से गाधीजी को मुक्त करना कठिन लगा।

इस प्रकार अहिंसा के सिद्धान्त की उनकी व्याख्या मुझे दोषपूर्ण लगी। सरकार के व्यवहार के विरुद्ध यदि आवश्यक हो, तो 'आमरण अनशन' की बात अथवा झगडालू जातियो में शर्म पैदा करना बडे साहस और दृढता का काम है, परन्तु तत्त्वत. यह हिंसात्मक काम है—एक ऐसी धमकी, जिसे परिणाम के आधार पर न्यायसगत नही माना जा सकता, क्योकि इसका उस अपराध से कोई सबध नही रहता, जिसके विरुद्ध इसे अमल में लाया जाता है। यह एक ऐसा कार्य है जो न्याययुक्त और अन्याययुक्त दोनो उद्देश्यो में समान प्रभाव रखता है।

लेकिन गाधीजी को सचमुच इन उपायो में विश्वास था, और जहातक किसी

को पता है, उनके व्यवहार से उन्हे कोई पछतावा नही होता था। उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण वात उन उपायो को ज्यादा प्रभावशाली बनाना था और हिन्दुस्तान निवास के मेरे थोडे दिनो मे, विशेपकर जव स्वय मैंने अपनी आखो से देखा, कि वे किस तरह उसका अनुसरण करते है, तो मै यह मानने लगा कि महात्माजी किस कुशलता और समझ के साथ अपने लोगो पर प्रभाव पडने की योग्यता के अनुरूप काम करते थे और उस दिशा की ओर लोगो को ले जाने में उस रास्ते का जिसे वे उचित समझते थे, ईमानदारी के साथ पालन करते थे। अपनेको सत कहे जाने के खिलाफ उनका विरोध इसलिए था कि क्योकि उन्हे सत अपने इसी असीम प्रभाव के कारण माना जाता था। इस उप-महाद्वीप के लाखो लोगो की सादा जिन्दगी से अपनेको मिलाते हुए वे स्वय वहुत सादगी से रहते थे। उनका त्याग या सन्यास उनके सतपन का एक गुण था, जिसके साथ उनके धार्मिक विश्वासो का मेल था और आवश्यकता पडने पर आमरण उपवास की उनकी तैयारी निर्धारित वलिदान की एक शक्ल थी, जिससे लोगो के हृदय मे उनके प्रति एक श्रद्धा-मिश्रित प्रेम पैदा होता था।

: १४ :

अंतिम दिन

विण्सेन्ट शियन

किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा डा राधाकृष्णन् यह वात अधिक अच्छी तरह जानते है कि, महात्मा गाधी के अद्भुत दृष्टि विषयक कार्यो को देखकर पश्चिमी दिमाग मे महात्माजी के प्रति विचारो के चढाव-उतार की प्रतिक्रिया किस तरह की होगी। इस प्रकार जिन ऐतिहासिक और आध्यात्मिक वातो ने गाधीजी का निर्माण किया है, उन वातो से अधिकाश पश्चिमी लोग अपरिचित है। इस कारण उनकी असलियत का सार-तत्त्व वहुत अश तक गलत समझा जाता है, या उसके गलत समझे जाने की सभावना है और युगव्यापी भारतीय चेतना की विशेषताओ से मुक्त इस विपय के अनुभव का क्षेत्र इतना व्यापक है कि ज्ञान के क्षेत्र के समान ही, वोध और प्रयोगात्मक रूप मे ज्ञात-अज्ञात पश्चिम-निवासी की वडी असुविधाजनक स्थितिहै। गाधीजी हमारी (पश्चिम) सीमा से आगे वढ गए और हमारे मूल्यो को पार कर गए। मुझे यह भी लगता है—और इसके निर्णय

के भी योग्य अधिकारी प्रो राधाकृष्णन् ही है—कि उन्होंने हिन्दुस्तानी वर्गों और मूल्यो के प्रति भी वैसा ही किया। इस प्रकार वे क्या थे, क्या किया और हमें क्या सिखाया, इसपर विचार करने के लिए हम सबको अपने सामान्य घेरे से, अपने छोटे-बडे जेलो से, एक ऐसी ऊंचाई तक ऊपर उठना होगा, जहा पहुचकर विश्व में निस्स्वार्थ पवित्रता के विषय में एक शक्ति के रूप में सोचने का मौका मिले—ऐसा नही कि उसे जीवन से बाहर खीचा गया है, बल्कि गहराई और व्यापकता से वह जीवन पर प्रभाव डालने वाली है।

सन् १९४७ के अंत में मुझे कोई पूर्व चेतना हिन्दुस्तान में खीच लाई। मै यहा पहले भी बहुत आराम के साथ रह चुका था और यह भी तय था कि एक दिन मै हिन्दुस्तान में पुन. यह सीखने जाऊंगा कि वहा आखिर है क्या? पहले कराची पहुचकर मै वहा कुछ दिन ठहरा और जब मुझे मालूम हुआ कि गाधीजी शीघ्र ही मुसलमानो की रक्षा के विचार से दिल्ली में आमरण उपवास शुरू करने वाले है तो मैने दिल्ली पहुचने की जल्दी की। यह उपवास १३ जनवरी १९४७ के दिन शुरु हुआ। मै नई दिल्ली १४ जनवरी को पहुचकर उपवास की प्रगति को देखने लगा। गाधीजी की इस उम्र मे उपवास की बात बड़ी चिन्ता-जनक थी, लेकिन यह भी निश्चित मालूम पडता था कि उपवास को तुडवाने के सब सभव उपाय किये जायगे। उपवास के प्रारम्भ में उन्होंने कोई शर्त नही रखी थी—हमेशा की तरह यह एक प्रार्थना और प्रायश्चित की शक्ल में आरभ हुआ था। शर्तें आने वाले शनिवार (१८ जनवरी) के दिन बताई गईं। इस दिन प्रत्येक सगठन और श्रेणी के ३० हिन्दू नेता गाधीजी से आकर मिले। इसमें कुछ अन्य संगठनो के नेता भी शामिल थे। इन लोगो ने गाधीजी से यह पूछा कि उनकी कौन बात उनके अच्छे इरादे के प्रति गाधीजी को भरोसा दिला सकेगी। उस समय गाधीजी ने सात शर्तो का नाम लिया, जिसमें दिल्ली में रहने वाले मुसलमानो की जिन्दगी की रक्षा और पूजाकर सकने की बात भी शामिल थी। इन सभी शर्तो को पूरा करने की इन ३० नेताओ ने शपथ खाई और इस प्रकार रविवार को दोपहर के दिन गाधीजी ने अपना उपवास तोड़ दिया।

मै इस बीच बराबर पढता रहा और प्रतीक्षा करता रहा। मै किसी भी प्रकार के निर्णयात्मक अनुभव के लिए पहले से ही तैयार था। मेरी चेतना में अन्य बहुत-से लोगो के समान वर्षो से गाधीजी विद्युत शक्ति के सदृश मौजूद थे। मुझे ऐसा लगता है कि अपने आध्यात्म बल के आन्दोलन में उन्होंने १५ अगस्त के दिन

प्रवेश किया था, जवकि प्रथम वार हिन्दुस्तानियो के हाथ मे सत्ता हस्तान्तरित की गई थी और उन्होने वह दिन मौन प्रार्थना, चिन्तन और चर्खा कातने मे विताया था। मेरे दिमाग मे पहले प्रश्न यह था कि आखिर यह आन्दोलन कितने दिन तक चलेगा। कलकत्ते मे मै उन दिनो था और तव इसकी सफलता की मुझे काफी आशा थी। उनके जीवन के सपूर्ण नाटक के विकास के प्रत्येक अणु और प्रत्येक तर्क मे यह वात निहित थी। इस विचार को वहा पहुचने के वाद मैने न तो न्यूयार्क मे और न दिल्ली मे अपने दोस्तो से छिपाया। ये वाते मै इसलिए कह रहा हू कि किस तरह उनसे मेरी पहली वातचीत में ही मुझे ऐसा लगा कि वह आखिरी है—यह आत्मानुभूति मेरे लिए वडी गहरी थी। मै विडला-भवन की प्रार्थना मे उपवास समाप्त होने के वाद गया, लेकिन गाधीजी से मिलने और उन्हें देखने की उस समय तक कोशिश नही की जवतक कि श्री नेहरूजी ने मुझसे यह न कहा कि गाधीजी अव वात करने के विल्कुल काविल है।

जव मै विड़ला-भवन के उद्यान-कक्ष मे गया तो मुझे अन्दर से ऐसा लगा कि गाधीजी के साथ वात करने का यह मेरा आखिरी मौका है। वर्षो से मै वर्धा जाना चाहता था, लेकिन अवतक इसका कोई अवसर नही आया था और यहा गाधीजी वहुत व्यस्त थे। साथ-ही-साथ १५ अगस्त के दिन होने वाली घटनाओ से वे वहुत दु खी थे। इस समय तमाम तामसी वृत्तिया इकट्ठी हो रही थी। ऐसी दशा में अस्थायी वातो के विषय मे पूछने की मेरी विल्कुल इच्छा न थी, फिर वे वाते चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण क्यो न हो। मै हिन्दुस्तान या किसी दूसरे मुल्क के वारे मे समय या स्थान के वारे मे वात नही करना चाहता था। इस दुनिया की पच्चीस वर्षो की चिन्ता मुझे पुराने सवाल पूछने के लिए यहा लाई थी सत्य क्या है? कर्म क्या है? कर्म का फल क्या हाता है? क्या कोई युद्ध सच्चाई के लिए होता है? एक अच्छी लडाई का भयकर परिणाम कैसे निकल सकता है?

जिस ढाचे मे ये प्रश्न असाधारण तरीके से ठीक उतरते थे, वह पुस्तक एक दिन अचानक मेरे हाथ कुछ दिन पहले एक पुस्तक की दुकान पर पड गई थी। यह पुस्तक गाधी-गीता—(दी वे ऑव सेल्फ-लैसनेस) थी गाधीजी की इस पुस्तक का अनुवाद 'अनासक्ति योग' के नाम से महादेव देसाई ने गुजराती मे किया था। इस पुस्तक मे इन्ही विषयो की चर्चा की गई थी। गाधीजी को यह पता लग गया था कि मै वहुत ही गम्भीर हू और उनके उत्तर मेरे लिए किसी दूसरे के उत्तरो से अधिक मूल्य रखते है। वहुत दिनो वाद तक वातचीत के दौरान मे मैने

उन्हें यह नही बताया कि यही प्रश्न हिटलर के विरुद्ध हमारे युद्ध और उसके नतीजे से सबध रखते हैं। वास्तव मे उनके दिमाग मे उस समय कोई दूसरा सघर्ष चल रहा होगा, फिर भी उन्होने उसे कुरुक्षेत्र के युद्ध तक ही सीमित रखा था। इस बातचीत में वे किसी बातचीत की अपेक्षा जिसका पूर्ण अहिंसा में मैं कोई उल्लेख पा सकू, साधन और साध्य की एकता और त्याग के आग्रह पर ज्यादा दूर तक चले गए थे। अब मैं यह महसूस करता हू कि वे मेरी आवश्यकता को समझ सके थे और इसलिए मेरी मदद करना चाहते थे। एक बार उन्होंने 'ईशोपनिषद्' की एक कापी मगवाई, लेकिन वह सस्कृत मे आई। उन्होने मुझसे कहा, "यदि आपको अग्रेजी की कोई प्रति न मिले तो अगले दिन मैं मगवा दूगा।" इसके बाद उन्होने ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक पढकर सुनाया और उसकी अपने शब्दो मे व्याख्या की "दुनिया को छोड दो और पुन ईश्वर की देन के रूप मे उसे प्राप्त करो।" इसमे दार्शनिक दिलचस्पी की भी कुछ बाते थी। उन्होने 'माया' शब्द का 'भ्रम' अनुवाद करने की इजाजत नही देनी चाही। हमने 'दृश्य रूप' पर समझौता किया। अणु-शक्ति, विद्युत-चुम्बक—विस्तार एवं आनुसगिक सभी दृश्य और इस ब्रह्माण्ड की सभावित लय आदि विषयो तक को उन्होंने बडी शाति के साथ देखा। तब मुझे इतना नही मालूम था जितना अब है कि ये सभी विषय कितनी स्पष्टता के साथ उपनिषद् मे वर्णित हैं। उस बातचीत के दौरान मे, जिसका कि मैंने नही के बराबर सकेत किया है, उन्होंने मुझसे कहा कि मै बिड़ला-भवन में रोज उनके पास आ सकता हू और शाम की प्रार्थना के बाद वे मुझसे रोज मिला करेंगे। उन्होने यह भी कहा कि यदि मैं चाहू तो स्वय उस भवन मे आकर ठहर सकता हूं। अत मे यह भी कहा कि वे कुछ दिन मे वर्धा जा रहे हैं, जहा मैं उनके साथ चल सकता हू और वहा भी अपने प्रश्नो को जारी रख सकता हू।

मेरे दूसरे दिन के प्रश्न सत्य और अहिंसा के सघर्ष की सभावना से सबंधित थे, जिसे उन्होंने मानने से इन्कार कर दिया था। इसके बाद मैं बाहर जा रहा था, इसलिए दूसरे दिन भी उन्होने मुझसे उसी विषय पर चर्चा जारी रखने को कहा। इसपर मैंने महात्माजी से प० नेहरू के साथ अपने अमृतसर जाने की बात कही। उन्होंने अपने दोनो हाथो को जोडकर कहा, "जाइये! जाइये!" ये थे उनके आखिरी शब्द जो मैंने उनके मुह से निकलते सुने थे, क्योकि अमृतसर से दो दिन के बाद लौटने पर ३० जनवरी आ गई थी। मैंने उस दिन के लिए सत्य-अहिंसा के विवाद को वही खत्म करने की बात तय की थी, (विषय विशेषकर दूध पीने की

शपथ से सबध रखता था)। और कोई नया विषय उस दिन लेने का विचार था—'दी किंगडम ऑव गॉड इज विदिन यू' (ईश्वरी राज्य तुम्हारे भीतर ही है) इस रचना ने कुछ दिन पहले गांधीजी को बहुत प्रभावित किया था। मैंने उनसे पूछा कि 'सरमन ऑन दी माऊंट' (गिरि-प्रवचन) उनको कैसा लगा ? एक लम्बी जिन्दगी के आखिर में इससे बहुत प्रभावित होकर सामाजिक सबध के क्षेत्र मे टाल्स्टाय ने इसे अपना मार्ग-दर्शक बनाया था। उस दिन प्रार्थना-सभा में पहुचने में उन्हें बारह मिनट की देर हो गई थी। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उस दिन दोपहर के बाद का समय उन्होंने भारत का नया सविधान पढने मे लगाया। अन्य गभीर विषय भी साथ-साथ चलते रहे। सूर्यास्त के बाद ठीक ५-१२ पर वे प्रार्थना-स्थान के लिए चले। बगीचे के एक छोर पर स्थित प्रार्थना-स्थल की सीढियो के ऊपर वे जैसे ही पहुचे, वैसे ही मैंने तीन धीमे विस्फोट सुने। मै कुछ ही गज की दूरी पर था, लेकिन गाधीजी और मेरे बीच कुछ लोग खडे थे, इसलिए मै उन्हें देख नही पा रहा था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन विस्फोटो की आवाज ने कितना घबडाने वाला असर पैदा कर दिया था, क्योकि मुझे यह आशंका पहले ही थी कि एक-न-एक दिन यह होने ही वाला है। यह हो सकता है कि थोडी देर के लिए मेरी चेतना खो गई हो। ऐसा लगा कि कोई असाधारण बात हो गई है क्योकि मैने लोगो को उन्हे ले जाते हुए अथवा कोई दूसरी महत्वपूर्ण बात नही देखी। इस बात का वर्णन मै केवल एक ही तरह से कर सकता हूं—यानी यह सब भूचाल के समान हो गया, जिसमे देखा कम जाता है, अनुभव ज्यादा होता है। उस बगीचे में मै डेढ घटे तक रहा। इसके बाद मेरे एक मित्र और साथी आकर मुझे ले गये, लेकिन इसके सिवाय मुझे उस समय की कोई बात याद नही कि मेरे दिमाग में कुछ अजीब-सा तूफान चल रहा था।

इसके बाद मै यमुना-तट पर गीता सुनने के लिए रोज जाने लगा और फिर १२ फरवरी को बिडला-भवन में उनके फूलो के सामने होने वाली प्रार्थना में गया। बाद में इलाहाबाद-संगम को जाने वाली स्पेशल ट्रेन तक भी मै गया था। इसके बाद मेरा यह काम हो गया था—जैसाकि आज भी है—कि मै उनकी बातो को समझने की कोशिश करूं, जोकि उन्होने समय-समय पर मुझसे कही थी। बाह्य परिस्थितियो के सामजस्य का क्या अर्थ हो सकता है और उनके द्वारा दिये गए छोटे-छोटे सबको के विस्तार के क्या मानी हो सकते है ?

इस बात का प्रमाण मै तब दे सकूगा, जब मै यह सब व्यवस्थित कर लूगा,

और तब यहा बतलाने की अपेक्षा उस समय यह ज्यादा व्यापक और विस्तृत होगी। एक बात बिल्कुल तय है और पहले कुछ क्षणो में बिल्कुल सत्य थी कि गाधीजी कभी भी किसी भी अवस्था में किसी बात से डरे नही। मुझे विश्वास है कि जीवन में वे भयभीत कभी नही हुए। प्राय' उन्हें दुर्जेय कहा जाता है, पर मै अभेद्य कहना अधिक पसद करूगा। कोई ऐसा कोना या रास्ता नही था, जहा से उनपर हमला किया जा सके, धावा बोला जा सके या गहरी चोट पहुचाई जा सके—जीत लेना तो दूर की बात थी। (शरीर की चर्चा यहा असगत है—उन्होने मुझसे कहा था कि वास्तव मे यह एक "वन्दीगृह" है।) अपनी पहली बातचीत के दौरान में जब हम एक नीली दरी के ऊपर टहलते हुए बात करते जा रहे थे, उन्होने मुझसे एक बात को स्पष्ट रूप से समझने के लिए कहा था।

उन्होने कहा, "मै बीमार हू। मै अच्छे-से-अच्छे डाक्टर को बुलाता हूं। मुझे बुखार है। वे सल्फा-द्रव्य का इजेक्शन देकर मेरे जीवन की रक्षा करते हैं। इससे कोई बात साबित नही होती। ऐसा हो सकता है कि मेरी जिन्दगी का न रहना ही इन्सानियत के हक में ज्यादा अच्छा हो। अब बात स्पष्ट हुई ? अगर अब भी बिल्कुल स्पष्ट नही तो मै फिर बता दू।"

मैने कहा, "मुझे विश्वास है कि मै समझ गया हूं।" इसके बाद हम गीता की चर्चा करने लगे और उन्होने फिर उस विषय को नही दुहराया। लेकिन मेरे लिए हर तरह से वे जो कुछ कहना चाहते थे, स्पष्ट था।

यह अभेद्य निर्भीकता स्वय गीता, उपनिषद् एव अन्य प्रभावो पर अवलबित है ('गिरि-प्रवचन' का भी प्रभाव इसमे शामिल है) और शायद यह उनके आचरण में आरभ से ही हो, फिर भी उनके उपदेश के अनुसार इसका विकास जीवन-व्यापी अनवरत प्रयत्न से हुआ था। उनकी प्रकाशित रचनाओ में बहुत दूर तक इस गुण का बढता हुआ प्रभाव मुझे दिखलाई पडता है। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में है, और साध्य साधन को एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता है। उन्होने यह भी बडे विश्वास के साथ कहा था कि यदि एक बार सभी विद्वान गीता-सबधी उनकी व्याख्या को गलत करार दे दें तो भी वे उसमें सदा विश्वास रखेंगे। इन वक्तव्यो की पूर्ण पवित्रता, निर्भीकता और आत्म-त्याग ने पहली ही चर्चा में मुझे इतना हिला दिया था कि उस अधेरे उद्यान में बड़ी मुश्किल से मैं अपना रास्ता खोज सका। उस समय न तो मैने ईसा पर, न बुद्ध पर कोई विचार किया था। मुझे यह भी लगता है कि स्वय गाधीजी ने भी उस समय उसपर

विचार नही किया था। उस समय वे अपने व्यक्तित्व की गहराई से बोल रहे थे। अपने जीवन में मैंने ऐसा कोई व्यक्ति नही देखा, जिसके विषय में यह कहा जा सके। मेरे द्वारा रखे हुए विषयो पर विचार करते समय वे समस्त बाह्य अस्तित्व के बोध से परे हो गए थे—ऐसे विषय जो अन्ततोगत्वा उनके निजी जीवन की आकाक्षाओ का निचोड थे।

उनके द्वारा की गई गीता की व्याख्या यद्यपि महादेव देसाई ने जीवित रखी और उसे विस्तार भी दिया, फिर भी मेरा ख्याल है कि विद्वानो द्वारा उसका अधिक समर्थन नही हुआ है। श्री अरविन्द घोष भी यह बात स्वीकार नही करते थे कि कुरुक्षेत्र व्यक्ति के हृदय के भीतर है। गीता पर लिखे गए निबन्धो में उन्होने उसे एक पार्थिव युद्ध ही माना है जो स्वय बहुत भयकर था। यही बात कोई साधारण पाठक भी मानेगा, लेकिन गाधीजी के विचार उनकी आत्मा की तह से प्रकट हुए थे और उनके लिए वे विचार बिल्कुल सच थे और इसलिए एक लम्बी जिन्दगी के बाद, जो आदि से अत तक बलिदान और आत्म-त्याग की कहानी रही है, जब उन्होने मेरे सामने वे विचार रखे, तो मैं उसे सत्य के रूप में उसी तरह मानने को विवश था, जिस तरह आज। यदि आत्मा साक्षात्कार की दिशा में आगे बढती है (जैसा कि मुझे स्वीकार करना चाहिए कि गाधीजी के साथ हुआ है) तो यह बात सत्य हो जाती है कि कुरुक्षेत्र इन्सान के हृदय के भीतर ही बन जाता है और कर्मयोगी तब उसे विशुद्ध अहिंसा में बदल देता है। साधारण व्यक्ति के विषय में यह लागू भले न हो, लेकिन महात्मा गाधी की मृत्यु में, शिक्षा में और जीवन मे कर्मयोगी का सत्य बराबर निहित था।

ईशोपनिषद् के विषय में उनके दृष्टिकोण को अध्ययन करने के लिए मुझे पर्याप्त सामग्री मिली है। उनकी व्याख्या का असर मेरे विचार से दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है—पहला असर विधि या धर्म-सबधी है, और दूसरा, बुद्धि-सबधी। जहातक मुझे मालूम हुआ है, उनके जीवन मे 'गिरि-प्रवचन' का उसी समय प्रवेश हुआ जिस समय गीता का, परन्तु 'गिरि-प्रवचन' का किग जेम्स का सुन्दर भाषायुक्त स्वरूप उनके पास पहुचा, जबकि जो गीता उन्हें इस समय उपलब्ध हुई, वह सर एडविन का छन्दोबद्ध अग्रेजी अनुवाद मात्र था (इस समय गांधीजी की उम्र बीस वर्ष की थी)। ऐसी अवस्था मे यह आश्चर्य की बात नही है कि गाधीजी के पूरे हिन्दू होने के उपरान्त भी यह ईसाई धर्म-पुस्तक उनको बहुत अधिक प्रभावित कर सकी। गीता अपने पूरे प्रभाव में उनके सामने सन् १९२४ में ५४ वर्ष की

उम्र मे आई, अर्थात् जबकि दिल्ली में उन्होने तीन सप्ताह का उपवास किया था। इसी समय स्वर्गीय मालवीयजी ने गीता का पारायण उनके सामने गाकर किया। शेष जीवन मे उन्होने मूल सस्कृत में ही गीता का पारायण किया, उसपर चितन किया और कठाग्र किया। और उसके छन्दो की लय में उन्होने उत्तरोत्तर अधिकाधिक सौन्दर्य पाया। गीता के द्वितीय अध्याय के अंतिम १९ श्लोको का पाठ उनकी प्रार्थना-सभा मे हमेशा होता था और उनकी चेतना में गीता का यह अश 'गिरि-प्रवचन' से बडी बारीकी के साथ मिल गया था। यह मेल इतना गहरा था कि गीता-सबधी गाधीजी की व्याख्या इससे एकदम प्रभावित हो गई थी, फिर भी २७ जनवरी की अपनी बातचीत में, जबकि उन्हे ऐसा लगा था कि मुझे एक ऐसे सत्य की आवश्यकता है, जो उनकी पहुंच के भीतर हो, जो कुछ मुझे दिया वह था गीता से भी परे और शायद ऊपर—ईशोपनिषद्। निस्संदेह इसकी जानकारी उन्हें अपने तमाम जीवण में थी, फिर भी उन्होने मुझसे कहा था कि सर्वप्रथम उन्होने सन् १९४६ मे इसे 'प्राप्त' किया, जबकि त्रावणकोर के कुछ ईसाई श्रोताओ को समझाने के लिए उन्होने किसी अधिकृत रचना को प्रस्तुत करना चाहा था।

मेरी राय मे उनके विकास में धर्म-निरपेक्ष और बुद्धि प्रधान प्रभावो का इन महान् धार्मिक रचनाओ की अपेक्षा गौण स्थान है और शायद अपने धार्मिक सस्कारो के अभाव के कारण ही 'गिरि-प्रवचन' और 'गीता' उनकी आत्मा पर इतना निर्णयात्मक प्रभाव छोड सके। वे इतने ही ईसाई थे, जितने वौद्ध, और एक हिन्दू और विशेषकर वैष्णव होने के नाते चाहते हुए भी वे गीता की धार्मिक मान्यता की उपेक्षा नही कर सकते थे। परन्तु फिर भी महाभारत और रामायण को ईश्वरी रचना मानने के लिए वे तैयार नही थे, ऐसा उन्होने मुझसे कहा भी था। उनको वह "महत्वपूर्ण कथाए" ही कहते थे। इस प्रकार दो धार्मिक पुस्तके उनके निकट विल्कुल नवीन और ताजे रूप मे आई। उनके ऊपर इन पुस्तको को न तो थोपा गया था, और न 'प्रमाणित सत्य' की तरह पेश किया गया था, इसके विपरीत, बिल्कुल स्वाभाविक रूप से अपनी अन्तरप्रेरणा की सहायता से उन्होने इनकी खोज की।

प्रधानतया रस्किन का और तत्पश्चात् टाल्सटाय का उनके ऊपर धर्म-निरपेक्ष और बुद्धिवादी असर पडा था—और वे ही उन्हे सहयोगात्मक श्रम और चर्खे की ओर ले गए थे। अपनी आत्मा-कथा मे उन्होने रस्किन-सबधी अपनी खोज

की विस्तृत व्याख्या की है, लेकिन सचमुच यह वडे दु ख की वात है कि मैं उनसे स्वय 'दी किगडम ऑव गॉड इज़ विदिन यू' (ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर ही है) के विषय में उनके विचार न पूछ सका। मै विश्वास नही कर सकता कि अव इतना आगे वढने पर यह उन्हें इतना प्रभावपूर्ण लग सकता, जितना कि यौवन में। यह सत्य है कि यदि कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि प्रत्येक मानव के अन्तर में है तो इस विषय में टाल्सटाय का उत्कृष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण विल्कुल सत्य है, लेकिन टाल्सटाय की सपूर्ण तर्क-विधि सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के स्तर तक ही सीमित रही है और इसलिए यह समझना वास्तव मे वहुत कठिन है कि व्यक्ति बिना दवाव या वाह्य-प्रतिवन्धो के कैसे चल सकता है। लेकिन इस विषय पर आज चर्चा नही करनी थी और न रविवार वाले विषय पर कि ईसा नजारथ का एक कलाकार था। यह उनका एक खयाल था जो सन् १९२४ की मुलाकात के समय स्पष्ट हुआ था, और इसी विषय पर आगे चर्चा करने की मेरी इच्छा इस मान्यता पर निर्भर थी कि मुहम्मद और ईसा में उन्होने जिस रचनात्मक सूझ का सकेत किया था वह वहुत अंश तक उनकी सूझ से मिलती-जुलती थी—यह सूझ भाग्य के साथ मेल के विशेष विचार से उत्पन्न हुई थी। उदाहरण के लिए मैंने उनसे यह पूछने का विचार किया था कि ईसामसीह यह जानते हुए भी कि यरूशलम जाने का मतलव उनकी मृत्यु है, वहा क्यो गए। मै महात्माजी से दो वातो का अन्तर जानना चाहता था—भाग्य के साथ मेल अर्थात् महत्वपूर्ण वलिदान, मृत्यु द्वारा शिक्षा देना—और आत्महत्या। कलाकार ईसा के विषय में उनसे पूछने के दूसरे शब्दो मे यह मानी थे कि मै स्वय इस प्रकार शहादत की ओर वढती हुई उनकी अडिग गति के विषय मे कुछ मालूम कर सकता।

मै "कर सकता" का प्रयोग कर रहा हू, क्योकि इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है असलियत यह है कि हो सकता है अपनी असाधारण निर्मलता, मानसिक उच्चता, व्यापक स्थिर-वुद्धि, अथक व्यावहारिक कार्यशीलता एवं सामान्य ज्ञान के आग्रह के वावजूद, महात्माजी भाग्य के साथ अपने योग से पूर्णतया परिचित न हो। आखिर, वे सूझ-सपन्न व्यक्ति थे। इतिहास के महानतम व्यक्तियो मे से एक थे और सूझ की प्राथमिक विशेषता यह है कि वह रचनात्मक शक्ति के अचेतन तल से उठती हुई प्रकट होती है। ऐसी दशा मे यह सभव प्रतीत होता है कि उन्होने जिस समय डाडी नमक-यात्रा आरम्भ की उस समय तक वे स्वय उन ध्वन्यात्मक प्रतीकों के उन गुणो की विशेषताओ से परिचित नहीं

थे, जोकि विभिन्न भाषाओ, स्थान और काल से परे उसे प्राप्त है, यद्यपि उन्होने यह भली प्रकार अनुभव किया था कि तमाम हिन्दुस्तानी भाषाएं इसके प्रभाव से ओत-प्रोत हैं और इस प्रकार हिन्दुस्तानी लोगो की जागृति में इनका बहुत अहम स्थान है। श्रीमती नायडू ने, जो कि नमक-यात्रा के समय और जेल में भी गांधीजी के साथ थीं, मुझे बताया था कि उस समय तक प्रतीक के रूप में वे स्वयं इसके प्रभाव से परिचित न थीं, और न गांधीजी ने यह बात उन्हें समझाई थी। यह एक बात थी जो संपन्न पहले हुई और उसकी सिद्धि बाद में प्राप्त हुई।

किसी तरह, इस विषय पर और सवाल-जवाब नहीं होने वाले थे। मेरा प्रयत्न यह था कि उनके साथ होने वाली बातचीत के समय ही इसका अर्थ मैं उसीमें से खोज लूं। किसी विषय के मूल्य-दान में इस प्रकार प्राप्त ज्ञान की बुनियाद बड़ी कमजोर मानी जा सकती है, फिर भी जिन परिस्थितियो के बीच उन बातों का श्रीगणेश हुआ, उनकी न तो व्याख्या ही की जा सकती है और न भौतिक स्तर पर उनका विश्वास ही किया जा सकता है। उन्हें आम विचार के अंश के रूप में ही पेश किया जा सकता है।

: १५ :

महात्माजी के तीन आदर्श

थाकिन नू

असहिष्णुता, लोभ और घृणा के अंधकार से आवृत्त इस विश्व में दो बड़े संकटों के बावजूद महात्मा गांधी का जीवन और शिक्षा आज भी अद्वितीय प्रकाश-स्तंभ के समान चमक रहे हैं। पच्चीस वर्षों के समय में दो विश्व-युद्धों द्वारा उत्पन्न विनाश और सहार राष्ट्रों के दिमाग में शायद संयम का भाव लाने में काफी समर्थ हो, ऐसा लोग सोच सकते हैं और इसलिए पवित्रता, आत्म-त्याग और अहिंसा के उन आदर्शों के पालन की ओर वे झुक सकते हैं, जिनका गांधीजी ने अपने जीवन में स्वयं पालन किया था। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के अंत से ऐसा प्रतीत होता है कि उस स्वार्थ, असहिष्णुता, और अनैक्य के पुनरागमन के लिए मानो इसने रास्ता साफ होने का संकेत दे दिया है, जिसके कारण स्वयं द्वितीय महायुद्ध हुआ था। महात्माजी ने अपने देश में उनके उच्च आदर्शवाद,और उपदेश

के व्यवहार ने आजादी की लडाई को एक आध्यात्मिक स्तर तक उठा दिया था और इस प्रकार आजादी के उसके दावे को सभी दृष्टियो से अजेय बना दिया था। इस व्यापक विश्व में, उनकी नसीहतो ने 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले कानून और पडोसी की वस्तु के प्रति मोह के विरुद्ध एक चुनौती पेश की, क्योकि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मानव के कार्यो के पीछे यही प्रवृत्ति काम करती है। इस प्रकार एक पागल के हाथ से होने वाली उनकी मृत्यु ने केवल हिन्दुस्तान को ही नही, वरन् सारे विश्व को स्तभित कर दिया। ऐसा लगा मानो, प्रेम और शाति के जिस भवन को उन्होने बडी सावधानी से बनाकर खडा किया था, वह ढह जायगा, और जिस सामजस्य को उन्होने प्रोत्साहित किया था वह ओझल हो जायगा। परतु उनके आशीर्वाद की ताकत हत्यारे के हाथ की मौत से ज्यादा मजबूत साबित हुई और महात्माजी की नसीहते आज भी दुनिया के लाखो लोगों के जीवन और भावना को प्रेरणा दे रही है। लाखो आने वाली सताने समय-समय पर उनसे प्रेरणा और उत्साह प्राप्त करेंगी।

महात्मा गाधी की सत्य के लिए भावना-प्रधान खोज और उद्देश्य के प्रति उनकी पूरी सचाई ने मुझे बचपन से ही उत्साहित किया है। मेरी यह तीव्र इच्छा थी कि मैं एक शिष्य के रूप में उनके आश्रम मे कम-से-कम एक वर्ष तक रहूं, और इस प्रकार उनकी नसीहतो को ज्यादा पूर्णता के साथ अपने में पचा लेना चाहता था, जोकि प्रकाशित लेखो को पढकर कभी सभव नही हो सकता था। लेकिन परिस्थितिया कुछ और ही चाहती थी। फिर भी उन्हें एक बार देखने के लिए मैं दृढप्रतिज्ञ था, और जवाहरलालजी द्वारा हिन्दुस्तान को देखने के कृपापूर्ण निमत्रण ने मुझे वह सुअवसर दिया, जिसके लिए मैं वर्षो से इच्छा कर रहा था। मैंने महात्माजी को बर्मी किसान का टोप भेंट में दिया था, जिसे उन्होने उदारतापूर्वक स्वीकार भी कर लिया था। बाद मे मैंने कुछ समय उनकी इच्छानुसार वैसा ही दूसरा टोप खोजने में खर्च किया। अत में जब वह मिला तो मैंने अपने मित्र ऊ हॉन के सरक्षण में हवाई जहाज से उसे भारत भेजा, लेकिन खेद कि जिस समय एक अकिंचन शिष्य की यह भेंट लेकर हवाई जहाज दिल्ली के रास्ते में था, हत्यारे की गोलियो ने उनके दुर्बल शरीर को छेद दिया और मानव-जाति को अपने एक महानतम पुत्र से वचित कर दिया। उस टोप को उनके ठडे चरणों पर रखा गया और अपनी जनता की सेवा में प्रेम, पवित्रता और बलिदान की उनकी शिक्षाओ को मरते समय तक आचरण में लाते रहने के निश्चय का मेरे

लिए वह प्रतीक बन गया।

एक बौद्ध और सत्य का विनम्र शोधक होने के नाते महात्माजी के तीन आदर्शो का मुझ पर बहुत प्रभाव पडा। पहला था ब्रह्मचर्य का आदर्श, जिसका उन्होने केवल उपदेश ही नही दिया वरन् अपने जीवन के अधिकतर भाग में उसका दृढता के साथ पालन किया। अपनी पत्नी की स्वीकृति से अपने वैवाहिक जीवन को वासना से मुक्त करके यौन-सबध को उन्होने बिल्कुल खत्म कर दिया था और इस प्रकार जीवन मे मैथुन पक्ष का उनके लिए कोई अर्थ नही रह गया था। मानसिक पवित्रता से दैहिक पवित्रता पैदा हुई थी। वे एक महात्मा थे, जिन्होने अपनी वासना को बिल्कुल जीत लिया था।

दूसरा ऐसा आदर्श था, जिसका पालन बहुत लोग कर सकते है, यानी निर्धनता का आदर्श। साधुओ और सन्यासियो के लिए स्वीकृत सपत्ति से परे उनकी कोई निजी सपत्ति नही थी—अर्थात् सिर के ऊपर एक छत और अति साधारण कपडे जो उनकी केवल धूप और सर्दी से रक्षा कर सके। पिछले वर्षो मे उनका खाना भी बहुत साधारण हो गया था—खजूर और बकरी का दूध। धन और आराम का उनके लिए कोई मूल्य नही रह गया था और इसलिए जीवन की नितान्त अनिवार्य आवश्यकता से परे जो कुछ ज्यादा था, उसे उन्होने धीरे-धीरे छोड दिया था।

तीसरा आदर्श—जिसका मै विशेष प्रशसक था—अहिसा का आदर्श था। महात्माजी के विचार से हिंसा का किसी प्रकार भी समर्थन नही किया जा सकता था। उनकी मान्यता थी कि हिंसा को अहिंसा से, घृणा को प्रेम से और अहकार को विनम्रता से जीतना चाहिए। यह सिद्धान्त दुनिया के लिए नया नही है। बुद्ध, ईसा एव दूसरे धर्म-प्रवर्त्तको द्वारा इसका उपदेश दिया जा चुका है। महात्माजी ने इस सिद्धान्त को ऐसी दुनिया मे फिर से जीवित किया, जो इसे बिल्कुल भूल चुकी थी, जहा जगल का कानून प्रचलित था, जहा ताकतवर जातियो ने बल-पूर्वक कमजोर जातियो को अपने अधीन कर लिया था, जहा साम्राज्यवाद और पूजीवाद टैक और सगीनो के पीछे शरण लेकर मानवता को भयभीत कर रहे है। ऐसे राष्ट्र की व्यावहारिक समस्याओ के हल मे इस सिद्धान्त को अमल में लाकर गाधीजी ने अपनी मौलिकता का सबूत दिया था—ऐसा राष्ट्र जो गुलाम होने के साथ-साथ बर्बर जातिवाद और आर्थिक पराधीनता का सदियो से शिकार था। हिन्दुस्तान बगावत कर सकता था और हिंसा का जवाब हिंसा से दे सकता

था, लेकिन इस तरह जीत अनिश्चित थी, पर प्रश्न सफलता और असफलता का उतना नही था। प्रश्न था कि इस प्रकार सशस्त्र क्राति खून-खरावी, गरीवी और पीडा की जडे हमेशा के लिए जमा देती और इससे जातीय घृणा की जडे भविष्य के भीतर तक प्रविष्ट हो जाती।

इन तीन सिद्धान्तो के उपदेश और अपने दैनिक जीवन मे इनके अनवरत आचरण की सहायता से महात्माजी ने असगठित हिन्दुस्तान के जनसामान्य को एक शक्तिशाली सगठन में वदल दिया। सफलतापूर्वक साम्राज्यवाद के विरुद्ध लडाई लडकर अपने देश के लिए स्वतत्र देशो के वीच एक उचित स्थान प्राप्त किया। एक ऐसे राष्ट्र ने, जो अपने शानदार अतीत और दार्शनिको की शिक्षा को भुला चुका था, जिसकी जिन्दगी पर स्वार्थ, अह और फूट की लहरें छा गई थी, फिर एक वार वाणी प्राप्त की ओर अपनी ताकत का अनुभव कर भारतवर्ष को अपनी नीद की वेतावी से जगा दिया। इस सदी के पहले वीस वर्षो में हिन्दुस्तानी जनता की चेतना के अन्दर जो महान् परिवर्तन हुआ, उससे महात्माजी के आदर्शो की सामर्थ्य का अदाज लगता है।

अपने जीवन के आरभिक दिनो में महात्माजी ने सत्याग्रह अथवा अहिंसक अवज्ञा के शस्त्र का प्रयोग दक्षिण-अफ्रीका मे रहने वाले भारतीयो की समस्या के हल करने में किया। उन्होने वैरिस्टर की वडी आमदनी को छोड दिया और हिन्दुस्तानियो का, अनुचित कानूनो के खिलाफ अहिंसक प्रतिरोध के मोर्चे पर नेतृत्व किया। कुछ हद तक इसमें सफलता मिली। पूर्ण सफलता अप्राप्य थी, क्योकि सभी ने उस सिद्धान्त का सच्चाई के साथ पालन नही किया था और न लोग उस सीमा तक उन मुसीवतो को सहने के लिए तैयार थे, जिनको उन्होने स्वेच्छा-पूर्वक सहन किया था। परन्तु इन्हें यह मालूम था कि उनका यह रास्ता अत में जातीय गुलामी के वधन को तोडने मे अवश्य सफल होगा। दक्षिण-अफ्रीका के अपने आरभिक दिनो मे उन्होने अहिंसक प्रतिरोध के आन्दोलन के साथ 'घृणा के अभाव' वाले सिद्धान्त को भी मिला दिया था। वोअर-युद्ध के समय उन्होने रेड-क्रास-दल खडा किया और उसका सचालन किया। जोहन्सवर्ग मे जव प्लेग का प्रकोप हुआ तो उन्होने वहा एक प्लेग अस्पताल कायम किया। नेटाल के १९०८ के विद्रोह के समय स्ट्रेचर पर घायलो को ले जाने वाली एक टोली खडी की।

सन् १९१४ मे वे हिन्दुस्तान आये। सन् १९१८ के अत्याचारी रौलट-एक्ट के वाद देश मे अपने सत्याग्रह के व्यवहार के लिए एक व्यापक क्षेत्र उन्होने पाया।

लेकिन, अफसोस कि उनके सभी अनुयायी उनकी अहिंसा को पूर्ण रूप देने के योग्य नही थे, और इसलिए अत मे पजाब और दूसरी जगहो पर यह आन्दोलन असफलता में समाप्त हो गया।

बीज बोये जा चुके थे और इस प्रकार अहिंसा और असहयोग का विचार चारो ओर फैला। १९३० का देशव्यापी सविनय अवज्ञा-आन्दोलन नमक-कानून के सामूहिक प्रतिरोध से आरभ हुआ और यदि इसने अग्रेजो को भारत से हटने के लिए विवश नही किया तो भी इसने हिन्दुस्तान में साम्राज्यवादी शक्ति की नीव को हिला दिया और उनके यहा रहने के दिनो को सीमित कर दिया। यदि सभी हिन्दुस्तानियो ने पूरी तरह से अमल किया होता, तो अहिंसक अवज्ञा का आन्दोलन असफल नही हो सकता था। मानव-स्वभाव की दुर्बलता के कारण यह आन्दोलन असफल हुआ, किसी उपाय की कमियो के कारण नही। अत में, यह वह बीज था, जिसे कि हिन्दुस्तानी नेता ने अपने लोगो के दिमाग में बोया था, और जिसके कारण हिन्दुस्तान की आजादी की माग को टाला नही जा सकता था।

महान् कार्यो के साथ महात्माजी का नाम सदा जुडा रहेगा। इनमें से एक हरिजन-उद्धार का काम है। हिन्दुस्तान एक छोर पर शासक-जाति के विरुद्ध लडाई लड रहा था, और दूसरे छोर पर अपने भीतर एक ऐसी रूढिवादी जाति प्रथा को छिपाये था, जिसके अनुसार 'दलित' वर्ग को उच्च लोगो की परछाईं छूने तक का अधिकार नही था। उनके मदिरो और कुओ तक उनकी पहुँच वर्जित थी। यह बात महात्माजी की मानवता और विश्व-प्रेम के विरुद्ध थी। इसलिए उन्होने अपनी प्रबल मानसिक शक्ति और सत-प्रभाव को हरिजन-उद्धार के काम मे लगाया। हिन्दू धर्म को इस दोष से मुक्त करना उनके जीवन का कार्य बन गया था। उनकी मृत्यु होने तक यह आन्दोलन समाप्त नही हुआ था, हालाकि उन्होने कांग्रेस को इस बात के लिए विवश किया था कि वह अस्पृश्यता-निवारण को अपने कार्यक्रम का आवश्यक अग माने। महात्माजी सभी इन्सानो को समान और बधुतुल्य मानते थे—चाहे वे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, चाहे यहूदी। इस प्रकार उन्होने जिस सुधार का बीजारोपण किया, वह समय आने पर अवश्य फल देगा और हरिजन-कार्य को सफलता मिलेगी।

महात्मा गाधी आज इस दुनिया मे नही है, परन्तु जिन महान् आदर्शों की पौध को उन्होने स्त्री-पुरुषो के मस्तिष्क मे रोपा है, आचरण की पूर्ण पवित्रता, मित्र और शत्रु के प्रति प्रेम-व्यवहार, निर्धनता एव पुरुष-पुरुष के बीच और स्त्री-स्त्री के बीच वर्गभेद की पूर्ण समाप्ति—वह पौध सदा अमर रहेगी और मानवता को विश्व-प्रेम और विश्व-शाति के निकट ले जायगी।

: १६ :

उनका ज्योतिर्मय प्रकाश

सिबिल थार्नडायक

यह बात देखने मे अजीव-सी मालूम पडती है कि किसी के धार्मिक मत का प्रचार किसी वाहर के दूसरे व्यक्ति द्वारा हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसका मत विल्कुल भिन्न हो। यह मेरा निजी अनुभव है और जिस व्यक्ति ने मेरे अपने चर्च-सवधी विचारों को—चर्च ऑव इग्लैण्ड—के सुलझाने मे मुझे सहायता की, वह व्यक्ति थे गाधीजी। मेरा खयाल है कि मुझे यह बात इस तरह से कहनी चाहिए कि ईसाइयत को और अधिक स्पष्ट रूप से देखने में, किसी विशेष चर्च या ईसाईयत की किसी शाखा की अपेक्षा, उन्होने मेरी अधिक सहायता की, और निश्चय ही यह वात उनके व्यापक विचार की सूचक है। उन्होने अपने लेखो, राजनैतिक कार्यों एवं जीवन के प्रति अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण द्वारा 'धर्म' में आस्था की साक्षी दी है—ईश्वर मे विश्वास की साक्षी दी है। जैसे-जैसे एक व्यक्ति 'नये टेस्टामेंट' वाइविल को वार-वार पढता है, उसे पता चलता है कि वे ईसा के उपदेशो के कितने नजदीक थे। प्रत्येक व्यक्ति को यह मालूम था कि गाधीजी प्रत्येक कठिन क्षण मे एक सच्चे ईसाई का रुख अख्तियार करेंगे और इस प्रकार सच्चे अर्थ में वे हम ईसाइयो के मार्ग-दर्शक वन गये थे। वचपन से मेरे लिए यह एक समस्या थी कि किस तरह एक पथ, एक मत विशेष को यह निश्चय हो सकता है कि उसके मौजूदा रूप मे पूर्ण सत्य छिपा है, क्योकि कभी-कभी हमें यह देखने को मिला है कि दूसरे लोगो के पथ ने किस तरह हमारी जिन्दगी के रास्ते में एक 'मार्ग-सकेत' का काम किया है। गाधीजी ने मेरे लिए यह वात और स्पष्ट कर दी।

उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी स्मृति मे होने वाली वेस्टमिन्स्टर एवे गिरजाघर की प्रार्थना कितनी अद्भुत थी, यह वात अनुभव करने से मैं अपनेको रोक नही सकता। उस दिन विभिन्न पथो के ईसाई वहा इकट्ठे थे—हिन्दू, वौद्ध, मुसलमान और वहुत-से दूसरे धर्मों के लोग भी वहां मौजूद थे। मै केवल उनकी वात कह रही हूँ, जिन्हें मै जानती थी। हम सव एक ही उद्देश्य के लिए वहा इकट्ठे हुए थे—ईश्वर को यह धन्यवाद देने के लिए कि उसने हमें एक सत-जीवन को जानने की सुविधा प्रदान की। इसीके वाद मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र ने मुझसे कहा कि

कितना अच्छा होता, यदि हम लोग कभी-कभी हो सके तो वर्ष मे एक वार ऐसी प्रार्थना मे शामिल होकर उन वातो पर विचार कर सकते, जिनपर हम सव सहमत है और थोडी देर के लिए अपने मतभेदो को भूल जाते, जैसाकि गांधीजी ने किया था। दूसरे लोगो के साथ एक ईश्वर के प्रति पितृ-भाव उत्पन्न करने में, मानवमात्र के प्रति भाईचारे की भावना वढाने और अन्य ऐसी ही वातो की एकता का अनुभव कराने में उन्होंने कितनी सहायता की, और हमें यह भी वताया कि मतभेदो के प्रति झगडते हुए भी हमें इस तथ्य को ग्रहण करना चाहिए। गाधीजी ने मेरे चर्च के और भी वहुत-से सिद्धातो को समझने मे मेरी सहायता की। उदाहरण के लिए कुमारी मेरी की शिक्षा, चिन्तन, दोष की आत्म-स्वीकृति आदि विषयो को मै पुराने रूढिवादी चर्च के तरीके से उतना नही समझ सकी, जितना उनके दृष्टिकोण की सहायता से।

आत्मा और पदार्थ के एकीकरण के विषय में उनकी शिक्षा, चिन्तन, और प्रार्थना के शात क्षणो के प्रति उनका आग्रह, उनकी विनम्रता आदि ऐसी सहायताएँ है, जिन्हें हमने इस सत से प्राप्त किया है और जिनमे व्यक्तिगत रूप से एक न होने पर भी, हम उनसे अच्छी तरह परिचित है। उनके लेख और उनकी वातें हमारे लिए इतनी ममता और सच्चाई से भरी है कि प्रत्येक व्यक्ति को पढते समय ऐसा लगता है, मानो वे उससे वाते कर रहे हो। हर व्यक्ति यह आसानी से जान सकता था कि कठिन समस्या सामने आने पर वे किस तरह की सलाह देगे।

हममें से वहुतो के लिए वे ईसा की व्याख्या के मूर्त्त रूप थे, और उनकी जिन्दगी के तरीके के प्रति जो कृतज्ञता हम अनुभव करते है, मुझे विश्वास है कि वह व्यक्तिगत रूप से हम सवको उस ईश्वरीय ज्ञान के प्रयत्न की दिशा मे आगे वढने मे सहायता देगी, जो हमारे काम मे, हमारी राजनीति मे एव हमारे व्यक्तिगत सवधो में सदा लक्षित होता है।

उनकी मृत्यु गुजर जाना नही है, वल्कि आगे वढ जाना है। वे उसी रास्ते पर आगे वढ ही रहे है, जिसपर चलकर सतो ने हमारी जीवन-यात्रा को अधिक व्यवस्थित और एक अच्छी दिशा की ओर जाने के योग्य वनाया था। जो उनके मित्र थे, आज भी अपनी अच्छाइयो मे उनकी झलक देखते है, और हम पापियो और झगडालुओ को अपने उदाहरण और अपने ज्योतिर्मय प्रकाश से वे आज भी सहायता दे रहे है।

: १७ :

गांधीजी की संसार को देन

रॉय वाकर

वस्तुओ को देखने का शायद हमारा विचित्र तरीका है। जब हम किसी हिन्दुस्तानी और अग्रेज को साथ-साथ देखते है तो सबसे पहले उनके शरीर और रग का भेद हमारे सामने आता है और सबसे अत मे मानसिक और भावना-सबधी प्रतिक्रिया में निहित तात्त्विक एकता, जिसकी कि पुष्टि एक अति अनुभवी द्रष्टा, लार्ड पेथिक लारेन्स ने की है, ठीक यही अवस्था भारतीय और पश्चिमी सस्कृति के विषय मे है। हमारे नजदीक पहले उनका भेद आता है, और अक्सर हम उस गहराई तक जाने की कोशिश नही करते, जहा अन्तर्दृष्टि और आकाक्षा का गठबधन पाया जाता है। फिर भी सस्कृति की भाषा से तुलना की जा सकती है। मानव-इतिहास के एक निश्चित युग में कुछ लोगो या कुछ जातियो के लिए यह आदान-प्रदान का एक सहज साधन रही है और भाषा की विचार पर प्रतिक्रिया होती है, जिससे कि उसकी अधिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति हो सके। इसलिए यह व्यापक रूप से सत्य है कि दुनिया की तमाम भाषाएँ महत्वपूर्ण सत्यो की अभिव्यक्ति के साधन उपलब्ध करती है। हमारे युग की सबसे बडी आवश्यकता एक ऐसे भाषा-शास्त्री की है, जिसे कि सास्कृतिक दृष्टि से बहुभाषी कहा जा सके , जो केवल पाडित्यपूर्ण न हो, वरन् जिनके अन्दर पूर्व और पश्चिम को एक दूसरे के सामने दुभाषिये के समान रखने की सूक्ष्म दृष्टि हो।

योही कालान्तर से परम्पराओ के पारस्परिक सघर्ष में भिन्नत्व खत्म हो रहा है। इसी बात को हम इस तरह रख सकते है कि बगीचे के सभी फूलो मे एक अपना सौदर्य है, लेकिन माली खोज करके सभी फूलो की एक ऐसी कलम तैयार करे, जिससे वास्तव मे एक सुदर फूल तैयार हो सके। अधिक स्पष्ट रूप करने के लिए कह सकते है कि विभिन्न फूलो को खत्म करने के लिए एक नया फूल तैयार करें। बड़ा खतरा हठधर्मी से भरी सास्कृतिक प्रातीयता मे है, जिसका गौरव रूढिवादी रस्मो और विश्वासो तक ही सीमित है और जिसे मानने वाले समझते है कि उनकी विशेष सभ्यता ही "सबसे अच्छी" है और वह भी केवल उनके लिए नही, वरन् प्रत्येक व्यक्ति के लिए। पश्चिम मे तो यह आम दोष है। महात्मा गान्धी के विश्व-

सदेश का खुले दिल से स्वागत करने के बजाय उसका विरोध करने की भावना वहा बहुत तीव्र है। "सदेश प्रचार की बात हिन्दुस्तान मे अधिक सफल हो सकती है", लोग कहेगे, "लेकिन इसे फैलते हुए वे यहा नही देख रहे है।" अथवा "अग्रेजो पर अहिसा का प्रयोग इसलिए सफल हुआ, क्योकि हम लोग अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु और न्यायप्रिय जाति है। यही प्रयोग नाजियो के विरुद्ध अथवा सामूहिक विनाश के अणु बम सरीखे हथियारो के खिलाफ काम में नही लाया जा सकता है।"

इसपर भी गाधीजी इतने पूर्व के नही है, जितने विश्व के। उनका दर्शन और ढग-ढाचा निश्चित रूप से मानवमात्र के उपयुक्त है, क्योकि सास्कृतिक, सामाजिक और शैल्पिक भिन्नताएँ जहा जीवन मे निर्णयात्मक महत्व रखती हैं, वही उनकी अपेक्षा उनके कार्य का धरातल अधिक गहरा होता है। गाधीवादी शातिवाद को केवल उनके हिन्दुस्तानी होने के कारण असगत मानना ठीक वैसी ही बात है, जैसी कि मार्क्सवाद का केवल मार्क्स के जर्मन होने के नाते विरोध करना। पाच प्रश्न बिल्कुल साफ है, परन्तु उन्हें बहुत कम पूछा गया है। यह प्रश्न निर्णय करेगे कि गाधीवादी उदाहरण का विश्व-महत्व है अथवा नही :

१. गाधीजी की मान्यताओ का क्या आधार है ?

२. वे मान्यताएँ क्या थी ?

३ हिन्दुस्तान के बाहर दुनिया के बारे मे गाधीजी को क्या कहना था ?

४ उचित राय की कसौटी क्या है ?

५. व्यक्तिगत चेतना की क्या प्रतिक्रिया होती है ?

मै यह बताने की कोशिश करूँगा कि इन प्रश्नो के उत्तर किस दिशा में खोजे जा सकते है।

गाधीजी एक हिन्दू थे, लेकिन उनकी स्थिति के लिए यह जरूरी था। "हालाकि धर्म बहुत-से है, परन्तु सत्य धर्म एक ही है।" "मेरा हिन्दू धर्म पथवादी नही है। जहातक मै जा सकता हूँ, इसके भीतर इस्लाम के, ईसाई धर्म के, बौद्ध धर्म के और यहूदी धर्म के सभी श्रेष्ठ तत्त्व उपस्थित है।" इसलिए यह कहना कि महात्माजी के जीवन पर 'नये टेस्टामेट' 'बाइबिल' और अन्य धार्मिक पुस्तको का गौण प्रभाव पडा है, गलत है। साहित्यिक दृष्टि से तीन अन्य रचनात्मक प्रभाव उनके जीवन पर पडे है टाल्स्टाय का ईसाई शातिवाद, जिसकी व्याख्या उन्होने "दी किंगडम आफ गाड विदिन यू" (तुम्हारे भीतर ईश्वरीय राज्य) मे की है ; रस्किन द्वारा लिखित 'अन-टू दि लास्ट' में उल्लिखित काल्पनिक साम्यवाद का, और सविनय

अवज्ञा पर लिखे गये थॉरो के निबधो में वर्णित रहस्यवादी अराजकतावाद, जिसने गाधीजी को केवल नाम ही नही दिया, वरन् सीधी चोट करने वाला यह प्रभावशाली अहिंसक तरीका भी दिया। यह एक ऐसा तथ्य है, जिसका महत्व दुनिया के मौजूदा सकट से और वढ जाता है। इस महान् भारतीय पर तीन आधुनिक प्रभाव डालने वालो में एक रूसी, एक अग्रेज और एक अमरीकी था। इसके अलावा गाधीजी का विकास हिन्दुस्तान मे नही, लदन और अफ्रीका मे हुआ था। लदन में ही प्रथम वार उन्होने अपने मित्र सर एडविन एरनाल्ड द्वारा अनुवादित गीता अग्रेजी छदो में पढी और वही माता को दिये गए वचन के कारण शाकाहारी होने की अपनी प्रतिज्ञा को अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त छोडने का विचार रखने वाला विचार छोड़ एक नया सिद्धान्त—व्यक्ति सिद्धात और चुनाव से शाकाहारी वनता है—स्वीकार किया और यह रूपान्तर उनमें हेनरी साल्ट द्वारा लिखित 'प्ली फार वेजीटेरियनिज्म' (शाकाहार के पक्ष में) एवं अन्य शाकाहारी पुस्तको को पढने और लदन की शाकाहारी सोसायटी के ससर्ग के कारण हुआ। इस शाकाहारी सोसायटी की कार्यकारिणी मे वे स्वय रहे थे और इसके साप्ताहिक पत्र मे ही उनकी प्रथम प्रकाशित रचना सन् १८९१ में निकली थी। दक्षिण-अफ्रीका में भारतीयो के अधिकार के लिए चलने वाले लबे सघर्ष के समय में ही, जोकि कुछ समय के लिए प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के पूर्व ही रुका था—उनके विचार परिपक्व हुए थे और उस छोटी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' के वाद, जो कि सन् १९०९ में प्रकाशित हुई थी, और जिसे उन्होंने दक्षिण-अफ्रीका की वापसी यात्रा के समय लिखा था, तत्त्वत और कोई नई वात नही हुई। गाधीजी के अधिकाश सघर्ष यूरोपीय, विशेषकर अग्रेजी विरोधियो के खिलाफ थे। केवल इसी वात से वे पश्चिमी जगत के लिए वहुत सगत प्रतीत होते है, क्योकि इससे सघर्ष के हल में अहिंसक उपायो के प्रति पश्चिमी राजनीतिज्ञो एव लोगो की प्रतिक्रिया का पता लग जाता है।

यहा गाधीजी के दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन नही करना है, लेकिन उनकी यह मान्यता कि "धर्म एक ही है", वडी वुनियादी वात है। "मै राजनीति में उसी सीमा तक प्रवेश करता हूँ, जहातक वह मेरी धार्मिक प्रवृत्ति के विकास में सहायक है", ऐसा गाधीजी ने स्वय कहा है और आध्यात्मिक तत्त्व के कारण ही उनके राजनैतिक निर्णय न्यायपूर्ण है—केवल विषय की उपयोगिता के कारण नही। उनका यह आध्यात्मिक तत्त्व विश्व-व्यापी उपयोगिता रखता है। किसी निर्णय विशेष के आत्मिक महत्व को समझने के लिए सघर्ष की परिस्थितियो का अध्ययन

करना आवश्यक होगा। यदि एक बार देख लिया गया, तो सारभूत मानवीय दृष्टि-कोण को पहचानकर उसे पलटा भी जा सकता है। 'एक दक्ष राजनीतिज्ञ' के रूप में गाधीजी की आलोचना, जिसमें तत्वत व्यापक मानवीय समस्याओ के हित की सगति का अभाव हो, और जो सत और पार्टी-नेता का मिश्रण-मात्र हो, बिल्कुल गलत है। निस्सदेह गाधीजी के बहुत-से निर्णय—असहयोग आन्दोलन को रोकने से लेकर जो कि धीरे-धीरे सविनय अवज्ञा की ओर बढ रहा था, बंगाल के गावो मे काम करने के लिए उस समय चले जाने तक जबकि दिल्ली मे केबिनेट मिशन के साथ हिन्दुस्तान के भाग्य का फैसला हो रहा था—ऐसे निर्णय है, जिन्हे केवल राजनैतिक औचित्य के विचार से नही समझा जा सकता है। गाधीजी विलियम ब्लैक के मत को स्वीकार कर सकते थे—"धर्म राजनीति है और राजनीति एक भाईचारा।"

हिन्दुस्तान से बाहर की दुनिया के लिए और खास तौर से पश्चिम के सबध में कही गई गाधीजी की बातो को पढकर विल्कुल सदेह नही रहता कि उनकी मान्यताएँ और विश्वास दूसरी सभ्यताओ के लिए लेशमात्र भी असगत थी। यह समझना बहुत जरूरी है कि उनका स्वदेशी का सिद्धान्त, अथवा एकदम उपस्थित वातावरण पर निर्भर रहना और उसके भीतर काम करना ऐसा अनुशासन था, जिसने उन्हें उनके सार्वजनिक जीवन के अधिकाश भाग मे केवल हिन्दुस्तान के विषयो तक ही राय और कार्य करने के लिए सीमित कर रखा था, परन्तु ऐसा करते हुए भी उन्होने व्यापक विश्व को हमेशा अपने सामने रखा। अपनी मृत्यु से चन्द महीनो पहले उन्होने 'हरिजन' में जो कुछ लिखा था, वह प्रारम्भिक २० वर्षों मे लिखे गये 'यग इडिया' के लेखो से विल्कुल भिन्न नही था। "एशियन कान्फ्रेस के मौके पर मैने कहा था कि मुझे आशा है कि भारत की अहिंसा की सुगध समस्त ससार में फैल जायगी। मुझे प्राय आश्चर्य होता है कि क्या यह आशा साकार हो सकेगी?" सन् १९३१ में अपने इगलैण्ड-भ्रमण के समय आशिक कार्य-पद्धति (Dole System) के प्रश्न पर अग्रेजी बेरोजगारो को उन्होने असहयोग की सलाह दी थी और हिन्दुस्तान लौटते समय स्वीजरलैण्ड में पेरी सेरीसोल से कहा था कि "यूरोप निवासी अहिंसक कार्य के योग्य है, लेकिन जिस तरह के नेतृत्व की समय को आज आवश्यकता है, उसकी यहा कमी है।" वाद मे मध्य यूरोप के यहूदियो को नाजी जुल्म के विरुद्ध उन्होने सामूहिक अहिंसा की सलाह दी थी। सन् १९३९ मे उन्होने जेकोस्लाविया को जर्मन आक्रमण के विरुद्ध अपनी आजादी की रक्षा अहिंसक उपायो से करने की

सलाह दी थी और बाद में उसी वर्ष पेत्रेवस्की की अपील पर उन्होने पोलैण्ड के सामने वही सुझाव रखे थे। सन् १९४० में युद्धरत इगलैण्ड से एक अपील की थी, जिसमे उससे यह कहा गया था कि न्याय के लिए वह शस्त्रयुद्ध के स्थान पर अहिंसक सघर्ष को अपनावे। सानफ्रासिस्को मे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के हेतु इकट्ठी होनेवाली बडी ताकतो से जो अपील उन्होने की थी, उसका सार और अणु बम का उनका एकमात्र उत्तर अहिंसा था। निस्सदेह गाधीजी अपने विश्वासो को एशिया की सीमा तक ही सीमित नही मानते थे।

पर क्या उनका यह विचार ठीक था ? थोडे दिन पहले 'टाइम्स' के 'लिटरेरी सप्लीमेंट' ने श्री राधाकृष्णन् द्वारा की गई अहिसा की समीक्षा पर टीका करते हुए लिखा था, "इस बात मे हम निश्चित ही पूर्व से कुछ सीख सकते है ..." आल्डस हक्सले ने अपने 'साइस, लिबर्टी एण्ड पीस' (विज्ञान, स्वतत्रता और शाति) नामक निबधो मे गाधीजी के प्रति धारण किये गए अपने मौन का सुधार किया है और इसमे उन लोगो को भी जवाब दिया है, "जो यह सोचते है कि गाधीजी के कार्यों का औद्योगिक पश्चिम की ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक स्थिति के सामने उल्लेख करना असगत है।" और साथ ही उन्होने यह भी घोषणा की है, "आगे आने वाले दिनो में यह बहुत संभव है कि पश्चिम मे यही सत्याग्रह अपनी जडे जमा ले।" डा. गोपीनाथ धावन ने 'दी पोलीटिकल फिलास्फी ऑव महात्मा गाधी' (१९४६) (महात्मा गाधी का राजनैतिक दर्शन) नामक पुस्तक मे यह मत व्यक्त किया है, "राजनैतिक व्यवहार और राजनैतिक विचार के क्षेत्र में हिन्दुस्तान की यह सर्वदा मौलिक देन है।" "व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा सामुदायिक सबधो में आजकल सघर्ष और हिंसा का पुराना रोग हो गया है और आज तो सभ्य जीवन के अस्तित्व को ही इस बात से खतरा उत्पन्न हो गया है। सत्याग्रह के द्वारा गाधीजी ने दुनिया को अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमण और शोषण के क्षेत्र में रचनात्मक प्रकार से लडने की एक पद्धति दी है।" एक ऐसे मनुष्य के जीवन और उद्देश्यो को समझने के लिए, जो हर नाप से भी इस युग की दुनिया के महापुरुषो मे से एक था, और जो मेरी कसौटी के हिसाब से तो महान्तम था, मूल्याकन और चर्चा, ये दो महत्वपूर्ण पद्धतिया है, परन्तु जिस भयकर और शानदार तरीके से उनकी मृत्यु हुई है, उससे तो उनके शब्द हमारे दिलो मे अधिक सच्चाई और गहराई के साथ प्रवेश कर गए है और उनकी व्यावहारिक ताकत भी बढ गई है। "भावात्मक सत्य का उस समय तक कोई मूल्य नही है जबतक कि इसका प्रचार करनेवाले व्यक्तियो के भीतर

यह स्वय स्थान न कर ले और वे स्वय इसके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार न हो जायें।" अबतक पश्चिम मे केवल चन्द प्रतिभाशाली योग्य व्यक्तियो के निजी जीवन में ही नही, वरन् हमारे युग के ऐतिहासिक सघर्षो मे, अहिंसा का यह सत्य किस सीमा तक सफलतापूर्वक लोगो के हृदयो मे स्थान पा सका है ? मेरे विचार से इसमे कोई सदेह नही कि इसका सबसे ज्वलत उदाहरण हमे नारवे के लोगो के उस शानदार प्रतिरोध मे मिलता है, जोकि उन्होने क्विसलिंग-सत्ता और जर्मनी की अधिकार करने वाली सेनाओ के विरुद्ध सन् १९४०-४५ में किया था। निस्सदेह यह प्रतिरोध सर्वप्रथम एक छोटे सैनिक सघर्ष से शुरू हुआ था और बाद मे बाहरी ताकतो द्वारा सगठित तोड-फोड और आतकवाद भी इसके साथ मिल गए थे। फिर भी, गाधीजी के मूल्याकन सबधी मेरे लेखो में ही नही, वरन् पार्लियामेंट के एक अशातिवादी सदस्य श्री विलियम वारबे ने अपने विशाल ग्रथ में यह स्वीकार किया है कि यह प्रतिरोध प्रधानतया अहिंसक था और इसे काफी सफलता भी मिली थी।

मेरे पाच प्रश्नो मे से अतिम प्रश्न था, नैतिकता का क्या असर होता है ? एक प्रकार से सब प्रश्नो से यह अधिक महत्वपूर्ण है। गाधीजी हमेशा हमारी टीकाओ, भाष्यो और समर्थनो से घिरे रहे हैं और साथ ही हमारी प्रशसाओ से ढके रहे है। हमारा उद्देश्य अच्छा है, लेकिन फिर भी हम आपके और व्यक्ति के बीच आ ही जाते है और यह बात अच्छी नही है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप स्वय उसकी खोज करे, जो गाधीजी ने लिखा है। गाधीजी पर सी एफ एन्ड्रूज अथवा अन्य व्यक्तियो के द्वारा प्रकट किये गए विचार उपलब्ध है। उन पुस्तको के कुछ पृष्ठ पढते ही आप यह जान जायगे कि जिस व्यक्ति के मस्तिष्क और व्यक्तित्व की आप खोज करने निकले है, उसके अन्दर सीधे और सहज तरीके से हमारे भीतर उप-स्थित मानवता से बात करने का एक दैवी गुण था और वह गुण केवल साहित्यिक नही था। अपने इसी अपूर्व गुण के कारण वे दुनिया की सर्वमान्य हस्ती बने। पश्चिम में अहिसा की शक्ति को थपथपाने की बहुत चर्चा हुई है, जिसमें अधिकाश चर्चा रूढि और अन्ध-विश्वासो से भरी है। बहुत कम राजनीतिज्ञो और धार्मिक नेताओ ने यह समझने की चिन्ता की है कि गाधीजी की असली ताकत मानव-स्वभाव के श्रेष्ठतम अश से अपील कर सकने की क्षमता में निहित थी। सामान्य लोगो का यह अटूट विश्वास था कि गाधीजी ने युद्ध का हमेशा के लिए त्याग कर दिया है और अहिसा उनका सर्वकालीन धर्म है। इसी अटूट विश्वास के कारण वे अपने

कार्यों में लोगो का समर्थन प्राप्त कर सके थे। आज एक ओर अणु वम और कीटाणु वम सभी को महाविनाश से भयभीत कर रहे है और दूसरी ओर रक्षात्मक युद्ध का आखिरी निशान तक हमेशा के लिए ओझल हो गया है—ऐसे तेजी से गुजरने वाले जमाने मे दुनिया पूर्व और पश्चिम मे ऐसे आध्यात्मिक और राजनैतिक नेताओ की प्रतीक्षा कर रही है जो गाधीजी से अहिंसा की उस अनिवार्य शर्त को सीखने की कोशिश करे, जिसपर मानव-जाति के अक्षुण्ण हित और भलाई के शब्द खुदे है।

: १८ :

वह पुरुष !

एलबर्ट आइन्सटीन

गाधीजी अपनी जनता के ऐसे नेता थे, जिसे किसी वाह्य सत्ता की सहायता प्राप्त नही थी। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिसकी सफलता न चालाकी पर आधारित थी और न किसी शिल्पिक उपायो के ज्ञान पर, वल्कि मात्र उनके व्यक्तित्व की दूसरो को कायल कर देने की शक्ति पर ही आधारित थी। वे एक ऐसे विजयी योद्धा थे, जिसने बल-प्रयोग का सदा उपहास किया। वे बुद्धिमान, नम्र, दृढ-सकल्पी और अडिग निश्चय के व्यक्ति थे। उन्होने अपनी सारी ताकत अपने देशवासियो को उठाने और उनकी दशा सुधारने में लगा दी। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिसने यूरोप की पाशविकता का सामना सामान्य मानवी यत्न के साथ किया और इस प्रकार सदा के लिए सबसे ऊँचे उठ गए।

आने वाली पीढिया शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेगी कि गाधीजी जैसा हाड-मास का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा।

: १९ :

अहिंसा के दूत

माउण्टवेटन

महात्मा गाधी की मृत्यु सभ्य ससार के हर कोने मे करोडो व्यक्तियो के लिए एक व्यक्तिगत सदमे की तरह ही थी। सिर्फ उन लोगो को ही नही, जो उनके जीवन

भर उनके साथ काम करते रहे, या मेरे जैसे लोगो को, जो उन्हे अपेक्षाकृत कम समय से जानते थे, बल्कि उन लोगो को भी जो उनसे कभी नही मिले, जिन्होने कभी उनके दर्शन नही किये थे और जिन्होने उनकी प्रकाशित पुस्तको का एक शब्द भी नही पढा था, ऐसा लगा, मानो उनका कोई मित्र बिछुड गया हो।

जिस सबोधन के साथ वह मुझे पत्र लिखा करते थे, वह था, "प्रिय मित्र", और मै भी इसी सबोधन के साथ उन्हे उत्तर दिया करता था क्योकि स्पष्टत उन्हे सबोधित करने का यही सबसे ठीक तरीका था और मै और मेरा परिवार सदा इसी प्रकार उनके बारे मे सोचेगा।

मै गाधीजी से पहली बार सन् १९४७ के मार्च के महीने में मिला था, क्योकि भारत पहुँचते ही मेरा पहला काम यह था कि मै उन्हे पत्र लिखू और इस बात का सुझाव दू कि हम जल्दी-से-जल्दी मिले—और अपनी इस पहली मुलाकात मे हमने यह निश्चय कर लिया कि आगे आने वाली महान् समस्याओ का सामना करने में एक-दूसरे की सहायता करने का सर्वोत्तम तरीका व्यक्तिगत सबध है, जिसे लगातार कायम रखा जाय। एक महीना हुआ कि वे उस प्रार्थना-सभा के बाद, जिसमें उन्होने यह घोषणा की थी कि यदि साप्रदायिक एकता पुनस्स्थापित न हुई तो वे आमरण अनशन कर देगे, मुझसे मिलने के लिए आये। उनके जीवन मे अतिम बार मै उनसे तब मिला, जब मै और मेरी पत्नी उनके अनशन के चौथे दिन उनके दर्शन करने गए। हमारी पारस्परिक जान-पहचान के इन दस महीनो मे हमारी मुलाकातें कभी औपचारिक भेट की तरह नही हुई—वे दो मित्रो की बातचीतें थी—और हम लोग विश्वास और समझ की एक सीमा प्राप्त कर चुके थे, जो सदा एक चिरस्मरणीय सस्मरण रहेगी।

शातिपुरुष, अहिंसा के दूत, गाधीजी धर्माधता के विरुद्ध—जिसने भारत की नवार्जित स्वाधीनता के लिए खतरा पैदा कर दिया है—सघर्ष में हिंसा द्वारा शहीद की भाँति मरे। वे इस बात को समझ चुके थे कि राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य को हाथ मे लेने से पहले इस कोढ को मिटाना होगा।

हमारे महान् प्रधान मत्री, पडित नेहरू ने हमारे सामने एक लोकतात्रिक, धर्मनिरपेक्ष राज्य का लक्ष्य रखा है, जिसमे सभी लोग उपयोगी और सृजनात्मक जीवन बसर कर सकेंगे, जिसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित सही मानो में प्रगतिशील समाज का विकास हो सकता है। गाधीजी की स्मृति मे हमारी सर्वोत्तम श्रद्धाजलि यही है कि हम अपने दिलो-दिमाग और शरीर को स्वाधीनता की

नीव पर खड़े ऐसे समाज के निर्माण मे लगा दें, जिसे अपने जीवन-काल मे उन्होंने इतना पुख्ता कर दिया था। आज ही यदि गाधीजी की दर्दनाक मृत्यु से हम अपने पारस्परिक मतभेद भूल जायं और सतत तथा सगठित प्रयास मे लग जाय तो यह गाधीजी की अपने देशवासियो के लिए, जिन्हे वे इतना प्यार करते थे, अतिम और सबसे महान् सेवा होगी। केवल इसी प्रकार उनके आदर्शो को प्राप्त किया जा सकता है और भारत अपनी विरासत को पूरी तरह हासिल कर सकता है।

: २० :

प्रेम और शांति के दूत

हॉरेस अलैक्जेण्डर

महापुरुषो का देहावसान उनके पीछे रहे लोगो के लिए हमेशा दु ख की वात होती है। लेकिन महात्मा गाधी की मृत्यु पर हमारा शोक कही वढकर है—केवल उस आदर्श के लिए नही, जिसके कि वे प्रतीक थे, वल्कि इसलिए कि जिस प्रकार उन्होंने अपने प्राण त्यागे, वह वहुत दर्दनाक था। सत्य, प्रेम और अहिंसा के दूत की हत्या अपने ही एक देशवासी के हाथो हो, यह नि सदेह इस वात का सबूत है कि देश में ऐसे तत्त्व मौजूद है, जिन्होने उनकी शिक्षाओ को अगीकार नही किया है। पिछले डेढ वर्ष में हमारे देश मे घटने वाली घटनाएँ इस बात की साक्षी देंगी कि हम उस आदर्श पर दृढ रहने मे असमर्थ रहे है, जिसके लिए हमारे महान् शिक्षक एक चौथाई शताब्दी से भी अधिक काल से हमसे कह रहे थे।

एक ऐसे विश्व मे, जहा नूतनतम वैज्ञानिक खोज जनता को हानि पहुँचाने की सभावनाओ से परिपूर्ण है, गाधीजी परमाणु शक्ति के श्रेष्ठतम स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होने ससार को यह दिखा दिया कि किस प्रकार अहिंसा-पथ की अनुगामिनी एक निरस्त्र जाति भयानक हिंसा के मुकावले मे भी अपनी आजादी प्राप्त कर सकती है। उनके नेतृत्व मे भारतीय जनता ने राजनैतिक स्वतत्रता के लिए सफलतापूर्वक जो सघर्ष चलाया, वह अपने लगभग सपूर्णत अहिंसात्मक स्वरूप के लिए सदा विश्व-इतिहास के श्रेष्ठतम अध्यायो मे रहेगा। लेकिन खुद गाधीजी के लिए राजनैतिक स्वतत्रता को प्राप्त करना ही एकमात्र साध्य नही था और हाल के महीनो मे वे भारत में रहने वाली विभिन्न जातियो मे शाति और सद्भावना

कायम करने में लगे हुए थे। यह एक ऐसा आदर्श है, जिसपर वे जीवन भर कायम रहे। यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी कि वे तो समस्त ससार मे शाति रखने के लिए उत्सुक थे, पर स्वाभाविक रूपेण उनकी गतिविधियां भारत तक ही सीमित रहीं।

वास्तव में यह बडी दर्दनाक बात है कि खुद गाधीजी—जिन्होने जीवन भर ऐसे कायरतापूर्ण आक्रमणो से दूसरो के जीवन की रक्षा की—के जीवन का अन्त इतने निर्दयतापूर्ण तरीके से हुआ। लेकिन शायद यह परमेश्वर की इच्छा ही थी कि गाधीजी की इस प्रकार हत्या की जाय, ताकि हम, जो आज उनके वियोग पर शोक कर रहे है, अहिसा और सत्य में उनके विश्वास को ग्रहण कर सकें। गाधीजी की मृत्यु पर खुद-ब-खुद हुए शोक-प्रदर्शनों का इस उद्देश्य के लिए पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए, जो जीवन भर उन्हें इतना प्रिय था। अगर हम, जो गांधीजी के बाद यहा रह गए है, उनके आदर्शों से अपने को प्रेरित नही करते तो ये सारे प्रदर्शन व्यर्थ हो जायगे।

इतिहास में ऐसा दृष्टात ढूढने के लिए हमें अपना ध्यान कोई दो हजार वर्ष पहले की ओर ले जाना होगा, जब ईसामसीह ने प्रेम और शाति के लिए अपने जीवन का बलिदान किया था। ईसा की भाति गाधीजी के बारे में कहा गया है कि गाधीजी ससार में कुछ पहले आ गए थे। यह हम सबका पुनीत कर्तव्य है कि हम संसार को यह सिद्ध करके दिखा दे कि यद्यपि हम पितृहत्या के दोषी है, तथापि हमने अपने इस अपराध के लिए समुचित प्रायश्चित कर लिया है और यद्यपि हमने उनकी बात उनके जीवन में नही सुनी, इस शोणित तर्पण के द्वारा हमने आत्म-शुद्धि कर ली है और अपनेको उनकी विरासत के योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध कर दिया है।

लोग अभी से महात्माजी के लिए समुचित स्मारक स्थापित करने की बात कह रहे है, लेकिन यह स्पष्ट है कि जहा-तहा प्रतिमाये या उद्यान बना देना ऐसे व्यक्ति के लिए उचित स्मारक नहीं हो सकता, जिसने सारे राष्ट्र की उन्नति के लिए और जनता के सभी वर्गों मे सौहार्द भाव को बढाने के लिए सर्वस्व त्याग दिया था। उनके लिए जो एकमात्र समुचित स्मारक हमारे द्वारा स्थापित किया जा सकता है, वह उनके द्वारा छोडे अधूरे काम को पूरा करना है।

आइए, हम इस प्रकार कार्य करने की शपथ ग्रहण करें, जिससे एक नए, बेहतर और शानदार हिन्दुस्तान की नीव पडे, जिसके लिए महात्माजी जिये और मरे।

: २१ :

छोटे, किन्तु महान

पैथिक लॉरेंस

गाधीजी को लोग बहुत ही प्रेम करते थे। उनके लिए उतना ही अधिक वे शोक करेंगे। हाड-मास के व्यक्ति के रूप में वे अब हमारे बीच नही है, लेकिन उनकी आत्मा सदा जीवित रहेगी। पुरुषो और स्त्रियो के दिलो और दिमागो पर उनके इतने प्रभाव का रहस्य क्या था? मेरी राय मे उसका कारण यह था कि उन्होंने स्वेच्छा से उन सब अधिकारो और सुविधाओ का त्याग कर दिया था, जिनका उपभोग वे अपनी पैदाइश, साधन, व्यक्तित्व तथा बौद्धिक ऊँचाई के कारण कर सकते थे। उन्होंने सामान्य व्यक्ति की हैसियत और दु ख-दीनताओ को अगीकार किया।

जबकि वे एक युवक के रूप मे दक्षिण-अफ्रीका में थे और इस देश में अपने देशवासियो के साथ होने वाले व्यवहार का विरोध कर रहे थे, उन्होंने छोटे-से-छोटे भारतीय के साथ होनेवाले अपमान का अपने लिए स्वागत किया था, जिससे कि अवज्ञा के लिए मिलने वाले दड को वे स्वय भुगत सके। जब उन्होंने भारत मे ब्रिटिश-शासन के साथ असहयोग करने को कहा, तो उन्होंने स्वय कानून की अवज्ञा की और उन व्यक्तियो के साथ जेल जाने का आग्रह रक्खा जो सबसे पहले सीखचो के पीछे बन्द हुए थे। जब उन्होंने पश्चिमी औद्योगीकरण का भारत द्वारा अपनाये जाने का विरोध किया तो अपने घर मे स्वय उन्होंने चर्खे को प्रतिष्ठित कर लिया और अपने हाथो से प्रतिदिन उसपर श्रम करने लगे। जब वे साम्प्रदायिक हिंसा का मुकाबला करने को उद्यत हुए तो उन्होंने अपने सम्प्रदाय की, जिसके कि वे स्वय एक सदस्य थे, भूल और पाप के लिए स्वय प्रायश्चित्त के रूप मे अनशन तथा मृत्यु का सामना किया।

उन्होंने कभी भी यह दावा नही किया कि वे किसी भी सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कुछ और है। उन्होंने स्वीकार किया कि भूल उनसे भी हो सकती है और यह भी माना कि अपनी भूलो से उन्होंने प्राय शिक्षा ग्रहण की है। वह सार्वजनीय बन्धु थे, प्रेमी थे और गरीब, दुर्बल, दोषी तथा दुखित मानवता के मित्र थे।

आइये, हम सब उनकी आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करे, केवल शब्दो द्वारा ही नही, बल्कि जैसा कि उन्होंने किया, सत्य की खोज में, साथियो के लिए प्रेम में और राष्ट्रो के घावो को भरने मे अपने जीवन को समर्पित कर दे।

: २२ :

उनका रास्ता

एल० एस० एमरी

हमारे युग का लगभग सारा-का-सारा जोर समाज-सुधार की भौतिक परिकल्पनाओ और युद्ध के तरीको से युद्ध के रोकने की योजनाओ मे लग रहा है। इस बात पर हमारा सदेह पुष्ट होता जा रहा है कि क्या यह तरीके हमे, परमाणु बम से बचा सकेगे या हमारे चारो ओर शाति और सतुष्टि सुनिश्चित कर सकेंगे? क्या ही अच्छा हो कि उस समाज-सुधारक (गाधीजी) की उत्तमतर पद्धति को अपनाया जा सके, जिसने खुद सारे जीवन मे अछूतो के सुख और उनके मानवी मान का प्रचार किया, जो भारत में ब्रिटिश राज्य का विरोधी था, लेकिन इसके बावजूद अग्रेज जाति को भली-भाति पहचानता और प्रेम करता था, जो खुद एक कट्टर हिन्दू था, लेकिन फिर भी जो ईसाइयत और इस्लाम दोनो से बौद्धिक सबध स्थापित करता था, जो शातिवादी था और जिसका यह विश्वास था कि शाति मानवी आत्मा मे युद्ध के प्रति घृणा उत्पन्न करके ही स्थापित की जा सकती है।

: २३ :

अहिंसा के पुजारी

क्लीमेण्ट एटली

गाधीजी की निर्मम हत्या का समाचार हर किसी ने बडे आश्चर्य और घृणा के साथ सुना होगा। मै जानता हूँ कि उनके देशवासियो के प्रति उनके सबसे बडे नागरिक की मृत्यु से हुए शोक मे अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करने में मै ब्रिटिश जनता के विचारो को भी प्रकट कर रहा हूँ। जैसाकि भारत मे लोग उनके बारे में जानते थे, महात्मा गाधी वर्तमान विश्व के सबसे महान् व्यक्तियो मे से एक थे, लेकिन उनके विषय मे ऐसा लगता था मानो वे किसी और युग के प्राणी हो। वे घोर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते थे और उनके करोडो देशवासी उन्हे दैवी-प्रेरणा प्राप्त सत मानते थे। उनका प्रभाव उनके सहधर्मियो के अलावा औरो पर भी था और एक ऐसे देश मे जिसमें साम्प्रदायिक फूट बुरी तरह से फैली हुई थी, उनकी आवाज

सभी हिन्दुस्तानियों पर असर डालती थी। एक चौथाई शताब्दी तक हरएक भारतीय समस्या के समाधान मे यही एक व्यक्ति सबसे वडा तत्त्व माना जाता था। वे भारतीय जनता की स्वतन्त्रता की इच्छा के प्रतीक वन गए थे, तो भी वे कोरे राष्ट्रवादी ही नही थे। उनका सबसे प्रमुख सिद्धात अहिंसा का था। वे उन शक्तियो के, जिनको वे गलत समझते थे, निष्क्रिय प्रतिरोध मे विश्वास करते थे। वे उनका विरोध करते थे, जो हिंसा द्वारा अपना लक्ष्य-साधन करने की कोशिश करते थे और जव कभी भी जैसाकि अक्सर हो भी जाता था, उनके द्वारा चलाये गए स्वाधीनता आन्दोलन में अपने को उनका अनुयायी वताने वालो के अनुशासन-विहीन कृत्यो के कारण जन-हानि हो जाती थी, तो इससे उन्हे वडी वेदना होती थी। लक्ष्य-साधन मे उनकी सचाई और निष्ठा पर अगुली नही उठाई जा सकती। उनके जीवन के अन्तिम दिनो मे, जव साप्रदायिक दगे भारत द्वारा प्राप्त की गई स्वाधीनता को कलकित कर रहे थे, उनके अनशन करने की धमकी से वगाल मे मार-काट बन्द हो गई और उससे वातावरण मे फिर से परिवर्तन आ गया। इसके अतिरिक्त उन्हे अन्याय से घृणा थी और वे निर्धनो और विशेषकर भारत के पिछडे वर्गो के लिए यत्न करते रहते थे। एक हत्यारे के हाथो उनके प्राण चले गए और शाति और भ्रातृत्व का स्वर ऊँचा करने वाली वाणी को इस प्रकार रुद्ध कर दिया, लेकिन मुझे विश्वास है कि उनकी आत्मा अपने देशवासियो को प्ररित करती रहेगी और शाति और मेल की आवाज वुलन्द करती रहेगी।

: २४ :

इतिहास की अमूल्य निधि

फिलिप नोएल बेकर

भाग्य के दुखान्त चक्र ने एक ऐसे महापुरुष को छीन लिया, जिसका न केवल अपने देश में, अपितु सारे ससार मे आदर होता था।

गाधीजी वह व्यक्ति थे, जिनकी महानता केवल उनके जीवन-काल तक ही सीमित नही थी, वल्कि इतिहास की एक अमूल्य निधि है। भारत तथा सारे ससार मे प्रेम और भ्रातृत्व की भावना, जिसके कि वे सवसे वडे प्रवक्ता थे और जिसके लिए वे शहीद तक हो गए, की आवश्यकता पहले उतनी कभी अनुभव नही की

गई थी, जितनी कि आज की जा रही है।

आधी शताब्दी तक उनकी प्रेरणा कारगर रही और शायद पिछले वर्ष में उसकी अभिव्यक्ति सबसे अधिक हुई। उनकी मृत्यु से हमे उस खतरे को समझ लेना चाहिए, जो हम सबके सामने मुह बाये है और जिसका मुकाबिला उन सिद्धान्तो के अनुसरण से किया जाता, जिनपर उनका सारा जीवन आधारित था।

आधुनिक इतिहास मे किसी भी एक व्यक्ति ने अपने चरित्र की वैयक्तिक शक्ति, ध्येय की पावनता और अगीकृत उद्देश्य के प्रति निस्स्वार्थ निष्ठा से लोगो के दिमागो पर इतना असर नही डाला।

मेरा विश्वास है कि दूसरे पैगम्बरो की भाति उनका महान कार्य आगे चलकर सामने आयगा।

: २५ :

उनका बलिदान एक उदाहरण

हैरी एस० ट्रूमैन

गाधीजी भारत के एक महान राष्ट्र-नेता थे। लेकिन साथ ही वह अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी बहुत ऊचे नेता थे। उनकी शिक्षाओ और प्रवृत्तियो का कोटि-कोटि व्यक्तियो पर गहरा असर पडा। भारतवासी उनका बडा आदर करते थे और अब भी करते है। उनका प्रभाव केवल सरकारी मामलो मे ही नही था बल्कि आत्मिक क्षेत्र मे भी था। दुर्भाग्य से वे उन आदर्शो की पूर्ण प्राप्ति अपने जीवनकाल में नही देख सके, जिनके लिए उन्होने सघर्ष किया था, लेकिन उनका जीवन और उनके कार्य युग-युग तक उनका सर्वोत्तम स्मारक रहेंगे।

मुझे विश्वास है कि अपने लोगो के कल्याण के लिए उनका निस्स्वार्थ सघर्ष भारत के नेताओ के लिए उदाहरणस्वरूप होगा। बहुत-से नेता तो उनके ही अनुयायी है।

मै जानता हू कि केवल भारतवासी ही नही, अपितु दूसरे सब लोग भी गाधी-जी के बलिदान से उनमे मूर्तिमान भाईचारे और शाति के लिए अधिक उत्साह और लगन से काम करने के लिए प्रेरित होगे।

मुझे गाधीजी की हत्या के दु खद समाचार से वडी वेदना है और मैं आपको (प्रधान मत्री), सरकार को तथा भारतीय निवासियो को अपनी हार्दिक सम-वेदना भेजता हू।

एक उपदेष्टा और नेता के रूप मे उनके प्रभाव की अनुभूति न केवल भारत में ही हुई है, बल्कि ससार मे हर जगह हुई और उनकी मृत्यु से सारे शातिप्रेमी व्यक्तियो को भारी खेद हुआ है। भाई-चारे और शाति के ध्येय मे एक और महा-पुरुष उठ गया।

मुझे विश्वास है कि उनकी दु खद मृत्यु से एशिया के लोग सहयोग तथा पारस्परिक विश्वास के ध्येय को, जिसके हेतु गाधीजी ने अपने प्राणो की आहुति दी है, प्राप्त करने के लिए अधिक निश्चय के साथ प्रयत्नशील होगे।

: २६ :

उनकी महानता का कारण

मिल्टन मेयर

इस वृद्ध पुरुष की अपनी कोई सपत्ति नही थी और न कोई ओहदा ही था। जीवन का भी उनके लिए कोई मूल्य न था और अपनी मृत्यु के विषय मे भी उन्हें कोई परेशानी न थी। लेकिन दुनिया हिल गई, क्योकि विना थल, जल व वायु की शक्ति के, विना डण्डे अथवा पत्थर के और विना सत्ता अथवा दूसरो की सहायता के उन्होंने एक साम्राज्य को उखाड फेका और चालीस करोड नि शस्त्र व्यक्तियो के देश को स्वतत्रता प्रदान की।

हममे से वहुत-से गोरे लोग मानते थे कि वह एक शेखचिल्ली और निश्चय ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनका असलियत से कोई सवध न था। हमारे युग के शक्ति-शाली व्यक्तियो—रूजवेल्ट, चर्चिल और स्तालिन—की तुलना मे वे अपनी चादर और लगोटी मे असर डालने वाले नही दीखते थे। लेकिन दुर्वलो से ही तो एक वार कहा गया था कि उन्हे दुनिया का राज्य मिलेगा, और अव हर जगह आदमी आश्चर्य करते है कि यह दुर्वलतम व्यक्ति हमारे युग का सवसे शक्तिशाली मनुष्य था। करोडो व्यक्ति विना लाभ अथवा लाभ की सभावना के उनके पद-चिह्नो पर चले, उनके पीछे-पीछे जेल गए, प्रार्थना में पहुचे और उनके साथ कधे-

से-कधा भिडाकर आजादी हासिल की।

ईसा ने कहा था, "यदि मेरा साम्राज्य इस दुनिया का है तो मेरे अनुगामी लडाई मे भाग लेगे।" गाधी का साम्राज्य इसी दुनिया का था और फिर भी उनके अनुयायी लडे नही। गाधी ने धार्मिक आदेश का पालन राजनेता के काम मे किया और मेरा विश्वास है कि इस दृष्टि से हम कह सकते है कि ईसा के वाद वही पहले ईसाई राजनेता थे---वाशिंगटन, जैफरसन और लिंकन भी इसके अपवाद नही ?

शस्त्रो पर आधारित विचारधाराए, जिनमे हमारी विचारधारा भी शामिल है, टिकी नही रह सकती। बल मे विश्वास करने वाले मालिक और कर्मीजन भी विनाश को प्राप्त होते है। यदि ईसा और गाधी की वाणी सही है तो रूजवेल्ट और हिटलर, वैलिस और टैफ्ट, ट्रूमैन और स्तालिन भी सदा खडे नही रह सकते। यदि गाधीजी का कथन सत्य है तो वे सब लोग जो, इस वात मे विश्वास रखते है कि बल, दबाव और सत्ता से उन्हे सफलता प्राप्त होगी, भूल मे है और यद्यपि उनमें से कुछ आदमी बुरे ध्येयो की अपेक्षा अच्छे ध्येयो के लिए शक्ति का उपयोग करते है, तथापि वे सदा गलती पर ही रहेगे।

यदि यह सही है तो उसकी कल्पना बडी ही भयावह है। चर्चिल के विश्व-साम्राज्य और हिटलर की विश्व-दासता का भाग्य हमारी आखो के सामने है। यदि गाधीजी का कथन सही है और अगर मानवता का प्रेम की भावना में विश्वास है तो लोकतत्र और साम्यवाद का बलपूर्वक विनाश ईसाई राजनीतिज्ञ के कथन की सत्यता के आगे काले प्रमाण सिद्ध होगे।

लेकिन इसका अर्थ होता है ऐसी तीव्र क्राति जिसका किसी भी क्रातिकारी ने आजतक सकेत नही किया। इसका अर्थ यह भी है कि अपने वैयक्तिक और राज-नैतिक जीवन-व्यवस्था को हम पूर्णतया बदल दे अथवा कुछ भी न बदलें।

: २७ :

महान क्षति

डी० एच० एम० लाजारस

ब्रिटिश यहूदियो की ओर से मै श्री गाधी के दुखद निधन पर अपनी गहरी समवेदना और शोक-भरे उद्गार भेजना चाहता हू। ऐसे महापुरुष की क्षति की

पूर्ति नही हो सकती, जिसके पावन-चरित्र और शाति के ध्येय के लिए जीवन-व्यापी निष्ठा के कारण उसका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

भारत ने ही नही, सारे ससार ने उनके आदर्शो को देखा। उनकी पूर्ति कठिन अवश्य थी, फिर भी वे ही व्यावहारिक साधन है, जिनसे मानवता के अन्तिम लक्ष्य तक पहुचा जा सकता है और वे लक्ष्य है—सारी जातियो और धर्मो के लोगो के बीच स्थायी शाति और मैत्री की स्थापना।

: २८ :

संसार का एक महान् नेता

एमन डी वेलेरा

हमारा और भारतीय स्वतत्रता-सग्राम अन्तिम अवस्था मे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। हमारे देशवासियो ने अनुभव किया कि एक सामान्य ध्येय की दृष्टि से वे भाई-भाई है और उन्होने मगल कामना की कि भारत के स्वाधीनता-सग्राम मे सफलता प्राप्त हो।

आज भारत के निवासी शोक-मग्न है और हम भी उनके शोक मे सम्मिलित है। उनका एक ऐसा नेता चला गया, जिसने उनके लिए वर्तमान स्वतत्रता प्राप्त की थी। हमारी प्रार्थना है कि उनकी जीवन की आहुति, जिसके द्वारा उन्होने अपने देश को अपनी निष्ठा पूर्णतया प्रदान की, भारतवासियो को वह भ्रातृत्व शाति प्रदान करे, जो उन्हे बहुत प्रिय थी। यह क्षति अकेले भारत की ही क्षति नही है, बल्कि ससार ने एक ऐसा महान नेता खोया है, जिसका प्रभाव उनकी मृत्यु के बाद भी चिरकाल तक बना रहेगा।

: २९ :

बेजोड़ उदाहरण

जॉन हेन्स होम्स

जब हमारे युग के सभी राजाधिराज और सेनापति, जो आज इतना शोर करते है और जीवन के नाटक में जिन्हें इतना प्रमुख स्थान प्राप्त है, वे सब विस्मृति

के गर्भ मे समा चुकेगे, महात्माजी फिर भी गौतम बुद्ध के बाद सबसे बडे भारतीय और ईसा के वाद सबसे बडे मानव के रूप मे जीवित और सम्मानित रहेगे।

गाधीजी ने भारतीय जनता को अपना सग्राम जारी रखने के लिए अस्त्र प्रदान किये। ये ऐसे अस्त्र थे, जिनकी शक्ति अकल्पनीय थी, जो अतिम विजय की गारटी देने वाले थे, और भगवान की कृपा से, गाधीजी ने जीवनकाल मे ही ऐसी विजय प्राप्त कर ली, जिसे वे देख भी सके। मानव-जाति के इतिहास मे गाधीजी का अहिंसात्मक प्रतिरोध का कार्यक्रम अनुपम है। खुद यह सिद्धान्त कि बुरे का नही, बुराई का विरोध करो और अपने शत्रुओ से प्रेम करो, कोई नया नही है। इसकी प्राचीनता कम-से-कम इतनी तो अवश्य है, जितनी कि 'गिरि-प्रवचन' मे नजारथ के ईसा की शिक्षाए। लेकिन गाधीजी ने वह किया जो पहले कभी नही किया गया था। अबतक यह निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धान्त इक्के-दुक्के व्यक्तियो या छोटे-छोटे समूहो तक ही सीमित थे। गाधीजी ने इस विशिष्ट प्रकार के सिद्धान्त के असख्यो मनुष्यो द्वारा प्रयोग मे लाये जाने के लिए अनुशासन और कार्यक्रम का प्रतिपादन किया। दूसरे शब्दो में उन्होने इक्के-दुक्के व्यक्तियो के लिए, या छोटे-छोटे व्यक्ति-समूहो के लिए नही, अपितु एक पूरे राष्ट्र के लिए कार्यक्रम रखा और मै कहता हू कि यह बात मानव-जाति के लिए एकदम नई है।

१५ अगस्त १९४७ को भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के साथ गाधीजी के जीवन के द्वितीय काल के महत्व का सार महान् विद्वान डा. फ्रासिस नीलसन द्वारा लिखित पुस्तक "यूरोप की पीडा" (ट्रेजेडी ऑव यूरोप) के इस अंश को उद्धृत करके आपके सामने उपस्थित करता हू. "गाधीजी अनुपम है। उनकी स्थिति के किसी अन्य व्यक्ति का, जिसने एक महान साम्राज्य को चुनौती दी हो, दूसरा उदाहरण नही मिलता। वे कार्यक्षेत्र मे और बुद्धि में सुकरात के समान थे। उन्होने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिंसा का सहारा लेने वाले राजनीतिज्ञो के तरीको के थोथेपन को विश्व के सामने रखा। इस सघर्ष में आत्मिक सपूर्णता ने राज्य-बल के भौतिक प्रतिरोध पर सफलता पाई।" यही गाधीजी की सफलता थी और यही उनकी विजय। इतिहास में यही उनका स्थान निश्चित करती है।

: ३० :

मानवता के प्राण गांधी

पर्लबक

अमेरिका में पेंसिलवेनिया के निकट देहाती क्षेत्रो में एक गाव है पेरेक्सीर। वही हमारी शातिमयी झोपडी है। ३१ जनवरी को वह दिन पिछले दिनो की तरह ही आरम्भ हुआ। हम सवेरे ही उठने के अभ्यासी है, क्योकि बच्चो को कुछ दूर स्कूल जाना पडता है। नित्य की तरह ही आज हम जलपान के लिए मेज के चारो ओर इकट्ठे हुए और साधारण बातचीत करने लगे। खिडकियो से बाहर घने हिम-पात का दृश्य दिखलाई दे रहा था और आकाश की आभा भूरे रग की हो रही थी। हमारे बच्चो को शका हो रही थी कि कही और अधिक हिम-पात न हो। एका-एक गृहपति कमरे मे आये। उनकी मुखमुद्रा गम्भीर थी। उन्होने कहा, "रेडियो पर अभी एक अत्यन्त भयानक समाचार आया है।"

यह सुनकर हम सब उनकी ओर देखने लगे और तुरन्त ये हृदय-विदारक शब्द सुनाई पडे, "गाधीजी का देहावसान हो गया।"

मेरी इच्छा है कि भारत से हजारो मील दूर स्थित अमेरिका-निवासियो पर गाधीजी की मृत्यु से जो प्रतिक्रिया हुई उसे भारतवासी जानें। हम लोगो ने हृदय को दहला देने वाला यह सवाद सुना। यह साधारण मृत्यु नही है। गाधीजी शाति की प्रतिमूर्ति थे और उन्होने अपना सारा जीवन अपने देश की जनता की सेवा के लिए लगा दिया था। ऐसे शातिप्रिय व्यक्ति की हत्या कर दी गई। मेरे दस वर्ष के छोटे बच्चे की आखो में आसू छलकने लगे और उसने कहा, "मै चाहता हूं कि यदि बन्दूक बनाने का आविष्कार ही न हुआ होता तो बडा अच्छा था।"

हम लोगो मे से किसीने भी गाधीजी को नही देखा था, क्योकि जब हम लोग भारतवर्ष मे थे तब गाधीजी सदा जेल मे ही थे। फिर भी हम सभी उन्हें जानते थे। हमारे बच्चे गाधीजी की आकृति से इतने परिचित थे, मानों गांधीजी स्वय हमारे साथ घर में ही रहते थे। हमारे लिए गांधीजी ससार के इने-गिने महात्माओ में से एक महात्मा थे। पृथ्वी के उन गिने-चुने पीरो में से वे एक थे जो अपने विश्वास पर हिमालय की तरह अटल और दृढ रहते थे। उनके संबंध में हमारी धारणा भी वैसी ही अटल है।

उनकी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद हम परस्पर गाधीजी के जीवन और उनकी मृत्यु से होनेवाले सम्भावित परिणामो के सबध में बातचीत करने लगे।

हमें भारतवर्ष पर गर्व है कि महात्मा गाधी जैसे महान व्यक्ति भारत के अधिवासी थे। पर साथ ही हमें खेद भी है कि भारत के ही एक अधिवासी ने उनकी हत्या की। इस प्रकार दु खी और सन्तप्त हम लोग चुपचाप अपने दैनिक कार्यों में लग गये।

भारतवासी सभवत: यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि हमारे देश मे गाधीजी का यश कितने व्यापक रूप में फैला। मै उनकी मृत्यु के एक घन्टे बाद सडक से होकर कही जा रही थी कि एकाएक एक किसान ने मुझे रोका और पूछा, "संसार का प्रत्येक व्यक्ति सोचता था कि गाधीजी एक उत्तम व्यक्ति थे तो फिर लोगो ने उन्हे मार क्यो डाला?"

मैंने अपना सिर धुना और कुछ बोल न सकी। उसने सकेत से कहा, "जिस तरह लोगो ने महात्मा ईसा को मारा था उसी तरह लोगो ने महात्मा गाधी को मार डाला।"

उस किसान ने ठीक ही कहा था कि महात्मा ईसा की सूली के अतिरिक्त संसार की किसी भी घटना की महात्मा गाधी की गौरवपूर्ण मृत्यु से तुलना नही हो सकती। गाधीजी की मृत्यु उन्हीके देशवासी द्वारा हुई। यह ईसा के सूली पर चढाये जाने के बाद दूसरी ही वैसी घटना है। ससार के वे लोग, जिन्होने गाधीजी को कभी नही देखा था, आज उनकी मृत्यु से शोक-संतप्त हो रहे है। वे ऐसे समय में मरे जब उनका प्रभाव दुनिया के कोने-कोने मे व्याप्त हो चुका था।

कुछ दिनो से अमेरिका-निवासियो में महात्मा गाधी के प्रति बढती हुई श्रद्धा का अनुभव हम कर रहे थे। महात्मा गाधी के प्रति लोगो मे अगाध श्रद्धा थी। महात्मा गाधी के प्रति जनता मे वास्तविक आदर था और हम लोगो को यह प्रतीत होने लगा था कि वे जो कुछ कह रहे थे, वही ठीक था।

आज अपने देश के अति उन्नत सैनिकीकरण के मध्य हमारी दृष्टि गाधीजी की ओर जाती थी और यह प्रतीत होता था कि (युद्ध का नही, बल्कि शाति का) उनका मार्ग ही ठीक है। हमारे समाचार-पत्रो ने गाधीजी की इस नई शक्ति को पहचाना। भारत की इस महान व्यक्ति के कारण अन्य देशो मे प्रतिष्ठा बढी। महात्मा गाधी के नेतृत्व मे होने वाले भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध की ओर हमारी दृष्टि गई, क्योकि उनका ढग राष्ट्रो के बीच के मत-भेदो को शातिपूर्ण ढग से तय करने का था।

मैं चाहती हूं कि भारत के प्रत्येक नर-नारी के हृदय में विश्वास करा दू कि उनके देश को अब अन्य देशवासी क्या समझते हैं। आज भारत केवल भारत ही नही है, वरन् वह ससार की मानव-जाति का प्रतीक है। चर्चिल और उनके समान अन्य व्यक्ति हमें बताते रहे कि यह आवश्यक नही है कि दुनिया के सभी लोग स्वतत्र हो। इन लोगो का कहना है कि जगत को यह जान लेना चाहिए कि कुछ थोड़े बलवान और शक्तिशाली व्यक्ति ही विश्व पर शासन कर सकते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि कोई-न-कोई शासक तो अवश्य ही होगा और यदि हम स्वय शासित होना नही चाहते हैं तो हमें शासक होना चाहिए। लेकिन हम इस बात पर विश्वास नही करते। हम तो ऐसे ससार की कल्पना कर रहे हैं, जिसमें जनता स्वय अपना शासन चलाने के लिए स्वतत्र रहे। हमारे लिए उस काल्पनिक ससार का प्रतीक भारतवर्ष है। हम प्रतिदिन भारतीय समाचारों के लिए समाचार-पत्रो को बडी उत्कण्ठा से आखे फाड-फाड कर देखते हैं। श्री चर्चिल ने जिस 'रक्त-स्नान' की धमकी दी थी, वस्तुत क्या वह घटना सत्य होगी ? क्या यह सत्य है कि लोग अपने मत-भेदो को शाति से न मिटा सकेगे ? क्या युद्ध सदा होते रहेगे ?

हम सभी लोगो के लिए, जिनकी धारणा थी कि जनता पर विश्वास करना चाहिए, गाधीजी आशा के केन्द्र थे। यह बात नही है कि हम उस क्षीणकाय चश्मे वाले गाधी को भावुकता में आकर कोई देवता समझ बैठे थे, बल्कि हमारा यह विश्वास था और हम आशा करते थे कि गाधीजी ने मानव-जीवन के मौलिक सत्य को प्राप्त कर लिया था। उनकी मृत्यु पराजय है या विजय ? इसका उत्तर भविष्य में भारतवासी विश्व को अपनी भावी गतिविधि से देगे।

उन लोगो मे, जो समझते थे कि गाधीजी सत्य पथ पर थे, यदि उनकी मृत्यु से नई जाग्रति, नई चेतना और नया सकल्प उत्पन्न हो सके तो यह हमारे और भारत के लिए समान रूप से लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि हम मानवता मे विश्वास करते हैं। यदि उनकी मृत्यु से हम निराश और पराजित हो जाय तो निश्चय ही ससार की मानवता पराजित हो जायगी।

अमेरिका मे गाधीजी की मृत्यु का समाचार धक्के की तरह लगा और कुछ क्षणो के लिए लोग स्तब्ध रह गये। लोग एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देखने लगे। नेहरूजी अभी जीवित हैं। अब ऐसी दुर्घटना न घटेगी। केवल यही नही कि पश्चिमी जगत भारत के किसी और व्यक्ति की अपेक्षा नेहरू को अधिक जानता है, बल्कि वह नेहरू की बुद्धिमत्ता, योग्यता और धैर्य पर विश्वास भी करता है। भारत मे

इतना वर्ग-भेद नही हो जायगा, जिससे निराशा और पराजय के कारण लोग नेहरू को पदच्युत कर दे। यदि ऐसा हुआ तो भारत की बडी हानि होगी और वह पश्चिम जगत की दृष्टि मे नितान्त गिर जायगा।

बुद्धिमान भारतीय ऐसी गलती करने से पूर्व अच्छी तरह सोचेगे। मैं न केवल एक साधारण अमेरिकन की दृष्टि से यह कह रही हू, बल्कि भारत के सबध मे जो कुछ भी जानती हू कि भारत अपने लिए क्या करना चाहता है तथा नेता के रूप मे ससार के लिए क्या कर सकता है, इस दृष्टि से मेरे उक्त विचार है।

भारत का भाग्य अधर मे दोलायमान हो रहा है। भारतीय अपने वर्गभेद की भावना को मिटाकर अपने विशाल हृदय, सत्यनिष्ठ नेताओ के आदेश पर चले और सकुचित विचार वाले उन्नति मे बाधक नेताओ से बचे, तभी उनका कल्याण होगा।

: ३१ :

मानवता का पुजारी

हेनरी एस० एल० पोलक

टाल्स्टाय के बाद ही इतनी जल्दी जिस जमाने ने एक दूसरा महान 'मानवता का पुजारी' पैदा किया है, उसमे रहना कितना अच्छा है। अहा! ये साधु-सन्त, ये पैगम्बर और भक्तगण किस प्रकार वातावरण को स्वच्छ निर्मल बनाते है और आसपास फैले हुए 'सघन तिमिर' में प्रकाश चमकाते है।

ओलिव श्रीनर ने अपने एक गद्य-काव्य मे 'सत्यरूपी पक्षी' की खोज मे प्रयत्नशील साधक का एक चित्र खीचा है। उसे उस पक्षी की झलक एक वार दिखाई दी। उसकी तलाश मे वह पर्वत-शिखर पहुचता है, जहा जाकर उसका शरीर छूट जाता है। उसके हाथ में उस पक्षी का गिरा हुआ एक पख है, जिसे छाती पर चिपकाए हुए वह सोया है। गाधीजी अपने जीवन-काल मे जो सन्देश हमारे लिए छोड रहे है, वह हमारे लिए ऐसा ही एक पंख सिद्ध हो और हम सचमुच बडभागी होगे, अगर अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी छाती से लगाए और अपनाए रहेंगे।

: ३२ :

सबसे महान् व्यक्तित्व

रेजिनाल्ड सोरेन्सन

लेनिन और महात्मा गाधी को मै विश्व मे बीसवी शताब्दी का सबसे महान् व्यक्तित्व मानता हू, यद्यपि दोनो एक दूसरे के एकदम विपरीत है। इन दोनो मे गाधीजी वास्तव मे अत्यधिक प्रभावावित करने वाले महापुरुष है। मै गाधीजी से प्रतिनिधि-मडल के साथ दो अवसर पर मिला हू। उस समय वे मद्रास की उस इमारत मे निवास कर रहे थे जो वहा की एक विशाल सस्था मे ही थी। उनके द्वार पर सदा ही भीड लगी रहती थी। सवेरे नित्य ही गाधीजी प्रार्थना करते थे, जिसमे सहस्रो की सख्या मे लोग एकत्र होते थे।

हम लोग अर्धवृत्ताकार मे बैठे थे। गाधीजी भूमि पर मध्य में शुभ्र गद्दे पर बैठे थे। बिजली जल रही थी। प्रथम दिन सध्या के अनन्तर दो घण्टे तक हम लोग पारस्परिक विचार-विनिमय तथा प्रश्नादि करते रहे। उस समय हम लोग तथा महात्माजी के अतिरिक्त और कोई न था। वह अत्यन्त कुशल और विनोदी थे, किन्तु कभी-कभी गम्भीर रूप से अपने पक्ष के लिए दृढ हो जाते थे। विचार-विनिमय के अवसर पर प्रश्न पर उनका मस्तिष्क सदा कार्य करता रहता था, किन्तु उनके अपने विशेष ढग से। उनकी उदारता की पृष्ठभूमि मे अभेद्य दृढता की भावना विद्यमान रहती थी। कभी-कभी उनके तर्क मे अप्रासगिकता एव परस्पर-विरोधी बाते-सी मालूम पडती थी, किन्तु वह अपने आलोचको के सुधार का सदा स्वागत करते थे। व्यक्तिगत रूप से अप्रासगिकता के होते हुए भी महात्माजी को अपनी आत्मा मे इस बात का विश्वास रहता था कि विषय के आग्रह एव हित की दृष्टि से उनमे साम्यमूलक सम्बन्ध रहता है। धार्मिक एवं कर्त्तव्यशास्त्र की दृष्टि से महात्माजी की पहुच अत्यन्त गहराई तक थी, लेकिन साधारण राजनीतिज्ञ को संकट में डाल देती थी। वाद-विवाद में जो लोग प्रतिशोध एव शत्रुता की भावना पैदा कर लेते है, उन्हे यह बात अत्यन्त विचित्र प्रतीत होगी कि गाधीजी ने 'भारत छोडो' प्रश्न से सम्बद्ध जब समस्त तर्क उपस्थित किया तो वह पूर्णतः न्याययुक्त प्रतीत होता था। महात्माजी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा, " 'भारत छोडो' योजना में अग्रेजो के प्रति तनिक भी घृणा का भाव नही। यदि हम उनसे डरते है तो घृणा की भावना उत्पन्न

होती है, यदि भय के भाव का लोप हो जाता है तो घृणा का कही अस्तित्व ही नही रहता।"

महात्माजी जो कुछ कहते थे वह शुद्ध और सच्चे अर्थ मे। वह अपने देश-वासियो को सत्य और स्वातन्त्र्य के लिए बिना किसी विरोधी भावना से युक्त हुए आगे कदम बढाने के लिए कहते थे। विरोधियो के लिए हृदय में भ्रातृ-भावना से परिपूर्ण होने का सदा उनका आदेश रहता था। यह एक ऐसी असाधारण वस्तु है जो विरले राजनीतिक नेता में पाई जाती है।

महात्मा गाधी का व्यक्तित्व हम ब्रिटेनवासियो को कुछ विचित्र और चुनौती देने वाला भले ही प्रतीत हो, किन्तु इस बात में तनिक सन्देह नही किया जा सकता कि करोडो भारतीयो की आवश्यकताओ एव आशाओ के वे मूर्त्तिरूप थे। भारतीय जनता के लिए वह राजनैतिक नेता मात्र नही, अपितु आराध्यदेव 'महात्मा' थे। प्राय सभी प्रमुख ब्रिटिश नेताओ ने इस बात को स्वीकार किया है कि महात्माजी-सा प्रभावशाली अन्य कोई नही। विरोधी आलोचना तथा विपरीत विकास के लक्षणो के बावजूद पूर्ववत् शान्ति एव साम्य की स्थिति मे रहते थे।

: ३३ :

हमारा कर्त्तव्य

मीरा बहन

मेरे सिर्फ दो संगी थे—ईश्वर और बापू—और अब दोनो एक हो गए है।

जब मैंने बापू की मृत्यु की खबर सुनी तो मेरी आत्मा को बन्दी बनाने वाले दरवाजे खुले और बापू की आत्मा ने उसमे प्रवेश किया। उस पल से शाश्वतता की नई भावना मुझमें आ गई है।

यह सच है कि प्रिय बापू जीते-जागते रूप में हमारे बीच नही रहे, लेकिन उनकी पवित्र आत्मा तो आज हमारे ज्यादा नजदीक है। एक समय बापू ने मुझसे कहा था, "जब मेरा यह शरीर नही रहेगा, तब भी हम एक-दूसरे से जुदा नही होगे। तब मै तुम्हारे ज्यादा नजदीक आ जाऊगा। यह शरीर तो बाधा रूप है।" ये शब्द मैंने श्रद्धा से सुने थे। अब मै अपने अनुभव से बापू के उन शब्दो का दिव्य सत्य जान पाई हू।

क्या वापू को आज होने वाली घटना का ज्ञान था ? मेरे दिल्ली से ऋषीकेश जाने से पहले, दिसम्बर महीने की एक शाम को वापू से मैंने कहा था, "वापू, क्या गोशाला का उद्घाटन करने और हिन्दुस्तान की गरीव-दुखी गाय को आशीर्वाद देने का समय निकाल सकेंगे ?" वापू ने जवाव दिया, "मेरे आने का खयाल मत रखो।"—और फिर मानो अपने आपसे कुछ कह रहे हो, इस तरह उन्होंने आगे कहा, "मुर्दे से किसी तरह की मदद की आशा रखने से क्या फायदा ?" ये शब्द इतने भयानक थे कि मैंने किसीके सामने उन्हे नही दोहराया और ईश्वर की प्रार्थना के साथ उन्हे अपने दिल में रख लिया। उनका अनशन आरम्भ हुआ और समाप्त हुआ। मुझे आशा हो गई कि वापू के इन शब्दो का मतलव अनशन के साथ खतम हो गया, लेकिन ये शब्द तो भविष्यवाणी के समान थे और वह भविष्यवाणी पूरी हुई।

उस विधिनिर्मित शाम को जव मैं ध्यान मे अचल वनकर वैठी थी, मैंने सारी दुनिया से गुजरने वाली सताप की कपकपी का अनुभव किया। मनुष्य-जाति की मुक्ति के लिए एक वार फिर अवतार का खून वहा और धरती इस भयानक पाप के डर और वोझ से कराह उठी।

वह पाप एक आदमी का नही है। वह युग-युग में सारी दुनिया को ढक लेने वाला पाप है। उसे एकमात्र ईश्वर के भक्तो का वलिदान ही रोक सकता है।

अव वापू हमारे लिए जो काम छोड गये हैं, उसे पूरा करने मे हमें जमीन आसमान एक कर देना चाहिए। वापू हम सवके लिए—हर मर्द, औरत और वच्चे के लिए—जिये और मरे। वे लगातार काम करते-करते जिये और इसीलिए शहीद की मौत मरे कि हम नफरत, लालच, हिंसा और झूठ के वुरे रास्ते से पीछे लौटें। अगर हमें अपने पापो का प्रायश्चित करना है और वापू के पवित्र उद्देश्य को आगे वढाने मे हिस्सा लेना है तो हर तरह की साम्प्रदायिकता और दूसरी वहुत-सी वाते खत्म होनी चाहिए। चोर-वाजारी, रिश्वतखोरी, तरफदारी, आपसी द्वेष और उसी तरह हिंसा और असत्य के दूसरे काले रूपो को जड-मूल से मिट जाना चाहिए। इनके विरुद्ध हमे मजवूती से और विना हिचकिचाहट से जिहाद वोलना होगा। वापू प्रेम और दया के सागर थे, लेकिन वुराई के विरुद्ध लडने मे वे वडे कठोर थे।

वापू ने भीतरी वुराई पर विजय पा ली थी, इसीलिए वाहर की वुराई के सामने वे लड सके थे। भगवान हमे इस तरह पवित्र वनावे कि हम अपने सामने पडे हुए भारी काम के लायक वन सकें।

: ३४ :

मृत्यु से शिक्षा

राजेन्द्रप्रसाद

महात्मा गाधी का पार्थिव शरीर हमारे साथ अब नही रहा। उनके चरण अब स्पर्श करने को हमें नही मिलेगे, उनका वरदहस्त हमारे कधो पर अब थपकिया नही दे सकेगा, उनकी वाणी अब हमे सुनने को नही मिलेगी, उनके नयन अब अपनी दया से हमें सराबोर नही कर सकेंगे, पर उन्होने मरते-मरते भी हमे यह सीख दी कि शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। उनकी आत्मा हमारे सब कर्मो को देख रही है। जो काम उन्होने अधूरा छोडा है, हमे उसको पूरा करना है और यही एकमात्र रास्ता है, जिससे हम उनकी आत्मा, उनकी स्मृति कायम रख सकते है। यो तो जो कुछ उन्होने किया वह उनको अमर बनाने के लिए ससार के सामने हमेशा बना रहेगा और किसी दूसरे प्रकार के स्मृति-चिन्ह की आवश्यकता नही है, फिर भी मनुष्य अपनी सान्त्वना के लिए कुछ-न-कुछ करता है। इसलिए सोचा गया है कि गाधीजी की स्मृति को कायम रखने के लिए जो रचनात्मक काम उन्हे प्रिय थे, उनको बहुत जोरो से चलाया और फैलाया जाय। वे रचनात्मक कार्य के द्वारा अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो को कार्य-रूप मे फूलता-फलता देखना चाहते थे। यही मानकर हम भी उनके सिद्धान्तो को सच्चे रूप में ससार के सामने रख सकेंगे, इसलिए उसी कार्यक्रम को चलाना, बढाना, प्रसार करना उनके सिद्धान्तो को कार्य रूप में परिणत करना है।

आज मै इसी बात पर विचार करना चाहता हू कि गाधीजी की हत्या क्यो हुई, किस कारण से की गई, अहिसा के एकमात्र अनन्य पुजारी हिंसा के शिकार क्यो बनाये गए? भारतवर्ष मे इधर कई वर्षो से साम्प्रदायिक झगडे इतने चलते आ रहे हैं और साम्प्रदायिक भेद-भाव का इतना जोरो से प्रचार किया गया कि उसीके फलस्वरूप आज यह दुर्घटना हुई। महात्मा गाधी ने अपनी सारी शक्ति साम्प्रदायिक भेद-भाव के विरुद्ध लगा दी थी। वह आदमी जिसने हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज और हिन्दुस्तान को अपनी गिरी हुई अवस्था से उठाकर इस शिखर तक पहुचाया था, उसका अहित स्वप्न मे भी सोचा नही जा सकता था, पर जो लोग सकुचित विचारो के है, दूर तक देख नही सकते, धर्म को समझ नही सकते, उन्होने ऐसा समझा और

उसीका यह फल हुआ। क्या इस हत्या से हिन्दू-धर्म या हिन्दू-समाज की रक्षा हुई या हो सकती है? हिन्दू-समाज के इतिहास मे लडाइयो का उल्लेख है; पर जितने भी युद्ध हुए वे सब धर्म-युद्ध हुए। धर्म-युद्ध के नियमानुसार किसीको कभी इस तरह धमकी देकर किसीने नही मारा। किसी महात्मा की हत्या का तो कही कोई उल्लेख नही मिलेगा। यह पहला अवसर हिंदू-समाज के इतिहास मे है कि किसी हिंदू पर ऐसे पाप का लाछन लगा है और इसमे सदेह नही कि यह ऐसा धब्बा है जिसको कोई मिटा नही सकता। हत्या किसकी की गई? गाधीजी के शरीर की? नही। गाधीजी का पार्थिव शरीर, वे खुद कहा करते थे, कुछ चीज नही है। जो गोली लगी वह गाधीजी के हृदय में नही लगी, वह तो हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज के मर्म-स्थल में लगी। इसलिए आज प्रत्येक भारतवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने नेत्र खोले और देखे कि क्या यह साम्प्रदायिक पाप उसके दिल मे भी कोई स्थान रखता है और यदि रखता हो तो उसे निकाल दे, अपना हृदय साफ कर ले और तभी वह दूसरे के हृदय को समझ सकेगा। हमारा बडा भारी दोष है कि हम अपने पापो, बुरे रास्तो और कुभावनाओ को, जिनको हम सबसे अधिक जानते और देखते है, न देखने और न समझने की कोशिश करते है और दूसरो के दोषो की खोज मे अपनी आखे और अपने विचार दौडाया करते है। आवश्यकता है कि हम अपनी आखो को अन्तर्मुखी बनाकर देखे। यदि हममे से प्रत्येक मनुष्य अपनेको सुधार ले तो सारा ससार सुधर सकता है। गाधीजी ने यही सिखाया है और आज यदि भारत को जीवित रहना है तो उन्हीके सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलकर। भारत स्वराज्य तक पहुचा है, पर स्वराज्य अबतक सुराज नही हो सका क्योकि हम उस रास्ते पर दृढ निश्चय के साथ नही चल रहे है।

काग्रेसजन, जो गाधीजी के पीछे चलने का दम भरा करते थे, जिनमे बहुतेरो ने बहुत-कुछ त्याग भी किया, आज समझ रखे कि सबकी परीक्षा हो रही है। प्रत्येक के सामने यह प्रश्न है कि क्या सचमुच वह इस हत्या के कुछ अश मे भागी नही है? यदि हममे से हरेक गाधीजी के पथ पर चला होता तो यह दुर्घटना असभव थी। अपनी कमजोरियो के कारण उनके बताये पथ पर हमारे न चलने का ही यह दुष्परिणाम हमें देखना पडा। अब भी स्वराज्य को सुराज बनाने मे जो कुछ बाकी है अगर उसको पूरा करना है तो हम व्यक्तिगत भेद-भाव छोड दे, साम्प्रदायिक भेद-भाव उठा दें और सच्चे त्याग के साथ देश की सेवा मे लगे। हमे यह भूल जाना चाहिए कि त्याग का समय चला गया और भोग का समय आ गया। जब हथकडियो,

जेलखानो, लाठियो और गोलियो के सिवाय हमें कुछ दूसरा मिल ही नही सका था तो हम त्याग क्या कर सकते थे ? हा अकर्मण्य वनकर कायरतापूर्वक हम भाग सकते थे। जब हमारे हाथो मे कुछ-न-कुछ अधिकार हो, जव हमको इसका अवसर हो कि हम अपने हाथो को गरमा सके, अपनी प्रतिष्ठा को ससार की आखो में वहुत वढा सकें, और अपनेको एक बडा अधिकारी दिखला सके फिर भी उस अधिकार की परवाह न कर सेवा का ही खयाल रखे, धन के लोभ मे न पडे और सादगी में वडप्पन देखे, तव हम कुछ त्याग दिखला सकते है। आज जव हम कुछ सासारिक वस्तुओ को प्राप्त कर सकते है तो उनके त्यागने को ही त्याग कहा जा सकता है। जब वह प्राप्य नही था, उस वक्त त्याग क्या हो सकता ?

गाधीजी की मृत्यु हममे यह भावना एक वार और जागृत कर दे, यही ईश्वर से प्रार्थना है और इसीमे देश का कल्याण है।

: ३५ :

गांधीजी की सिखावन

विनोवा

अभी इस समय दिल्ली मे जमना नदी के किनारे पर एक महान् पुरुष की देह अग्नि मे जल रही है। हम यहा जिस तरह अव प्रार्थना कर रहे है, उसी तरह हिन्दुस्तान भर मे प्रार्थना चल रही है। कल के ही दिन शाम के पाच वज गए थे। प्रार्थना का समय हुआ और गाधीजी प्रार्थना के लिए निकले। प्रार्थना के लिए लोग जमा हुए थे। गाधीजी प्रार्थना की जगह पहुँचे ही थे कि किसी नौजवान ने आगे झपटकर उनकी देह पर गोलिया चलाईं। गाधीजी की देह गिर पडी। खून की धारा वहने लगी। वीस मिनट के वाद देह का जीवन समाप्त हुआ। थोडे ही समय पहले सरदार वल्लभ-भाई पटेल एक घटा तक उनसे चर्चा करके लौट रहे थे। रास्ते में ही उन्हे खवर मिली और वे लौट आये। विडला-हाउस में पहुँचने पर जो दृश्य उन्हे दिखाई दिया, उसका वर्णन उन्होने कल रेडियो पर किया। यह आपमे से वहुतो ने सुना ही होगा। लेकिन यहा देहात से भी कुछ भाई आये है, उन्होने यह नही सुना होगा। सरदार वल्लभ-भाई ने एक बात बडे महत्त्व की कही। वह यह कि गाधीजी के चेहरे पर दया-भाव तथा माफी का भाव, यानी अपराधी के प्रति क्षमा-वृत्ति दिखाई देती थी। आगे

चलकर वल्लभभाई ने कहा कि इस समय कितना ही दु ख क्यो न हुआ हो, गुस्सा नही आने देना चाहिए। और यदि आये भी तो उसे रोकना चाहिए। गाधीजी ने जो चीज हमे सिखाई, उसका अमल उनके जीते जी हम नही कर पाये। लेकिन अव उनकी मृत्यु के वाद तो हम अमल करें।

ऐसी ही घटना पाच हजार वर्ष पहले हिन्दुस्तान मे घटी थी। भगवान् श्रीकृष्ण की उमर ढल गई थी। जीवन भर उद्योग करके वे थक गए थे। गाधीजी की तरह उन्होने जनता की निरन्तर सेवा की थी। थके हुए एक वार वे जगल मे किसी पेड के सहारे आराम ले रहे थे। इतने मे एक व्याध उस जगल मे पहुँचा। उसे लगा कि कोई हिरन पेड के सहारे वैठा है। शिकारी जो ठहरा ! उसने लक्ष्य साधकर तीर छोडा। तीर भगवान् के पाव मे लगा और खून की धारा वहने लगी। शिकारी अपना शिकार पकडने के इरादे से नजदीक आया। लेकिन सामने प्रत्यक्ष भगवान् को जख्मी पाया। उसे वडा दु ख हुआ। अपने हाथो से वडा पाप हुआ ऐसा सोचकर वह दु खी हुआ। भगवान् कृष्ण तो थोडे ही समय मे चल वसे। लेकिन मरने से पहले उन्होने उस व्याध से कहा, "हे व्याध ! डरना नही। मृत्यु के लिए कुछ-न-कुछ निमित्त वनता ही है। तू निमित्त वन गया।" ऐसा कहकर भगवान् ने उसे आशीर्वाद दिया।

इसी तरह की घटना पाच हजार वर्ष के वाद फिर से घटी है। यो देखने मे तो ऐसा दिखाई देगा कि उस व्याध ने अज्ञानवश तीर मारा था, यहा इस नौजवान ने सोच-समझकर, गाधीजी को ठीक पहचानकर, पिस्तौल चलाई। इसी काम के लिए वह दिल्ली गया था। वह दिल्ली का रहने वाला नही था। गाधीजी के प्रार्थना के लिए जाते हुए वह उनके पास पहुँचा और विल्कुल उनके नजदीक जाकर उसने गोलिया छोडी। ऊपर से यो दिखाई देगा कि गाधीजी को वह जानता था। लेकिन वास्तव में ऐसा नही था। जैसा वह व्याध अज्ञानी थी, वैसा ही यह युवक भी अज्ञानी था। उसकी यह भावना थी कि गाधीजी हिन्दूधर्म को हानि पहुँचा रहे है, इसलिए उसने उनपर गोलिया छोडी। लेकिन दुनिया में आज हिन्दूधर्म का नाम यदि किसीने उज्ज्वल रखा तो वह गाधीजी ने ही रखा है। परसो उन्होने खुद ही कहा कि "हिन्दूधर्म की रक्षा करने के लिए किसी मनुष्य को नियुक्त करने की जरूरत यदि भगवान को महसूस हुई तो इस काम के लिए वह मुझे ही नियुक्त करेगा।" इतना अत्म-विश्वास उनमें था। उन्हे जो सत्य मालूम होता था वह वे साफ-सीधे कह देते थे। वडे लोग अपनी रक्षा के लिए 'वाडीगार्ड' यानी देह-रक्षक रखते है। गाधीजी ने ऐसे देह-रक्षक कभी नही रखे। देह को वे तुच्छ समझते थे। मृत्यु के पहले ही वह मरकर रहे थे।

निर्भयता उनका व्रत था। जहा किसी फौज को भी जाने की हिम्मत न हो, वहा अकेले जाने की उनकी तैयारी थी।

जो सत्य है, लोगो के हित का है, वही कहना चाहिए, फिर भले ही किसीको अच्छा लगे, बुरा लगे, या उसका परिणाम कुछ भी निकले, ऐसी उनकी वृत्ति थी। वे कहते थे, "मृत्यु से डरने का कोई कारण ही नही है, क्योकि हम सब ईश्वर के ही हाथ मे है। हमसे जबतक वह सेवा लेना चाहता है, तबतक लेगा और जिस क्षण वह उठा लेना चाहेगा, उस क्षण उठा लेगा। इसलिए जो सत्य लगता है, वही कहना हमारा धर्म है। ऐसे समय यदि मैं शायद अकेला भी पड जाऊँ और सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो जाय तो भी मुझे जो सत्य दिखाई देता है, वही मुझे कहना चाहिए।" उनकी इस तरह की निर्भीकतापूर्ण वृत्ति रही और उनकी मृत्यु भी किस अवस्था में हुई! वे प्रार्थना की तैयारी मे थे। यानी उस समय उनके चित्त मे भगवान् के सिवा दूसरा विचार नही था। उनका सारा जीवन ही हमने सेवामय तथा परोपकारमय देखा है। परन्तु फिर भी प्रार्थना की भावना और प्रार्थना का समय विशेष पवित्र कहना चाहिए। राजनैतिक आदि अनेक महत्त्व के कामो मे वे रहते थे। लेकिन उनकी प्रार्थना का समय कभी नही टला। ऐसे प्रार्थना के समय ही देह में से मुक्त होने के लिए मानो भगवान् ने आदमी भेजा। अपना काम करते हुए मृत्यु हुई, इस विषय का उनके दिल का आनन्द और निमित्तमात्र बने हुए गुनहगार के प्रति दयाभाव, इस तरह का दोहरा भाव उनके चेहरे पर मृत्यु के समय था, ऐसा सरदारजी को दिखाई दिया।

गाधीजी ने उपवास छोडा, उस समय देश मे शाति रखने का जिन्होने वचन दिया उनमे काग्रेस, मुसलमान, सिख, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयसेवक दल आदि सब थे। हम प्रेम के साथ रहेगे, ऐसा उन्होने वचन दिया और उस तरह रहने भी लगे थे कि एक दिन प्रार्थना-सभा मे गाधीजी को लक्ष्य करके किसी ने बम फेका। वह उन्हे लगा नही। उस दिन प्रार्थना-सभा में गाधीजी ने कहा, "मैं देश और धर्म की सेवा भगवान् की प्रेरणा से करता हूँ। जिस दिन मैं चला जाऊँ, ऐसी उसकी मर्जी होगी, उस दिन वह मुझे ले जायगा। इसलिए मृत्यु के विषय मे मुझे कुछ भी विशेष नही मालूम होता है।" दूसरा प्रयोग कल हुआ। भगवान् ने गाधीजी को मुक्त किया।

हम सब देह छोडकर जानेवाले है। इसलिए मृत्यु के विषय मे तनिक भी दु:ख मानने का कारण नही है। माता की अपने दो-चार बच्चो के विषय में जो वृत्ति रहती है वह दुनिया के सब लोगो के विषय में गाधीजी की थी। हिंदू, हरिजन, मुसलमान,

ईसाई, और जिन राज्यकर्त्ताओ से वे लडे, वे अग्रेज, इन सवके प्रति उनके दिल में प्रेम था। सज्जनो पर जिस तरह प्रेम करते है, वैसे दुर्जनो पर भी करो, शत्रु को प्रेम से जीतो, ऐसा मत्र उन्होने दिया। उन्होने ही हमे सत्याग्रह सिखाया। खुद आपत्तिया झेलकर सामनेवालो को जरा भी खतरा न पहुँचे, यह शिक्षा उन्होने हमें दी। ऐसा पुरुष देह छोडकर जाता है, तव वह रोने का प्रसग नही होता। मा हमें छोडकर जाती है, उस समय जैसा लगता है, वैसा गाधीजी के मरने से लगेगा जरूर। लेकिन उससे हममे उदासी नही आनी चाहिए।

एकनाथ महाराज ने भागवत मे कहा है, "मरने वाले गुरु का और रोने वाले चेले का दोनो का वोध व्यर्थ गया।" एक था मृत्यु से डरने वाला गुरू। मृत्यु के समय वह कहने लगा, "अरे, मै मरता हूँ।" तव उसके शिष्य भी रोने लगे। इस तरह गुरु मरने वाला और चेला रोने वाला दोनो ने ही जो वोध (ज्ञान) प्राप्त किया था, वह फजूल गया—ऐसा एकनाथ महाराज ने कहा है।

गाधीजी मृत्यु से डरने वाले गुरु नही थे। जिस सेवा मे निष्काम भावना से देह लगाई जाय, वह सेवा ही भगवान् की सेवा है। वह करते हुए जिस दिन वह वुलाएगा, उस दिन जाने को तैयार रहे, ऐसी सिखावन उन्होने हमें दी। तदनुसार ही उनकी मृत्यु हुई। इसलिए यह उत्तम अन्त हुआ, ऐसा हम पहचान ले और काम करने लग जायँ।

कुछ दिन पहले ही आश्रम के कुछ भाई गाधीजी से मिलने गए थे। उस समय उनका उपवास जारी था। उपवास मे जिंदा रहेंगे या मर जायगे, इसका किसको पता था? आश्रम के भाइयो ने उनसे पूछा, "आप यदि इस उपवास में चल वसे तो हम कौन-सा काम करे?" गाधीजी ने जवाव दिया, "इस तरह का सवाल ही आपके सामने कैसे खडा हुआ? मैंने तो आपके लिए काफी काम रक्खा है। हिन्दुस्तान में खादी करनी है। खादी का शास्त्र वनाना है। इतना वडा काम आपके लिए होते हुए "क्या करें?" ऐसी चिन्ता क्यो होती है?"

इसलिए हमारे लिए उन्होने जो काम रख छोडा, वह हमें पूरा करना चाहिए। असख्य जातिया और जमाते मिलकर हम यहा एक साथ रहते है। चालीस करोड का अपना देश है। यह हमारा वडा भाग्य है। लेकिन एक-दूसरे पर प्रेम करते हुए रहेंगे, तभी यह होगा। इतना वडा देश होने का भाग्य शायद ही मिलता है। हमारे देश मे अनेक धर्म है, अनेक पथ है। मै तो यह अपना वैभव समझता हूँ। लेकिन हम सव प्रेम के साथ रहेगे, तभी यह वैभव सिद्ध होगा। हम प्रेम से रहे, यही गाधीजी ने

अपने अतिम उपवास से हमे सिखाया है। बच्चे एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहे, इसलिए जिस तरह माता भोजन छोड देती है, वैसा ही वह उपवास था। सारे मनुष्य एक से है, यह उन्होने हमे सिखाया। हरिजन-सेवा, खादी-सेवा, ग्राम-सेवा, भगियो की सेवा आदि अनेक सेवा-कार्य हमारे लिए छोड गए है।

.. सबके दिल एक विशेष भावना से भरे हुए है। लेकिन मुझे कहना यह है कि हम केवल शोक करके न बैठे रहे। हमारे सामने जो काम पडा है, उसमे लग जायँ। यह जो मै आपको कह रहा हूँ, वैसा ही आप मुझे भी कहे। इस तरह एक दूसरे को बोध देते हुए हम सब गाधीजी के बताए काम करने लग जाय। गीता मे और कुरान मे कहा है कि भक्त और सज्जन एक दूसरे को बोध देते है और एक दूसरे पर प्रेम करते है। वैसा हम करे। आज तक बच्चो की तरह हम कभी-कभी झगडते भी थे। हमे वे सँभाल लेते थे। वैसा सबको सँभालने वाला अब नही रहा है, इसलिए एक दूसरे को बोध देते हुए और एक दूसरे पर प्रेम करते हुए हम सब मिलकर गाधीजी की सिखावन पर चले।

: ३६ :

निपुण कलाकार

जवाहरलाल नेहरू

सन् १९१६। ३२ वर्ष से ऊपर—जब मैने बापू को पहले-पहल देखा था, और तबसे एक युग बीत गया है और जब हम बीते दिनो की ओर देखते है तो दिमाग मे भावो का ढेर-सा लग जाता है। हिन्दुस्तान के इतिहास और कहानी का वह कैसा अजीब जमाना था, जबकि अपने तमाम चढाव-उतार और हार-जीत के बावजूद वह एक सगीत और वीरता के गुणो से भरा था, यहाँतक कि हमारी नाचीज जिंदगी तरह-तरह की चमक से भर गई थी, क्योकि उस युग में हम जीवित थे और कम या ज्यादा अशो मे हिन्दुस्तान के उस महान् नाटक के पात्र थे।

यह युग दुनिया भर में इन्कलाबो, उपद्रवो और उत्तेजक घटनाओ का युग था। फिर भी हिन्दुस्तान की घटनाएँ अपनी नवीनता और मौलिकता के कारण अलग छिकी हुई मालूम पडती है, क्योकि इनकी पृष्ठभूमि बिल्कुल जुदा थी। अगर किसी आदमी ने बापू को पूरी तरह जाने बिना इस युग को समझने की कोशिश की

हो तो उसे अचरज होगा कि हिन्दुस्तान मे यह सव क्यो और कैसे हुआ ? इसकी व्याख्या करना कठिन है। सिर्फ बेजान दलीलो से इसे समझना और कठिन है। ऐसा कभी-कभी होता है कि एक आदमी या राष्ट्र तक किसी भावना के प्रवाह में एक खास तरह के काम की दिशा में वह जाता है। यह काम कभी अच्छा होता है, कभी वुरा भी। परन्तु जव उत्तेजना खत्म हो जाती है तो इन्सान वहुत जल्दी अपनी क्रियाशीलता या निष्क्रियता की स्वाभाविक अवस्था पर आ जाता है।

इस जमाने मे हिन्दुस्तान के वारे में सिर्फ यह ताज्जुव की वात नही थी कि उसने एक ऊचे पैमाने पर कुछ काम किये, लेकिन यह भी कम अचरज की वात नहीं थी कि यह काम ऊचे पैमाने पर वह एक लम्वे अर्से तक करता रहा। वेशक यह एक लाजवाव काम था। जवतक कोई उस जोरदार शख्सियत पर गौर नही करता, जिसने इस जमाने को विल्कुल अपने तरीके से ढाल दिया था, तवतक उसे नही समझा जा सकता। एक विशाल मूर्ति के समान वे इस सदी के हिन्दुस्तान के आधे इतिहास मे पैर फैलाए खडे हैं। यह मूर्ति सिर्फ जिस्मानी नही, वल्कि दिमागी और रूहानी भी थी।

हम वापू के लिए दुखी है और अपनेको अनाथ महसूस करते है। उनकी उस आला जिन्दगी की ओर मुडकर देखने पर दुख की कोई वात नजर नही आती। इतिहास मे वहुत कम लोगो को अपनी जिन्दगी में ही अपने उसूलो को इतना सफल होते देखने की किस्मत मिली है। उन्हे हमारी नाकामयावियो पर दुख था और वे इसलिए दुखी थे कि हिन्दुस्तान को वे ज्यादा ऊचाई तक न उठा सके। इस रज और गम की वात को वहुत आसानी से समझा जा सकता है। फिर भी यह कौन कह सकता है कि उनकी जिन्दगी नाकामयाव थी ? उन्होने जिस चीज को छुआ उसे काविल और कीमती वना दिया। उन्होने जो कुछ किया, उसके ठोस नतीजे निकले। शायद नतीजे इतने ऊचे न रहे हो, जितने उन्होने सोचे थे। किसीका यह खयाल वन सकता है कि उन्होंने जिस दिशा मे कोशिश की, उसमे नाकामयाव कभी नही हुए। गीता के उपदेश के अनुसार उनकी सारी कोशिशें नतीजे के प्रति विना लगाव के तटस्थ भाव से होती थी और इसीलिए नतीजे खुद उनके पास आते थे।

गैरमामूली हिम्मत, कठोर काम और मेहनत से भरी उनकी लवी जिन्दगी के दौरान मे शायद ही कभी कोई गैरवाजिव वात होती हुई दिखलाई दी हो। सव तरफ फैले उनके काम धीरे-धीरे एक दूसरे में समा गए थे—उन्होंने एक लय का रूप ले लिया था और उससे निकला हुआ एक-एक शब्द, एक-एक इशारा

इस लय मे बिल्कुल मौजूँ बैठता था और इस तरह से बिना जाने एक निपुण कलाकार बन गए थे , क्योकि उन्होने जिन्दा रहने की कला सीखी थी, हालाकि जिस जिन्दगी को उन्होने अपनाया, वह दुनिया की जिन्दगी से बिल्कुल जुदा थी। उनकी जिन्दगी से यह साफ हो गया था कि सच्चाई और अच्छाई की तलाश दूसरी बातो के साथ-साथ इन्सानी जिन्दगी को कलाकारी की ओर ले जाती है।

वे जैसे-जैसे बूढे होते जाते थे, उनका शरीर उनके भीतर की ताकतवर आत्मा का वाहक बनता जाता था। लोग जब उनकी बातो को सुनते या उनको देखते थे, तो उनके शरीर को बिल्कुल भूल जाते थे और इसलिए वे जहाँ बैठते थे, एक मदिर बन जाता था, जिस जमीन पर चलते थे, वह एक ऋषि-भूमि बन जाती थी।

उनकी मौत तक मे एक शानदारपूर्ण कलाकारी थी। हर निगाह से उस आदमी और उसके जीवन के अनुरूप ही यह उत्कर्ष था। इसमें शक नही कि इस मौत ने उनकी जिन्दगी की शिक्षा को और कीमती बना दिया था। एकता के मकसद के लिए वे मरे—वह एकता जिसके लिए उन्होने अपनी तमाम जिन्दगी को खपा दिया था, और जिसके लिए वे बिना रुके हमेशा काम करते रहे, खासकर पिछले सालो मे। उनकी मौत अचानक हुई, ऐसी मौत जिससे मरना हर आदमी चाहेगा। बुढापे मे होने वाली न तो कोई लम्बी बीमारी उनके पास फटकी थी, न शरीर पीला पडा था और न दिमाग मे भूलने का रोग शुरू हुआ था। तब हम क्यो उनके लिए दुःखी हो ? हमारे दिमाग मे उनकी याद एक ऐसे गुरु की याद है, जिसका एक-एक कदम आखीर तक रोशनी से भरा था, जिसकी मुस्कराहट दूसरो को भी छूत लगाने वाली थी, जिसकी आँखो मे हमेशा हँसी नाचती थी। देह और दिमाग के साथ कमज़ोर होने वाली उनकी ताकत की याद को हम स्थान नही देगे। वे अपनी ऊची-से-ऊची ताकत और अधिक-से-अधिक बल के साथ जिये और मरे। अपने पीछे हमारे दिमागो में और हमारे युग के दिमाग मे एक ऐसी तस्वीर छोड गए है, जो कभी-भी धुधली नही पडेगी।

यह तस्वीर कभी धुधली नही पडेगी। लेकिन उन्होने इससे बहुत-कुछ ज्यादा किया है, क्योकि अब वे हमारे दिमाग और आत्मा के ज़र्रे-ज़र्रे मे घुल गये है और इस तरह उन्हे बदल दिया है, एक नया रूप दे दिया है। गाधीजी की पीढी गुज़र जायगी, परन्तु वह गुण सदा अमर रहेगा और आने वाली हर पीढी पर अपना असर डालेगा, क्योकि आज वह भारत की आत्मा का एक जुज़ बन गया है। ठीक जिस समय इस मुल्क मे हमारी आत्मा गरीब हो रही थी, बापू हमारे बीच हमे मजबूत और

हमे खुशहाल बनाने आये। इस बीच उन्होने जो ताकत हमे दी, वह एक क्षण, एक दिन या एक वर्ष तक ही ठहरने वाली नही थी, वल्कि वह हमारी राष्ट्रीय विरासत में एक वढोतरी थी।

गाधीजी ने हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए और हमारी कमजोर हस्तियो तक के लिए एक वहुत वडा काम किया है। इस काम को उन्होने वहुत खूवी के साथ अजाम दिया है। अव हमारी वारी है कि हम उनकी पाक याद को हमेशा कायम रखें और उनके काम को पूरी कुर्वानी के साथ सदा आगे वढाते रहे और इस तरह समय-समय पर की गई अपनी प्रतिज्ञाओ का पालन कर सके।

× × ×

. . और तव गाधी आये। वे ताजी हवा के मानिन्द एक तेज धारा की तरह थे, जिसने हमे अपने शरीर को फैलाने और लम्वी सास खीचने का मौका दिया। रोशनी की एक तेज किरण की भाति उन्होने अँधेरे अन्तर में घुसकर हमारी आँखो के पर्दे को हटा दिया। हवा के ववडर की तरह, जो वहुत-सी चीजो को उथल-पुथल कर देता है, उन्होने लोगो के दिमाग के तौर-तरीके मे एक उथल-पुथल मचा दी। वे अपने आदर्श के नीचे नही उतरे, जनता की वोली मे वात करते हुए, उनकी दर्दनाक हालत की ओर लगातार उनका ध्यान खीचते हुए, वे लाखो लोगो के भीतर से प्रकट होते हुए मालूम हुए। वे हमसे कहा करते थे कि जो लोग किसानों के शोषण पर जिन्दा है और जो उनकी ओर पीठ किये है, उन्हे उनकी ओर देखना चाहिए और उस हालत से छुटकारा पाना चाहिए, जिससे यह गरीवी और पीडा पैदा होती है। तभी राजनैतिक आजादी एक शक्ल धारण करती है और उसके भीतर से एक नये सन्तोष का जन्म होगा। उन्होने जो कुछ कहा था, हमने उनमें से सिर्फ कुछ वातो को माना या कभी-कभी विल्कुल नही माना। लेकिन यह सव खास अहमियत नही रखता। उनकी नसीहत का निचोड था निडरता और सच्चाई और इनसे जुडा हुआ काम या व्यवहार, जिसमे जनता की भलाई को हमेशा नजर में रखा जाय। हमारी पुरानी पुस्तको मे कहा गया है कि एक इन्सान या कौम के लिए सवसे वडा तोहफा 'निर्भीकता' है। सिर्फ जिस्मानी नही, वल्कि दिमाग से भी डर विल्कुल निकल जाना चाहिए। जनक और याज्ञवल्क्य ने हमारे इतिहास की प्रभात वेला में कहा था कि यह जनता के नेताओ का काम है कि वे उन्हे निडर वनावे, लेकिन अग्रेजी राज्य के समय हिन्दुस्तान मे सवसे जोरदार वृत्ति भय की थी—चारो ओर फैला तकलीफदेह और दमघुटाऊ डर, फौज, पुलिस और सी. आई डी का डर, अधिकारी

तबके का डर, दबाने वाले कानूनो और जेल का डर , जमीदारो के दलालो का डर; साहूकारो का डर, बेकारी और भुखमरी का डर जो हमेशा दरवाजे पर खडे रहते थे। इस चारो तरफ फैले डर के खिलाफ गाधीजी की सामूहिक और जोरदार आवाज उठी थी, "डरो मत" ! क्या यह कोई मामूली बात थी ? बिल्कुल नही। और इसपर भी डर के अपने भूत होते है, जो असलियत से भी ज्यादा डरावने होते है, इस असलियत की अगर खामोशी के साथ छानबीन की जाय और इसके नतीजो को अपने आप मान लिया जाय तो बहुत-सा डर अपने आप खत्म हो जाता है।

इस तरह लोगो के सिर से उस काले डर का पर्दा इतनी जल्दी उठ गया कि हमे अचरज हुआ—इतनी पूर्णता और विचित्रता के साथ कि हम यकीन भी न कर सके। डर और आडम्बर का गहरा साथ होता है, इसलिए सत्य निर्भीकता के बाद आता है। हिन्दुस्तानी जितने सत्यवादी पहले थे, उतने नही बने और न उन्होने अपने स्वभाव को ही एक रात मे बदला , इतने पर भी इन्कलाब का एक समुद्र दिखलाई देने लगा, क्योकि आडम्बर और चोरी से किये हुए आचरण की जरूरत कम रह गई। यह एक मनोवैज्ञानिक क्रांति थी, मानो किसी मनोविशेषज्ञ ने रोगी के भीतर गहराई से प्रवेश कर उसकी उलझी पेचीदगियो की जड को मालूम कर लिया हो और इस तरह उसे उसके सामने खोलकर रखा और मुक्ति दिलाई।

शायद हम उतने सचाई-पसद नही हो सके, जितने पहले थे, लेकिन गाधीजी हमेशा एक दृढ सत्य के प्रतीक के रूप मे हमारे बीच आये और हमे सदा सत्य के निकट खीचने की कोशिश की।

यह कोई अचरज की बात नही है कि इस अद्भुत ताकतवर शख्स ने, जिसमें कि आत्मविश्वास और गैरमामूली ताकत भरी थी, जो हर इन्सान की आजादी और समानता का नुमाइन्दा था, जो सब बातो को गरीबी की तराजू से ही नापता था, हिन्दुस्तान की जनता को मुग्ध करके उसे चुम्बक की तरह अपनी ओर खीच लिया। जनता की निगाह मे वे गुजरे और आगे आने वाले जमाने की कडी थे और जो मायूसीभरे मौजूदा जमाने से आशा के भावी जीवन तक पहुँचने का पुल बना देना चाहते थे। और सिर्फ जनता ही नही, बल्कि बुद्धिवादी और दूसरे लोग भी—हालाँकि उनके दिमाग अक्सर परेशान और अनिश्चित रहते थे और उनके लिए अपनी पुरानी आदतो को बदलना बडा कठिन था—उनके असर से अछूते नही रहे। इस तरह उन्होने एक मजबूत दिमागी इन्कलाब कर दिखाया, और यह तब्दीली सिर्फ उनमे ही नही हुई जो उनके नेतृत्व को मानते थे, बल्कि उनके

विरोधी और तटस्थ लोगो तक में हुई ; जो आखिर तक यह तय नही कर पाये थे कि क्या करना चाहिए और क्या सोचना चाहिए ।

: ३७ :

शक्ति और प्रेरणा के स्रोत

वल्लभभाई पटेल

मेरा दिल दर्द से भरा हुआ है। क्या कहूँ क्या न कहूँ ? जवान चलती नही है। आज का अवसर भारतवर्ष के लिए सवसे वडे दु ख, शोक और शर्म का अवसर है। आज चार वजे मै गाधीजी के पास गया था और एक घटे तक मैंने उनसे वात की थी। वह घडी निकालकर मुझसे कहने लगे, "मेरा प्रार्थना का समय हो गया है। अव मुझे जाने दीजिये।" वह भगवान् के मन्दिर की तरफ अपने हमेशा के समय पर चलने के लिए निकल पडे। तव मै वहा से अपने मकान की तरफ चला। मै मकान पर अभी पहुँचा नही था कि इतने मे रास्ते में एक भाई मेरे पास आया। उसने कहा कि एक नौजवान हिन्दू ने गाधीजी के प्रार्थना की जगह पर जाते ही अपनी पिस्तौल से उनपर तीन गोलिया चलाई, वह वहा गिर पडे और उनको वहा से उठाकर घर मे ले जाया गया है। मै उसी वक्त वहा पहुँच गया। मैंने उनका चेहरा देखा। वही चेहरा था। वैसा ही शात चेहरा था जैसा हमेशा रहता था। उनके दिल में दया और माफी के भाव अव भी उनके चेहरे से प्रकट होते थे। आस-पास वहुत लोग जमा हो गए। लेकिन वह तो अपना काम पूरा करके चले गए।

पिछले चन्द दिनो से उनका दिल खट्टा हो गया था और आखिर उन्होने उपवास भी किया। उपवास में चले गए होते, तो अच्छा होता। लेकिन उनको और भी काम देना था तो रह गए। पिछले हफ्ते में एक दफा और एक हिंदू नौजवान ने उनके ऊपर वम फेकने की कोशिश की थी। उसमे भी वह वच गए थे। इस समय पर ही उनको जाना था। आज वह भगवान् के मन्दिर में पहुँच गए। यह वडे दु ख का, वडे दर्द का, समय है। लेकिन यह गुस्से का समय नही है ; क्योकि अगर हम इस वक्त गुस्सा करें, तो जो सवक उन्होनें हमको जिन्दगी भर सिखाया, उसे हम भूल जायगे और कहा जायगा कि उनके जीवन में तो हमने उनकी वात नही मानी, उनकी मृत्यु के वाद भी हमने नही माना। हमपर यह धब्बा लगेगा। मेरी प्रार्थना है कि कितना भी दर्द हो,

कितना भी दु ख हो, कितना भी गुस्सा आवे, लेकिन गुस्सा रोककर अपने पर कावू रखिये। अपने जीवन मे उन्होने हमें जो कुछ सिखाया, आज उसीकी परीक्षा का समय है। वहुत शाति से, वहुत अदव से, वहुत विनय से एक-दूसरे के साथ मिलकर हमें मजवूती से पैर जमीन पर रखकर खडा रहना है। आप जानते है कि हमारे ऊपर जो वोझ पड रहा है, वह इतना भारी है कि करीव-करीव हमारी कमर टूट जायगी। उनका एक सहारा था और हिन्दुस्तान को वह वहुत वडा सहारा था। हमको तो जीवन भर उन्हीका सहारा था। आज वह चला गया! वह चला तो गया, लेकिन हर रोज, हर मिनट, वह हमारी आखो के सामने रहेगा! हमारे हृदय के सामने रहेगा, क्योकि जो चीज़ वह हमको दे गया है, वह तो कभी हमारे पास से जायगी नही।

. उनकी आत्मा तो अव भी हमारे वीच में है। अभी भी वह हमें देख रही है कि हम लोग क्या कर रहे है। वह तो अमर है। जो नौजवान पागल हो गया था, उसने व्यर्थ सोचा कि वह उनको मार सकता है। जो चीज़ उनके जीवन में पूरी न हुई, शायद ईश्वर की ऐसी मर्जी हो कि उनके द्वारा इस तरह से पूरी हो; क्योकि इस प्रकार की मृत्यु से हिन्दुस्तान के नौजवानो का जो कानशंस (अन्तरात्मा) है, जो हृदय है, वह जाग्रत होगा, मै ऐसी आशा करता हूँ। मै उम्मीद करता हूँ और हम सव ईश्वर से यह प्रार्थना करेंगे कि जो काम वह हमारे ऊपर वाकी छोड गए हं, उसे पूरा करने मे हम कामयाव हो। मै यह उम्मीद करता हूँ कि इस कठिन समय मे भी हम पस्त नहीं हो जायगे, हम नाहिम्मत भी नही हो जायगे। सवको दृढता से और हिम्मत से एक साथ खडा होकर इस वहुत वडी मुसीवत का मुकाविला करना है और जो वाकी काम उन्होंने हमारे ऊपर छोडा है, उसे पूरा करना है। ईश्वर से प्रार्थना कर, आज हम निश्चय कर ले कि हम उनके वाकी काम को पूरा करेंगे।

× × ×

जवसे गाधीजी हिन्दुस्तान में आए तवसे, या जव मैंने जाहिर जीवन शुरू किया तवसे, मैं उनके साथ रहा हूँ। अगर वे हिन्दुस्तान न आए होते तो मै कहा जाता और क्या करता, उसका जव मै ख़याल करता हूँ तो एक हैरानी-सी होती है। गाधीजी ने मेरे जीवन में कितना पल्टा किया। सारे भारतवर्ष के जीवन में उन्होंने कितना पल्टा किया। यदि वह हिन्दुस्तान में न आए होते तो राष्ट्र कहा जाता? हिन्दुस्तान कहा होता? सदियो से हम गिरे हुए थे। वह हमें उठाकर कहातक ले आये? उन्होंने हमें आजाद वनाया। उनके हिन्दुस्तान आने के वाद क्या-क्या हुआ और किस

तरह से उन्होने हमें उठाया, कितनी दफा, किस-किस प्रकार की तकलीफें उन्होनें उठाई, कितनी दफे वह जेलखाने मे गए और कितनी दफे उपवास किया, यह सव आज खयाल आता है। कितने धीरज से, कितनी शाति से वह तकलीफे उठाते रहे और आखिर आजादी के सव दरवाजे पार कर हमे उन्होने आजादी दिलवाई !

: ३८ :

उनकी विरासत

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

सव कुछ समाप्त हो गया !

ससार एकदम खाली लगता है—वुरी तरह से खाली !

पछी शुक्रवार ३० जनवरी को शाम को ५ वजे उड़ गया।

शरीर हमारे पास रह गया और मुख पर थिरकती मुस्कान ने भ्रम को कुछ देर और जीवित रखा। लेकिन शनिवार, ३१ जनवरी, को हमने अपने पूर्वजो की सीख के अनुसार अपने प्रिय नेता के शरीर को जमुना के तट पर अग्नि को अर्पित कर दिया। फिर हमने अवशेषो को एकत्र किया। निष्ठा के कारण इस भस्म मे भी हमें वापू दिखाई देने लगे और अनाथ जनता इस भुलावे मे भी शौक से पडी रही। लेकिन हमारे पूर्वजो की पवित्र शिक्षा ने हमे भस्म को तत्त्वार्पित करने और परमेश्वर में ध्यान लगाने के लिए उत्प्रेरित किया। इसलिए हमने उनके फूल पावन गगा को प्रार्थना-पूर्वक अर्पित कर दिये और अव शोक-सतप्त हृदय के साथ वापस लौटते समय चारो ओर रिक्तता का आभास हो रहा है। हे भगवान् ! हर दिन वापू के निवन के समय हमारा ध्यान हमारे प्रिय शिक्षक, हमारे अजातशत्रु, हमारे सत्यवर्मपराक्रम—की ओर जाय जो करोडो व्यक्तियो के लिए अचूक चिकित्सक के समान थे, जो भय को दूर कर देते थे और सदा प्रेम का पोषण करते थे।

भगवान् करे कि हर दिन, साय ५ वजे भारत में प्रत्येक नर-नारी उस दृश्य का पुन स्मरण करे, जिसमें एकत्र नर-नारी-समुदाय सम्मिलित होने के लिए आते वापू की प्रतीक्षा कर रहा हो। उस प्रिय मुख की याद करें और जिसकी और जिसके लिए वे (गाधीजी) कामना करते थे, उसका मनन करे। हर शाम को उस घडी, भारत में सकल-सद्भावना के लिए हमें दो मिनट प्रार्थना करनी चाहिए। हमारा शोक भी क्रोध-

और क्रोध मे सांत्वना और रूप प्राप्त करता है। उस मूल पाप के विरुद्ध, जो हमारी प्रवृत्ति को विषाक्त करता है, हमारी जागरूकता सतत होनी चाहिए। इस अपूर्व ससार मे दमन और राजकीय उत्पीडन से नही वचा जा सकता। लेकिन इस वात को हमें अच्छी और पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि सद्भावना सद्भावना के विना प्राप्त नही की जा सकती। हमारे प्रिय नेता के वताये रास्ते के बिना अन्य किसी प्रकार वुराई पर विजय नही पाई जा सकती। शाति के वारे मे वडी लडाकू वातें की जा रही है और सद्भावना के लिए भी वडी उत्तेजनापूर्ण आवाजें उठाई जा रही है, लेकिन आग को तेल छिडककर नही वुझाया जा सकता। काश कि हम प्यार की उस सीख को, जो हमारे मृत नेता ने एक विरासत की तरह हमारे लिए छोडी है, उनकी शिक्षा को और उनके द्वारा वसर किये गए जीवन को याद रख सकें।

प्यार मागिये मत। प्यार इस तरह से हासिल नही किया जा सकता। अपना प्यार वढाइये—वदले मे अधिक प्यार उत्प्रेरित होगा और आपको प्राप्त होगा। यह नियम है और कोई व्यवस्था या तर्क इसे वदल नही सकता।

वे चले गए और यदि हम उनकी शिक्षा के अनुसार इस नियम का अनुसरण नही करेंगे और इसे शिक्षक के साथ ही समाप्त हो जाने देंगे तो हमारा पतन हो जायगा और यथार्थ में हम हत्यारे के सहयोगी वन जायगे। लेकिन अगर सच्चे दिल से हम उनके नियम का पालन करें तो वे मर नही सकते, वे हमारे भीतर और हमारे द्वारा जीवित रहेगे। हमें याद रखना चाहिए कि हमारे प्रिय नेता किस प्रकार प्रतिदिन उनके पास जाते थे और किस प्रकार जनता उनके साथ मिलकर कहती थी :

ईश्वर अल्ला तेरे नाम—
सबको समति दे भगवान।
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतं शरीरम्।
ओ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर॥

: ३९ :

वह प्रकाश

श्री अरविन्द

जो प्रकाश स्वतंत्रता-प्राप्ति में हम लोगो का नेतृत्व करता रहा, वह ऐक्य-प्राप्ति नही करा सका, परन्तु वह प्रकाश वुझा नही है। वह अभी प्रज्वलित है और

जबतक विजयी न हो जायगा, जलता ही रहेगा। मेरा विश्वास है कि इस देश का भविष्य अत्यन्त महान् है तथा यहा ऐक्य अवश्य स्थापित होगा। जिस शक्ति ने सघर्ष काल में हम लोगो का नेतृत्व करके लोगो को स्वतत्रता प्राप्त कराई, वही शक्ति हमे उस लक्ष्य तक भी ले जायगी जिसके लिए महात्माजी अंत तक सचेष्ट रहे और जिसके कारण उन्हें दुर्घटना का शिकार होना पडा। जिस प्रकार हमने स्वतत्रता प्राप्त की, उसी प्रकार हमें ऐक्य-प्राप्ति मे भी सफलता मिलेगी। भारत स्वतत्र और संघटित रहेगा। देश में पूर्ण ऐक्य होगा तथा राष्ट्र अत्यन्त शक्तिशाली होगा।

: ४० :

वह ज्वलंत ज्योति

सरोजनी नायडू

अपना पथ-निर्देश,अपना प्यार,अपनी सेवा और प्रेरणा देते रहने के लिए अपने देशवासियो की पुकार और दुनिया की आवाज के जवाव में भूतकाल मे मसीह की भाति तीसरे दिन वे फिर से अवतरित हो उठे हैं। और यद्यपि आज हम, जो उन्हें प्रेम करते थे, उन्हे व्यक्तिगत रूप से जानते थे, और जिनके लिए उनका नाम एक चमत्कार और आख्यान की तरह था, शोक प्रकट कर रहे है, आसू बहा रहे हैं और दु खित हो रहे है, तथापि मैं समझती हू कि आज, जब अपनी मृत्यु के तीसरे दिन वे अपनी ही भस्म से एक वार फिर अवतरित हुए हैं, शोक मनाना समयानुकूल नही है और आसू वहाना असंगत है। वे, जिन्होने अपने जीवन, आचरण, त्याग, प्रेम, साहस और निष्ठा से ससार को सिखाया है कि यथार्थ वस्तु आत्मा है, शरीर नही और आत्मा की शक्ति ससार की सारी सेनाओ की सयुक्त शक्ति से, युगो की सयुक्त सेनाओ की शक्ति से अधिक है, कैसे मर सकते है? जो इतने छोटे, दुर्वल और धनहीन थे, जिनके पास अपना तन ढकने के लिए समुचित वस्त्र भी न थे, जिनके पास सूई की नोक वरावर जमीन तक न थी, वे हिंसा की शक्तियों से, संसार की ताकत से और ससार में जूझती शक्तियो की भव्यता से इतने अधिक शक्तिशाली कैसे थे? क्या कारण है कि यह छोटा-सा, नन्हा-सा, वच्चे से शरीर-वाला आदमी, जो इतना आत्मत्यागी था और स्वेच्छा से इसलिए भूखा रहता था

कि गरीवो के जीवन के ज्यादा पास रह सके, वह सारे ससार पर—उनपर जो उनका आदर करते थे और उनपर भी जो उनसे घृणा करते थे—ऐसी सत्ता कैसे रखते थे, जैसी कि वादशाह भी कभी न रख सके ?

यह इसलिए था कि उन्हे प्रशसा की चाह न थी, निन्दा की परवाह न थी। उन्हे केवल सत्य-मार्ग की परवाह थी। उन्हे केवल उन्ही आदर्शों की चिन्ता थी, जिनकी वह शिक्षा देते थे और जिनपर वह स्वय चलते थे। मनुष्य के लोभ और हिंसा से जनित वडी-से-वडी दुर्घटनाओ के समय भी, जव सारे ससार की निन्दा का रणभूमि मे झडी पत्तियो और फूलो की भाति ढेर लग जाता था, अहिंसा के आदर्श मे उनकी निष्ठा नही डिगी। उनका विश्वास था कि चाहे सारा ससार अपना वध कर डाले, चाहे सारे ससार का लहू वह जाय, लेकिन फिर भी उनकी अहिंसा ससार की नई सभ्यता की वास्तविक नीव वनेगी। उनकी मान्यता थी कि जो जीवन के फेर मे पडा रहता है वह उसे खो देता है और जो जीवन का दान करता है वह उसे पा लेता है।

१९२४ में उनका पहला उपवास, जिससे मै भी सम्वन्धित थी, हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था। उसे पूरे राष्ट्र की सहानुभूति प्राप्त थी। उनका अन्तिम उपवास भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था, लेकिन इसमें सारा राष्ट्र उनके साथ नही था। वह इतना वँट गया था, वह इतना कटुतापूर्ण हो गया था, वह घृणा और सन्देह से इतना परिपूर्ण हो गया था, वह देश के विभिन्न धर्मो की शिक्षाओ से इतना विमुख हो गया था कि एक छोटा-सा भाग ही महात्माजी को समझ सका, उनके उपवास के अर्थो को जान सका। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि इस उपवास में राष्ट्र की निष्ठा उनके प्रति बटी हुई थी। यह भी स्पष्ट था कि उनकी ही जाति के अतिरिक्त और कोई जाति ऐसी नही थी, जिसने उनको इतना नापसद किया और अपनी नाराजगी और असन्तोष को इतने निन्दनीय ढग से व्यक्त किया। हिन्दू जाति के लिए कितने दु ख की वात है कि सवसे वडा हिन्दू—हमारे युग का एकमात्र हिन्दू—जो धर्म के सिद्धान्त, आदर्शों और दर्शन का इतना पक्का और सच्चा था, एक हिन्दू के ही हाथ से मारा जाय। वास्तव मे यह हिन्दू-धर्म के लिए एक समाधि-लेख जैसी वात है कि एक हिन्दू के हाथ से, हिन्दू-अधिकारो और हिन्दू-ससार के नाम पर उस हिन्दू का वलिदान हो, जो उन सवमें सबसे महान् था। लेकिन यह कोई खास वात नही। हममें से कई के लिए, जो उन्हें भूल नही सकते, यह एक व्यक्तिगत दु ख है, जो हर दिन और हर वरस खटकेगा, क्योकि तीस साल से भी ज्यादा समय से हममें

से कुछ उनके इतने निकट रहे हैं कि हमारा जीवन और उनका जीवन एक-दूसरे का अविभाज्य अग बन गया था। वास्तव में हममें से बहुतो की निष्ठा मर चुकी है। उनकी मौत ने हममें से कुछ के अग भी काटकर अलग कर दिए है, क्योकि हमारे जीवन-तन्तु, हमारे पुट्ठे, शिरा, हृदय और रक्त—सब उनके जीवन से जुडे हुए थे।

लेकिन, जैसा कि मै कहती हूं, यदि हम हतोत्साह हो जाय तो यह कृतघ्न भगोड़ो का-सा काम होगा। अगर हम सचमुच ही यह विश्वास कर ले कि वह नही रहे, अगर हम मान ले कि क्योकि वह चले गए है, इसलिए सबकुछ खत्म हो गया है, तो हमारा प्यार और विश्वास किस काम आयगा ? अगर हम यह समझ ले कि क्योकि उनका शरीर हमारे बीच नही रहा है, इसलिए अब क्या बचा है तो उनके प्रति हमारी निष्ठा किस काम आयगी ? क्या हम उनके वारिस, उनके आत्मिक उत्तराधिकारी, उनके महान् आदर्शो के रखवाले, उनके बडे कार्य को चलाने वाले नही है ? क्या हम उस काम को पूरा करने के लिए, उसे बढाने के लिए और अपने सयुक्त प्रयासो से उनके अकेले से जो हो सकता था उससे अधिक सफल बनाने वाले नही है ? इसीलिए मै कहती हूं कि निजी शोक का समय बीत गया।

छाती पीटने और 'हाय-हाय' का वक्त बीत गया। यह समय है कि हम उठें और महात्मा गाधी का विरोध करनेवालो से कहें, "हम चुनौती स्वीकार करते है।" हम उनके जीवित प्रतीक है। हम उनके सिपाही है। हम रणोन्मत्त ससार के आगे उनके ध्वजवाहक है। हमारा ध्वज सत्य है। हमारी ढाल अहिंसा है। हमारी तलवार आत्मा की वह तलवार है, जो बिना खून बहाये जीत जाती है। भारत की जनता उठे और अपने आसू पोछे, उठे और अपनी सिसकिया खत्म करे, उठे और आशा और उत्साह से भरे। आइए, हम उनके व्यक्तित्व के ओज, उनके साहस के शौर्य और उनके चरित्र की महानता उनसे ग्रहण करे। और ग्रहण क्यो करें ? वे तो स्वयं हमें दे गए है। क्या हम अपने नेता के पद-चिह्नो पर नही चलेगे ? क्या हम अपने पिता के निर्देश को नही मानेगे ? क्या हम, उनके सिपाही, उनके युद्ध को सफल नही बनायगे ? क्या हम संसार को महात्मा गाधी का परिपूरित सन्देश नही देंगे ? यद्यपि उनका स्वर अब नही निकलेगा, तथापि ससार को—केवल संसार और अपने समकालीनो को ही क्यो, बल्कि ससार की युग-युग तक आनेवाली सन्तानो तक—उनका सन्देश पहुंचाने के लिए क्या हमारे पास लाखो-करोडो कण्ठ नही है ? क्या उनका बलिदान व्यर्थ जायगा ? क्या उनका रक्त शोक के व्यर्थ कार्य

के लिए ही बहाया जायगा ? क्या हम उस खून से संसार को बचाने के लिए उनके शाति-सैनिको के चिह्न की तरह अपने माथे पर तिलक नही लगायगे ? इसी वक्त और इसी जगह पर, मैं सारे ससार के आगे, जो मेरी कम्पित वाणी सुन रहा है, अपनी तरफ से और आपकी तरफ से, जिस प्रकार मैंने ३० साल से भी पहले शपथ ली थी, अमर महात्मा की सेवा का व्रत ग्रहण करती हू ।

मृत्यु क्या है ? मेरे पिता ने, अपनी मृत्यु के ठीक पहले, जब वे मरणोन्मुख थे और मौत की छाया उनपर गिर रही थी, कहा था, "न जन्म होता है, न मृत्यु होती है । केवल आत्मा सत्य की उच्चतर अवस्थाओ को खोजती रहती है ।" महात्मा गाधी, जो इस संसार मे सत्य के लिए ही रहते थे, उस सत्य की उच्चतर अवस्था में परिवर्तित हो गए है, जिसे वे खोजते थे, यद्यपि यह कृत्य हत्यारे के हाथो हुआ। क्या हम उनका स्थान नही लेगे ? क्या हमारी सम्मिलित शक्ति इतनी नही होगी कि हम ससार को दिए उनके महान् सन्देश को फैला सकें तथा उसका अनुकरण कर सकें ? यहापर मै उनके सबसे साधारण सैनिको में से एक हू । लेकिन मै जानती हूं कि मेरे साथ जवाहरलाल नेहरू जैसे उनके प्रिय शिष्य, उनके विश्वासपात्र अनुगामी और मित्र वल्लभभाई पटेल, मसीह के हृदय में सन्त जॉन की भाति राजेंद्र बाबू, तथा वे सहयोगी भी है, जो घडी भर की सूचना पर उनके चरणो में अन्तिम श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए भारत के कोने-कोने से दौड आये है । क्या हम सब उनके सन्देश को पूरा नही करेंगे ? उनके अनेक उपवासो के समय, जिनमे मुझे उनकी सेवा करने का, उन्हें सात्वना देने का, उन्हे हँसाने का—क्योकि उन्हें अपने मित्रो की हास्योषधि की सबसे अधिक आवश्यकता थी—सौभाग्य प्राप्त हुआ। मै इस बात पर आश्चर्य किया करती थी कि अगर कही सेवाग्राम में उनके प्राण निकले, नोआखाली मे उनकी देह छूटे, कही किसी दूर जगह पर उनकी जीवन-लीला समाप्त हो तो हम उन तक कैसे पहुच सकेंगे ? इसलिए यह ठीक और उचित ही है कि वे राजाओ की नगरी मे, हिन्दू साम्राज्यो की प्राचीन स्थली में, जिस स्थल पर मुगलो की भव्यता का निर्माण हुआ, उस स्थल में, जिसको विदेशी हाथो से छीनकर उन्होने भारत की राजधानी बनाया, उसी स्थल में, वह स्वर्गवासी हुए । यह ठीक ही है कि उनका शरीरान्त दिल्ली मे हुआ । यह भी ठीक है कि उनकी अन्तिम क्रिया मृत सम्र टो के बीच, जो दिल्ली मे दफनाए गए थे, हुई, क्योकि वे राजाओ के राजाधिराज थे । और यह भी ठीक ही है कि वे, जो शान्ति के अवतार थे, एक महान् योद्धा के आदर और सम्मान के साथ श्मशान भूमि में ले जाए गए

क्योकि उन सभी योद्धाओ से, जो युद्ध-भूमि में अपनी सेनाए लेकर गए थे, यह छोटा-सा व्यक्ति कही अधिक वडा वहादुर और विजेता था। दिल्ली आज सात साम्राज्यो की ऐतिहासिक दिल्ली नही है। यह सवसे महान् क्रान्तिकारी था, जिसने अपने पराभूत देश का उद्धार किया और उसे उसकी स्वतत्रता और उसकी ध्वजा दी, केन्द्र और विश्राम-भूमि दी। भगवान्! मेरे स्वामी, मेरे नेता, मेरे बापू की आत्मा शान्ति से विश्राम न करे, वल्कि उनकी अस्थियो में जबरदस्त जीवन आए और चन्दन की जली लकडियो की राख और उनकी अस्थियो के चूर्ण मे वह जीवन और उत्प्रेरणा उत्पन्न हो कि उनकी मृत्यु के वाद सारा भारत स्वतन्त्रता की यथार्थता में पुनर्जीवित हो उठे।

मेरे बापू, सोओ मत! हमें मत सोने दो। हमें अपने व्रत से मत डिगने दो। हमे—अपने उत्तराधिकारियो को, अपनी सन्तानो को, अपने सेवको को, अपने स्वप्नो के अभिरक्षको को, भारत के भाग्य-विधाताओ को—अपना प्रण पूरा करने की शक्ति दो। तुम, जिनका जीवन इतना शक्तिशाली था, अपनी मृत्यु से भी हमें ऐसा ही शक्तिशाली वनाओ, जो उद्देश्य तुम्हें सवसे अधिक प्रिय था और उसके लिए महानतम् शहादत में तुमने नश्वरता को पीछे छोड दिया है।

: ४१ :

एक महान् मानवतावादी

सी० वी० रमन्

तनाव के दिनो मे मानवी व्यवहार मौसम-विज्ञान के कई दृष्टात उपस्थित करता है। सचेत प्रत्यावलोकक खाडी मे वनते अवनमन[1] को देखकर यह चेतावनी दे देता है कि तूफान उठ रहा है और किनारे की तरफ वढ रहा है। लेकिन स्थान और समय के बारे में प्रत्यावलोकक की चेतावनी चाहे कितनी ही सही क्यो न हो, उत्पात को रोकने या टालने और उससे होनेवाली हानि को कम करने के लिए विशेष कुछ नही किया जा सकता। पिछले कतिपय महीनो मे घटनेवाली घटनाए भी वास्तव में हमारे देश की छाती पर चलने वाले अधड की तरह है, जो अपने पीछे इन्सानी जिंदगी और वरवाद खुशहाली के खंडहर छोड गये है। इस खेदजनक दौर की चरम

१· डिप्रेशन—वायुमडल के दाव मे कमी।

सीमा हमारे बीच से कुछ दिन पहले एक ऐसे व्यक्ति का चला जाना है, जिसने अपने महान् मानवी गुणो से और मानव-कल्याण के निमित्त अपनी अपूर्व निष्ठा से अपने समकालीनो की दृष्टि मे अपने लिए एक अनुपम स्थान बना लिया था। मेरी समझ मे इतिहास के फैसले की पूर्व कल्पना करने और महात्मा गाधी के जीवन तथा शिक्षाओ का स्वय हमारे देश या एशिया या विश्व के भविष्य पर प्रभाव आकने की कोशिश करने मे कोई संगति नही है। यह सब भविष्य की ओट मे है। लेकिन यदि हमे, जो उनके द्वारा स्वतत्र कराये गये भारत के निवासी है, अपने भाग्य पर कोई भी विश्वास है, यदि हममे वर्त्तमान उथल-पुथलो पर विजय पाने की क्षमता है और यदि हममें अपने लिए एक महान् भविष्य का निर्माण करने की शक्ति है, तो निस्सदेह महात्मा गाधी के जीवन-कार्य और भारत के एक बार फिर स्वतत्र देश के रूप मे सामने आने मे उनके भाग को हम कभी नही भुला सकते।

स्वय मेरे सक्रिय जीवन के गत चालीस वर्ष एक ऐसे कार्यक्षेत्र में लगे रहे है, जो स्वाधीनता-सग्राम से, जो भारत मे उस समय पूरे जोर पर था, खासा कटा हुआ था। मैंने उस सघर्ष में कोई सक्रिय भाग नही लिया और न मैंने उसमे सलग्न नेताओ से सबध ही स्थापित करने की कोशिश की। लेकिन महात्माजी उन सब व्यक्तियो से, जिनसे मेरा कभी भी परिचय हुआ, स्पष्ट रूप से इतने भिन्न थे कि जब कभी मैंने इनके दर्शन किए, उनसे मुलाकात की, या उनकी वाणी सुनी, वह अवसर मेरे मस्तिष्क पर अच्छी तरह से अकित हो गया और ऐसा अनेक बार हुआ। पहला अवसर था १९१४ का नाटकीय दृश्य, जब हिन्दू विश्वविद्यालय के शिला-न्यास-समारोह के अवसर पर उन्होने बनारस मे एकत्र विराट सभा मे भाषण दिया था। उस विराट समुदाय ने बडे ध्यान से उनकी उस भर्त्सना को सुना जो उन्होने रजवाडो की खुली फिजूलखर्ची की जिन्दगी और अपने इलाको में रहने वाली जनता की अवहेलना के लिए की। इस प्रकार झाडे जानेवाले रजवाडो में से कई वही मौजूद भी थे। उनमे से सभी इस भर्त्सना के लायक थे या नही, यह विवाद का विषय हो सकता है; लेकिन उनमे से प्रत्येक ने स्वाभाविक रूप से उनके कथन का बुरा माना और वे सभा-भवन से उठकर चले गए। उनके पीछे-पीछे डाक्टर एनी बीसेण्ट भी, जिन्होंने उनकी हत भावनाओ को शात करने की व्यर्थ चेष्टा की, चली गईं। जैसे-जैसे समय गुजरता गया और जीवन और उसकी समस्याओ पर गाधीजी की शिक्षाए अधिक प्रचलित होती गईं, देशवासियो पर उनका प्रभाव तेजी के साथ बढने लगा, और शीघ्र ही यह हर किसीको साफ हो गया कि स्वतंत्रता के इस महान्

संघर्ष में वे भारत के सबसे बड़े नेता थे। यह भी ज्यादा-से-ज्यादा साफ होता गया कि उनके प्रभाव का रहस्य यह था कि उनका दृष्टिकोण मूलत मानवतावादी और व्यावहारिक था। दूसरे शब्दो में वे मानव-जीवन और मनुष्य के सुख के अभिलाषी थे और विज्ञान या अर्थशास्त्र या राजनीति जैसे मानव-स्पन्दनरहित माने जाने वाले विषयो में उनकी कोई दिलचस्पी नही थी। उनके इस दृष्टिकोण ने स्वाभाविकतया उन्हे जन-साधारण का प्रिय बना दिया; चाहे यह बात उन लोगो को, जिनके दिमागो मे ये विषय सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक ऊचा स्थान रखते है, बहुत अच्छी न लगी हो। इसमें कोई सदेह नही कि गाधीजी के उत्सर्ग पर ससार के हर कोने में जो स्वेच्छित श्रद्धाजलिया उन्हे अर्पित की गई है, वे वास्तव में महात्मा गाधी के अपने मूलभूत मानवतावाद की स्वीकारोक्ति है, जिसने देश, विचार और जाति की सीमाओ को लाघ दिया था। भूतकाल में एशिया ने ऐसे अन्य महान् मानवतावादियो को जन्म दिया है, जिनका जीवन मानवता के जीवन और मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड गया है। मै इस बात को दुहराता हू कि कोई व्यक्ति इतिहास के फैसले की पूर्व-कल्पना नही कर सकता। फिर भी यह सत्य है कि इतिहास कभी-कभी अपनेको दुहराता है और इस सबध मे भी यह बात सत्य हो सकती है।

: ४२ :

गांधीजी की देन

गणेश वासुदेव मावलकर

त शुक्रवार को हत्यारे के हाथो गाधीजी पर हुआ वार अप्रत्याशित था और हम सब उससे स्तब्ध रह गए। जब कुछ मिनटो के बाद बिडला-भवन में मैंने उनके शात और गतिहीन नश्वर अवशेष देखे तो मै अपनी आखो पर विश्वास न कर सका। उस समय भी यह मेरी आतरिक इच्छा थी कि वे अपनी अतिम निद्रा से जग जाय, और सदा हमारे साथ रहे, सदा की भाति प्यार करें, प्रेरणा देते रहें, पथ-प्रदर्शन करते रहें और मुस्कराते रहें। लेकिन अपने प्रिय और निकट व्यक्तियो के बारे में इस प्रकार की इच्छाए कभी पूरी नही होती। हमें काया की नश्वरता के दर्शन का आसरा लेना और दैवी इच्छा के आगे अपनेको छोड देना पड़ता है।

लेकिन क्या बापू सचमुच मर गए ? ऐसा कौन कहता है ? इस समय, बात करते हुए भी मुझे उनके सजीव स्पर्श का अनुभव हो रहा है। वह मरे नही, वह कभी मर नही सकते। वे हमारे हृदय मे जीवित है और हमे हमारी आकाक्षाओ को प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर रहे है।

भारत मे वे जिस काल मे रहे, उन लगभग चौतीस वर्षो मे हमारे देश में वे कोरी क्राति ही क्यो, कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन भी लाए। उन्होने हमें आदमी बनाया और जीवन के हर क्षेत्र में उन्होने हमें सचेत किया। हमारे जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है, जिसमें हम उनके हाथ या प्रभाव का अनुभव न कर सकें। उन्होने हमारी राजनीति, हमारे अर्थशास्त्र और हमारी शिक्षा को नया दृष्टिकोण प्रदान किया और हमारे सार्वजनिक जीवन मे प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिक रूप देने की चेष्टा की। उन्होने, जो सत्य और अहिंसा के मूर्त रूप थे, अपने उद्देश्य मे अडिग विश्वास के साथ अपने सर्वस्व का बलिदान कर दिया। वे, जो इस युग के सबसे बडे, सबसे महान् व्यक्ति थे अनादि काल तक हमारे मानवी दिलो में जीवित रहेंगे। मेरे पास उनके प्रति अपना आदर, प्रेम, अनुभव और शोक प्रकट करने के लिए शब्द नही है।

गाधीजी जाति, विचार, वर्ण, धर्म या रग के भेद-भाव के बिना सम्पूर्ण मानवता के वास्तविक "बापू"—पिता थे। हमें उनके योग्य बनकर उनका आदर करना चाहिए। उनके लिए हम जो सर्वोत्तम स्मारक बना सकते है, वह है अपने जीवन और आचरण को उन आदर्शो के अनुसार ढालना, जिनके लिए वे जिये और मरे।

मेरी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा हमेशा हमारे साथ रहे और हमे हमारे लक्ष्य तक ले जाय।

: ४३ :

सर्वश्रेष्ठ मानव

नरेन्द्रदेव

ससार के सर्वश्रेष्ठ मानव तथा भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के प्रति उनके निधन पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने का अवसर इस व्यवस्थापिका

सभा को आज ही प्राप्त हुआ है। अपने देश की प्रथा के अनुसार तथा लोकाचार के अनुसार हमने तेरह दिन तक शोक मनाया। यह शोक महात्माजी के लिए नही था, क्योकि जो सर्वभूतहित मे रत है और जो मानव-जाति की एकता का अनुभव अपने जीवन में करता रहा हो, उसको शोक कहा, मोह कहा ? यदि हम रोते है, विलखते है तो अपने स्वार्थ के लिए विलखते है, क्योकि आज हम इस वात का अनुभव कर रहे है कि हमने अपनी अक्षय निधि खो दी है, अपनी चल-सम्पत्ति को गवा दिया है।

महात्माजी इस देश के सर्वश्रेष्ठ मानव थे, इसीलिए हम उनको राष्ट्रपिता कहते है। हमारे देश मे समय-समय पर महापुरुषो ने जन्म लिया है और इस जाति को पुनरुज्जीवित करने के लिए नूतन सदेश का सचार किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि अन्य देशो मे महापुरुष उत्पन्न हुए है, लेकिन मेरी अल्प वुद्धि में महात्मा गाधी जैसा अद्वितीय वेजोड महापुरुष केवल भारतवर्ष मे ही जन्म ले सकता था और वह भी बीसवी शताब्दी में, अन्यत्र कही नही, क्योकि महात्मा गाधी ने भारतवर्ष की प्राचीन सस्कृति को, उसकी पुरातन शिक्षा को परिष्कृत कर युग-धर्म के अनुरूप उसको नवीन रूप प्रदानकर, उसमें वर्तमान युग के नवीन सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का पुट देकर एक अद्भुत एव अनन्यतम सामजस्य स्थापित किया। उन्होने इस नवयुग की जो अभिलाषाए है, जो आकांक्षाए है, जो उसके महान् उद्देश्य है, उनका सच्चा प्रतिनिधित्व किया है। इसलिए वे भारतवर्ष के ही महापुरुष नही थे, अपितु समस्त ससार के महापुरुष थे। यदि कोई यह कहे कि उनकी राष्ट्रीयता सकुचित थी, तो वह गलत रहेगा। यद्यपि महात्मा गाधी स्वदेशी के व्रती थे, भारतीय सस्कृति के पुजारी थे तथा भारतीय राष्ट्रीयता के प्रवल समर्थक थे, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता उदारता से पूर्ण थी, ओतप्रोत थी। वह संकुचित नही थी। सकुचित राष्ट्रीयता वर्तमान समाज का एक वडा अभिशाप है, किन्तु महात्माजी का हृदय विशाल था। जिस प्रकार भूकम्प-मापक यंत्र पृथ्वी के मृदु-से-मृदु कप को भी अपने में अकित कर लेता है, उसी प्रकार मानव-जाति की पीडा की क्षीण-से-क्षीण रेखा भी उनके हृदय-पटल पर अकित हो जाती थी। हमारा देश समय-समय पर महापुरुषो को जन्म देता रहा है और मै समझता हूं कि इस व्यवसाय मे भारत सदा से कुशल रहा है, अग्रणी रहा है। पतितावस्था मे भी, गुलामी की हालत मे भी, भारतवर्ष ही अकेला ऐसा देश रहा है, जो जगद्वन्द्य महापुरुषो को जन्म दे सका है। हमारे देश में भगवान् वुद्ध हुए तथा अन्य धर्मो के प्रवर्तक हुए, किन्तु सामान्य

जनता के जीवन के स्तर को ऊचा करने में कोई भी समर्थ नही हो सका। यह यथार्थ है कि पीडित मानवता के उद्धार के लिए नूतन धार्मिक सदेश उन्होने दिये थे, समाज के कठोर भार को वहन करने की समर्थता प्रदान करने के लिए उन्होने नए-नए आश्वासन दिये थे, विक्षुब्ध हृदयो को शान्त करने के लिए पारलौकिक सुखो की आशाए दिलाई थी, लेकिन सामान्य जीवन के जो कठोर सामाजिक बधन है, जो जनता के ऊपर कठोर शासन चल रहा है, जो सामाजिक और आर्थिक विषमताए है, दीनो और अकिंचनजनो को भाति-भाति के जो तिरस्कार और अवहेलनाए सहनी पडती है, इन सब समस्याओ का हल करने वाला यदि कोई व्यक्ति हुआ तो वह महात्मा गाधी है। उन्होने ही सामान्य जीवन में लोगो के जीवन के स्तर को ऊचा किया। उन्होने जनता मे मानवोचित स्वाभिमान उत्पन्न किया। उन्होने ही भारतीय जनता को इस बात के लिए सन्मति प्रदान की कि वह साम्राज्यशाही के भी विरुद्ध विद्रोह करे और यह भी पाशविक शक्तियो का प्रयोग करके नही, बल्कि आध्यात्मिक बल का प्रयोग करके हुआ। उनकी अहिंसा बेजोड थी। भगवान् बुद्ध ने कहा था, "अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।" अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए। उनकी अहिंसा का सिद्धान्त केवल व्यक्तिगत आचरण का उपदेशमात्र न था, किन्तु सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिए अहिंसा को एक उपकरण बनाना और राजनैतिक क्षेत्र में अपने महान् ध्येय की प्राप्ति के लिए उसका सफल प्रयोग करना महात्मा गाधी का ही काम था और चूकि वे ससार मे अहिंसा को प्रतिष्ठित करना चाहते थे, इसलिए उनकी अहिंसा की व्याख्या भी अद्भुत, बेजोड और निराली थी। उनकी अहिंसा की शिक्षा केवल व्यक्तिगत आचरण की शिक्षा नही है। उनकी अहिंसा की व्याख्या वह महान् अस्त्र है जो समाज की आज की विषमताओ का, जो वैमनस्य और विद्वेष के कारण है, उन्मूलन करना चाहती है। अहिंसा के ऐसे व्यापक प्रयोग से ही अहिंसा प्रतिष्ठित हो सकती है।

सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूरकर, मनुष्य को मानवता से विभूषित कर, आत्मोन्नति के लिए सबको ऊचा उठाकर जाति-पाति और सम्प्रदायो को तोडकर ही हम अहिंसा की सच्चे अर्थो मे प्रतिष्ठा कर सकते है। यदि किसीने यह शिक्षा दी तो गाधीजी ने। इसलिए यदि हम उनके सच्चे अनुयायी होना चाहते है तो समाज से इस विषमता को, इस ऊच-नीच के भेद-भाव को, इस अस्पृश्यता को, समाज के नीचे-से-नीचे स्तर के लोगो की दरिद्रता को और आर्थिक विषमता को, समाज से सदा के लिए उन्मूलित करे। तभी हम सच्चे अहिंसक

कहला सकते है। यह महात्मा गाधी की ही विशेषता थी।

हमारे देश की यह प्रथा रही है कि महापुरुष के निधन के बाद हमने उसको देवता की पदवी से विभूषित किया, समाधि और मन्दिर बनाए। उसकी मूर्ति को मन्दिरो मे प्रतिष्ठित किया, या मजार बनाकर उसकी समाधि या मजार पर प्रेम और श्रद्धा के फूल चढाकर हम सन्तुष्ट हो गए। इसी प्रकार से भारतवासियो ने अनेक महापुरुषो की केवल उपासना और आराधना करके उनके मूल उपदेशो को भुला दिया। मै चाहता हूं कि हम आज महात्मा गाधी को देवत्व की उपाधि न दें, क्योकि देवत्व से भी ऊचा स्थान मानवता का है। मानव की आराधना और उपासना समाधि-गृह और मजार बनाकर, उनपर फूल चढा कर, नही होती। दीपक, नैवेद्य से उसकी पूजा नही होती। मानव की आराधना और उपासना का प्रकार भिन्न है। अपने हृदयो को निर्मल कर उसके बताए हुए मार्ग पर चलकर ही उसकी सच्ची उपासना होती है। यदि हम चाहते है कि हम महात्मा गाधी के अनुयायी कहलाए तो हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि जनता में अपने प्रेम और श्रद्धा के भावो का प्रदर्शन करने के साथ-साथ हम उनका जो अमर सन्देश है, उसपर अमल करे। उनका सन्देश भारतवर्ष के लिए ही नही, वरन् वर्तमान ससार के लिए है, क्योकि आज ससार का हृदय व्यथित है, दु खी है। ऐसे अवसर पर ससार को एक आदेश और उपदेश की आवश्यकता है। महात्माजी का बताया हुआ उपदेश जीवन का उपदेश है, मृत्यु का सन्देश नही है। और जो पश्चिम के राष्ट्र आज सकुचित राष्ट्रीयता के नाम पर मानव-जाति का बलिदान करना चाहते है, जो सभ्यता और स्वाधीनता का विनाश करना चाहते है वे मृत्यु के पथ पर अग्रसर हो रहे है, वे मृत्यु के अग्रदूत है। यदि वास्तव मे हम समझते है कि हम महात्माजी के अनुयायी है तो हमारी सबकी सच्ची श्रद्धाजलि यही हो सकती है कि हम इस अवसर पर शपथ लें, प्रतिज्ञा करे कि हम आजीवन उनके बताए हुए मार्ग पर चलेंगे, जो जनतन्त्र का मार्ग, समाज मे समता लाने का मार्ग, विविध धर्मो और सम्प्रदायो में सामजस्य स्थापित करने का मार्ग है, जो छोटे-से-छोटे मानव को भी समान अधिकार देता है, जो किसी मानव का पक्ष नही करता, जो सबको समान रूप से उठाना चाहता है। यदि महात्माजी के बताए हुए मार्ग का हम अनुसरण करते तो एशिया का नेतृत्व हमारे हाथो मे होता और हमारा देश भी दो भूखण्डो में विभाजित न हुआ होता। हम एशिया का नेतृत्व करेंगे, किन्तु इस गृह-कलह के कारण हमारा आदर विदेशो में बहुत घट गया है। इसलिए यदि हम उस नेतृत्व को

ग्रहण करना चाहते है तो हमको अपने देश मे उस सन्देश को कार्यान्वित करना होगा। भारतवर्ष में बसनेवाली विविध जातियो मे एकता की स्थापना करके हम को ससार को दिखा देना चाहिए कि हम सच्चे मार्ग पर चल रहे हैं। तभी सारा ससार हमारा अनुसरण करेगा।

महात्माजी के लिए जो सोचते है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति नही थे, उनका काम भारतवर्ष तक ही सीमित था, यह उनकी भूल है। भारतवर्ष तो उनकी प्रयोगशाला मात्र था। वह समझते थे कि यदि सत्य, अहिंसा से वह देश में सफलता प्राप्त कर सकेगे, तो उनका सदेश सारे ससार मे फैलेगा।

मै महात्माजी को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूं और प्रार्थना करता हू कि मुझमे शक्ति पैदा हो कि मै उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण किसी-न-किसी अश मे कर सकू।

: ४४ :

अकल्पनीय घटना

कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी

गाधीजी के बारे में कुछ कहने की मेरी इच्छा नही होती। उन्हें उनके अतिम क्षणो में देखने के बाद मेरी पहली मूर्च्छा के समय से मेरे मस्तिष्क ने सदमे के विरुद्ध एक रक्षात्मक कवच-सा तैयार कर लिया है। उनका देहावसान अभी भी अस्वाभाविक-सा लगता है। मै जानता हू कि उनका देहात हो गया है, फिर भी मै इसकी कल्पना भी नही कर सकता कि वे अब नही रहे। मुझमें कुछ ऐसी सतत अचेतन चेतना व्याप्त है कि यदि मै बिडला-भवन मे अपने कमरे की सीढी पार कर बापू के कमरे मे चला जाऊ तो मुझे वही प्रेमभरी मुस्कान मिलेगी, जो वृहस्पतिवार की शाम को, जब मै उनके कमरे मे गया, तब उन्होंने प्रदान की थी। कई बार उन्होंने मुझे इस बात का गौरव भी प्रदान किया था कि मै सत्य और अहिंसा पर अपने विचार उनके सामने रख सकू, क्योकि मै उनके जीवन को योगसूत्र और भगवद्गीता की साक्षात् व्याख्या मानता था। मैंने वृहस्पतिवार को मिले अवसर का उपयोग १९४५ में अधूरी छूटी एक वार्ता को फिर से प्रारम्भ करके किया।

"बापू" मैंने कहा, "मै अपनी बात आपको एक विनम्र बधाई देने के साथ

शुरू करूगा ।"

"बधाई किसलिए ?" उन्होने पूछा ।

इसपर मैंने योगसूत्र और टाल्स्टाय विषयक अहिंसासबधी हमारी वार्ता की उन्हे याद दिलाई। मैंने १९४५ में उनसे जो कहा था, उसका उन्हे स्मरण कराया कि १९४२ का अहिंसात्मक आदोलन अहिंसा की कसौटी पर खरा नहीं उतरा, क्योकि इससे शत्रु मे क्रोध उत्पन्न हुआ, प्रेम नही, और पातजलि ने तो कहा था कि यदि कोई व्यक्ति अहिंसा की सिद्धि कर ले तो अन्य व्यक्ति उससे प्रेम करने लगते है ।

"इस बार तो कसौटी खरी उतरी।" मैंने बात जारी रखते हुए कहा। "इस बार जब आपने अनशन किया तो मुसलमान, जो इतने बरसो से आपसे घृणा करते थे, आपसे प्रेम करने लगे। हिन्दुओ ने, जो आपसे प्रेम तो करते ही थे, आत्म-सयम सीखा।" फिर मैंने उनके आगे हैदराबाद के मामले का चित्र खीचा। इसी समय राजकुमारी अमृतकौर भी हमारी बातचीत मे शामिल हो गई ।

अगले दिन मिलने की आशा के साथ मै उनके पास से ७ बजे उठ आया। लेकिन अगले दिन मै राज्य-मत्रालय मे था, जब शाम को ५-२५ पर बिडलाजी का एक ड्राइवर यह सदेश लेकर आया कि गाधीजी पर गोली चलाई गई है। मै इसपर विश्वास न कर सका—शाति-पुरुष को कौन मार सकता है ?

मै टेलीफोन करने के लिए दौडा। सूचना की पुष्टि हो गई। मै अवाक् हो, कार मे बैठ बिडला-भवन भागा। मेरा दिमाग चकरा रहा था।

मै सीधा अदर उनके कमरे मे जा घुसा। वे अपने रोजाना के बिस्तर पर लेटे हुए थे। मनु, आभा तथा अन्य लडकिया उनके सिर के पास थी। शोकाकुल, पर मजबूत सरदार, पडितजी पर, जो रोकते थे, हाथ रक्खे बैठे थे। मै कर्नल भार्गव की ओर जो बगल मे ही खडे हुए थे, आकृष्ट हुआ, मूक उत्तर मे उन्होने अपना सिर हिलाया। निर्दय, भयावह मृत्यु ने गाधीजी को अपने कडे शिकजे मे कस लिया था। मै फूट पडा। गाधीजी जा चुके थे। मै अनाथ था।

एक और डाक्टर आए और चादर हटाकर उन्होंने अपना स्टेथसकोप लगाया। मैंने रुधिर बहते तीन घाव देखे। मेरी दुखी अतरात्मा से सिसकियाँ फूट पडी।

मनु ने भगवद्गीता का पाठ आरभ कर दिया। हर शब्द के बाद उसकी आवाज टूट जाती थी। मणि बहन, प्यारेलाल और मै भी पाठ मे शामिल हो गए। गीता का पाठ करते समय मेरे सामने एक झलकी आई। श्रीकृष्ण एक पथ-विमुख

तीर से मारे गए थे। सुकरात की मौत ज़हर से हुई थी। मसीह् को सूली पर चढाया गया था। गाधीजी गोलियो से मरे। चारो शिक्षको का अत अस्वाभाविक रूप से हुआ। पर शायद यह एक महान् जीवन का समुचित अत ही था। फिर, इनमे से भी सुकरात और ईसा मसीह् की मौत एक विरोधी समाज के हाथो अपराधियो के रूप मे हुई थी। श्रीकृष्ण एक अज्ञात शिकारी द्वारा मारे गए। गाधीजी का अत शाति के और इसलिए धरती पर मनुष्य की नियति के एक शत्रु के हाथो हुआ।

उन्होने भारत को एक राष्ट्र के रूप मे सगठित किया। उन्होने भारत को एक राष्ट्रीय भाषा दी। उन्होने भारत के लिए एक नई परपरा कायम की। उन्होने एक शासनिक निगम प्रस्थापित किया। उन्होने राष्ट्र के स्वाधीनता-सग्राम का नेतृत्व किया। उन्होने उसके स्वतत्रता-जन्म की अध्यक्षता की। जब वे मरे तो राष्ट्र ने उनकी एक स्वर से वदना की। मरते समय वे सम्राटो के समान थे। उनकी वाणी से भारत की भारी भरकम सरकार हिल जाती थी। और यह सब उन्होने अपने शत्रु का बाल भी बाका किये बिना अक्षरश' एक सच्चे लोकतत्रवादी के रूप मे प्राप्त किया।

लेकिन उनकी ये राजनैतिक सिद्धिया, जो उन्हें ससार के समस्त राजनैतिक उद्धारको के आगे खडा कर देती है, उनकी नैतिक विजयो के आगे कुछ भी नही। उन्होने दासो को मनुष्य बनाया। उन्होने भारतीय नारी-समाज को स्वतत्र किया। उन्होने समाज से अस्पृश्यता का विनाश किया। उन्होने उन फौलादी दीवारो को तोड दिया, जिनमे हमारा समाज बधा हुआ था। उन्होने 'पारलौकिकता' को, जिसका भूत भारत पर सवार था, समाप्त कर दिया। उन्होने हीन भावना के शाप को, जो हमारी सामूहिक चैतन्यता पर गत ९०० वर्ष के विदेशी आधिपत्य से हावी हो गया था, समाप्त किया। उन्होने भारतीयो का अपनी सास्कृति मे अभिमान और अपनी शक्ति मे विश्वास पुन जाग्रत किया—जिसे और जिसके अतिरिक्त अपनी आत्मा को भी वे खो चुके थे। उन्होने भारत की अविनाशी सस्कृति को पुन प्रतिष्ठित किया और उसे विश्व-विजय के पथ पर फिर से आरूढ किया। वे नव-जीवन के दूत थे।

लेकिन यही सबकुछ नही था। उन्होने स्वयं अपने भीतर आर्य-सस्कृति के तत्त्वो की सिद्धि करने और उन्हें नव-प्राण देने की चेष्टा की। मोह, भय और क्रोध पर श्रेष्ठता प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को सुगठित करने के लिए उनका प्रयास जीवन भर चलता रहा। इस तथ्य के वे साक्षात् प्रमाण थे कि नैतिक व्यवस्था

एक सजीव शक्ति है। उन्होने स्वयं अपने में अहिंसा की सिद्धि की और शत्रु उनके पास अपना प्यार लिये आए। उन्होने सत्य की सिद्धि की और उनके कार्यो का परिणाम चिरस्थायी हुआ। उन्होने यौन-सवधो का त्याग कर दिया और वे अक्षुण्ण स्फूर्तिवान् रहे। उन्होने धन का मोह छोड दिया और उनके महान् कार्यों के लिए धन विन-मागे ही आता गया। उन्होने सम्पत्ति से नाता तोड दिया था और वे जीवन का अर्थ जान गए थे। वे ईश्वर मे लीन थे और ईश्वर उनमे लीन था।

वे ईश्वर के एक उपकरण के रूप मे ही आए, जिये और मरे। उनका जीवन और उसका प्रत्येक क्षण उसकी प्रार्थना में गया। उनका देहात तो अपना कर्त्तव्य पूरा करने के वाद उसकी आज्ञा के पालन में तत्क्षण प्रस्थान मात्र था। और उनका अत भी अद्भुत था। क्योकि एक पूरा राष्ट्र दु खी था और सारा ससार शोकग्रस्त और सारा जमाना उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित कर रहा था।

राजाधिराज, दूत, योगी, और स्वय मेरे लिए मेरे पिता और पथ-पदर्शक! हजारो और लोगो के समान उनके विना मेरा जीवन सूना है।

: ४५ :

सबसे बड़ा काम

जे० बी० कृपालानी

आज हमारे दिल भरे हुए है और अपने इतिहास की सबसे वडी ट्रेजेडी के अवसर पर हमारे लिए अधिक कहना कठिन है। शारीरिक रूप से महात्माजी हमारे वीच नही रहे, लेकिन अगर हम लोग उनका अनुसरण ही करते रहे और उस रोशनी में, जिससे उन्होने हमारे पथ को प्रकाशित कर दिया है, काम करते रहे तो वे आत्मिक रूप में हमारे साथ रहेगे। उनकी मृत्यु से यही वात सिद्ध होती है कि ससार अभी उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धात के लिए और जिस प्रकार उसे उन्होने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन पर लागू किया है, उसके लिए तैयार नही है। सत्य और अहिंसा का रास्ता अभी भी, जैसाकि वह इतिहास में सदा रहा है, शहादत का रास्ता है।

नैतिक कानून मे उनके विश्वास की सबसे वडी परीक्षा हाल की घटनाओ द्वारा हुई थी, फिर भी वे परीक्षा में खरे उतरे। जीवन की सबसे काली घडी में भी उनका विश्वास नही डिगा। जो लोग उनके समझे जाते है, उनको चाहे कुछ भी क्यो

न हो जाय, उसका बदला नही लिया जाना चाहिए। कोई प्रत्याक्रमण नही होना चाहिए। मानसिक हिंसा तक नही होनी चाहिए। हिन्दू और सिख घरो को चाहे कुछ हो जाय, भय या हिंसा के भय से खाली किये किसी मुस्लिम मकान पर कब्जा नही किया जाना चाहिए। खाली किये गए मुस्लिम गाव तक विना कब्जा किये खाली रहने चाहिए। पाकिस्तान से अपहृत मुस्लिम महिलाओ को सुरक्षा और आदर के साथ वापस लौटा देना चाहिए। चाहे पाकिस्तान हिन्दू और सिख महिलाओ के साथ ऐसा न करे। गाधीजी का सदा से यह मत रहा कि नैतिक कानून की वदिश यही है कि व्यक्ति अपने और अपनी जाति के अपराधो को वडा माने और दूसरो और दूसरी जातियो के अपराधो को छोटा। इसी प्रकार नैतिक कानून को पूर्णत अमल मे लाया जा सकता है, और इस प्रकार अमल मे लाने का परिणाम सदा अच्छा ही होगा। नैतिक कानून के अनुसार कार्य करनेवाले व्यक्ति और जाति कभी दु ख से नही रह सकते। धर्म की विजय अवश्यम्भावी है—'यतो धर्मस्ततो जय.'।

उन्होने ससार को दिखा दिया कि अपनी जाति के प्रति प्रेम मानवता के प्रति प्रेम से कभी असगत नहीं हो सकता। उन्होने कभी किसी हिन्दू या मुसलमान या किसी अन्य जाति के सदस्य या भारतीय व अभारतीय मे भेद नही किया। वे केवल मानवता को मानते थे, एक ही कानून को मानते थे और वह कानून नैतिक कानून था, जिसके साथ विश्व बँधा तथा सम्बद्ध है।

आज हमारे सामने, जो उन्हे अपना शिक्षक मानते थे, और उनसे जो थोड़ी-वहुत अच्छाइया हम लोगो मे है, उन्हे ग्रहण करते थे, सबसे बडा काम अपनी कतारें बाँधने, सुसगठित होने और उनकी भावना के अनुसार काम करने और उनके सपने के स्वराज्य को लाने का है, जिसकी मोटी रूप-रेखा वनाने का ही उन्हे समय मिल पाया था। उनके आशीर्वाद हमारे साथ रहे और भगवान् हमे वह शक्ति और ईमानदारी प्रदान करे कि हम उनके मिशन को, जिसका सवध किसी खास विचार, संप्रदाय या देश से न होकर समस्त मानवता से था, आगे ले जा सके।

: ४६ :

हम अनुयायियों का कर्त्तव्य

राजकुमारी अमृतकौर

पलक झपकते-झपकते ही हमारे सबसे बडे तथा सबसे प्रिय नेता, हमारे मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक, हमसे अलग कर दिये गए। नेता से अधिक वे हम सबके पिता-से थे। हम उन्हे बापू यो ही नही कहते थे। आज सचमुच हम अनाथ है।

हमारे इतिहास के इस नाजुक दौर के समय उनकी मृत्यु का मूल्याकन करना असभव है। मुझे विश्वास है कि दिन-प्रति-दिन हम उनके मार्ग-दर्शन के अभाव का अनुभव करेगे। उनके दोष-रहित नेतृत्व में हमने राजनैतिक स्वतत्रता का अपना लक्ष्य प्राप्त किया। १५ अगस्त के लगभग एकदम आरम्भ होनेवाले सम्प्रदायिक दगो से उन्हे मानसिक आघात लगा। मार-काट मे लिप्त भारत उनके लिए असह्य था। उन्होने हमारे नैतिक पतन को समझा और एक स्नेही पिता की भाति फिर अथक रूप से सही मार्ग दिखाया। अपने असीम प्रेम से वे अनेक सीनो मे क्रोध की धधकती आग को शात करने की चेष्टा कर रहे थे। वे ही हमारे और विनाश के बीच खडी हस्ती थे, क्योकि अराजकता और अव्यवस्था, घृणा और हिंसा हमे कही भी ले जा सकते है।

एक पागल आदमी के क्रोध ने उनकी निर्बल काया हमसे दूर कर दी है, लेकिन उनकी आत्मा को कौन मार सकता है? इस लिहाज से तो वे हमें छोड गए कि उनके प्रिय स्वरूप का दर्शन हम फिर कभी न कर सकेगे, उनकी मीठी वाणी फिर कभी न सुन पायगे, उनके हाथ के स्नेह-स्पर्श का फिर कभी अनुभव न कर सकेंगे, उनसे प्राप्त होनेवाली सात्वना फिर कभी नही पा सकेगे, लेकिन वे कभी नही जा सकते, और हम अपने पास उनकी उपस्थिति का आभास निरतर पाते रहेगे और मेरी आशा है कि अब हम उनके प्रति उनके हमारे साथ होने के समय से अधिक सच्चे होगे।

उन्होने शहादत का ताज पहन लिया है। उनकी आत्मा विश्राम कर रही है। लेकिन हमारे लिए उन्हे सर्वोच्च बलिदान करना पडा। हमे अपना अपराध नही भूल जाना चाहिए। प्रत्येक सच्चे भारतीय को अपना मस्तक घोर लज्जा से इसलिए नत कर लेना चाहिए कि हममें से ही एक इतना गिर गया था कि उसने उनके अमूल्य जीवन का अन्त कर दिया। भगवान् उसे क्षमा करें और हम हत्यारे को भुला सकें,

क्योकि बापू ने अवश्य ही उसे क्षमा कर दिया होगा और उस समय भी उसे प्यार किया होगा, जब वह उनपर गोली चला रहा था।

कल से हम सब शोक की मार खाये हुए निराशा मे ग्रस्त है, फिर भी हममें से प्रत्येक को यह सकल्प करना चाहिए कि वह इनमें से किसीके आगे नही झुकेगा। हममे इतनी शक्ति होनी चाहिए कि हम सत्य और प्रेम के पथ का, जिसपर वे हमें अवश्य चलाते, अनुगमन कर सके और इस प्रकार समय रहते अपने देश के नाम को कलकित करने वाले इस दाग को मिटा सके। भगवान हम सबपर दया करें और हमे बापू के प्रति सच्चे होने और इस प्रकार उनके स्वप्नो का भारत बनाने की शक्ति दे।

: ४७ :

इतिहास के अमर व्यक्ति

डाक्टर सय्यद हुसेन

महात्मा गाधी की मृत्यु से शोक और प्रशसा की जमाने भर मे जो लहर उठी है, इतिहास मे उसकी और कोई मिसाल नही मिलती। ..प्रेसीडेंट रूजवेल्ट की असामयिक और अचानक मौत के समय मै खुद अमरीका में मौजूद था। उस महान् राजनीतिज्ञ और उदारता के दूत के लिए व्यापक और वास्तविक शोक मनाया गया था, लेकिन उसकी गाधीजी की मृत्यु पर विश्व-व्यापी शोक-प्रदर्शन से कोई तुलना नही की जा सकती। इनके जीवन, कार्य और व्यक्तित्व की जन-चेतना पर अमिट छाप पडी है और इनकी याद और प्रेरणा इनकी स्थायी विरासत के रूप मे मौजूद रहेगी।

खुद गाधी-साहित्य में इस समय लाखो प्रकाशित पुस्तकें है। अब से इतिहासकार और जीवन-चरित-लेखक उनके अद्भुत, श्रेष्ठ और बहुमुखी जीवन की कथा-वस्तु लेना शुरू कर देंगे। इन सबके अतिरिक्त धार्मिक तथा बौद्धिक मान्यताओ का सग्राहक उनके जीवन के अध्ययन से बहुमूल्य और अपरिमित सामग्री एकत्र कर सकता है। सीधा-सादा तथ्य यह है कि महात्मा गाधी मानव-इतिहास के सबसे बडे व्यक्तियो मे से एक हो गए है।

यह न तो उनके महान् व्यक्तित्व का अकन करने का अवसर है, और न उसका

कोई प्रयास ही है। हम उनकी स्मृति में अपनी व्यक्तिगत श्रद्धाजलि ही अर्पित कर सकते है। खुद मेरा उनसे १९१४ से सवध है, जव मै उनसे उनके दक्षिण-अफ्रीका से भारत लौटते समय लदन मे मिला था। वे जनवरी १९१५ मे भारत लौट गए और वम्वई प्रेसीडेसी में वस गए। १९१६ में मै भी 'वाम्वे क्रॉनिकल' के कार्यकर्ताओ में सम्मिलित होने के लिए भारत लौट आया और इस प्रकार आने वाले तीन वर्षो में मुझे समय-समय पर उनसे मिलने और उन्हे जानने का अवसर मिला। लेकिन खिलाफत और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अवसर पर मै वास्तव मे गाधीजी के निकट आया और हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान् आन्दोलन के सबसे पहले समर्थको में से एक वन गया, जिसके कि वे सवसे वडे प्रचारक और नेता थे। यद्यपि खिलाफत का प्रश्न मुसलमानो के लिए वडे धार्मिक महत्त्व का था, तथापि वह केवल उन्हीसे सवधित नही था और महात्मा गाधी की व्याख्या के अनुसार ही वह सर्वोच्च राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न बन गया था। गाधीजी की मान्यता थी कि मुसलमानो के अग्रेजो के प्रति दावे जायज थे और इसलिए अपने मुसलमान देशवासियो का साथ देना सभी भारतीयो का कर्तव्य था। अत खिलाफत का प्रश्न एक राष्ट्रीय प्रश्न वन गया और भारत के मुसलमान उनके महान् नेतृत्व को मानने लगे। तीस साल की वात है कि गाधीजी ने अग्रेज तथा अन्य यूरोपीय राजनीतिज्ञो के सामने हमारा दृष्टिकोण पेश करने के लिए भारतीय खिलाफत शिष्टमडल के तीन प्रतिनिधियो में से एक के लिए दिल्ली नगर मे मेरा नाम प्रस्तावित किया। मुझे याद है कि महात्मा गाधी के प्रस्ताव का अनुमोदन हकीम अजमल खा ने और समर्थन स्वामी श्रद्धानन्द ने किया था। इन नामो से कैसी अजीव स्मृतिया ताजा होती है! वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता के दौर के प्रतीक थे—जो अभाग्यवशात् वडी अल्पकालीन थी—जिसकी अकवर महान के समय से भारतीय इतिहास मे कोई मिसाल नही मिलती है। यह एक अजीव-सी वात है कि राष्ट्रीय एकता के महान् अभियान में मेरा महात्मा गाधी के साथ सवध रहा, और फिर कोई चौथाई शताब्दी के विदेश-प्रवास के वाद भारत वापस आने पर उस महात्मा के महान् सघर्ष के अन्तिम दौर को देखा और उसमें भाग लिया। महात्मा गाधी का सर्वोच्च वलिदान हिन्दू-मुस्लिम-एकता की वेदी पर हुआ। मैं इस वात को नही मान सकता कि ऐसा वलिदान व्यर्थ जायगा। उन्होंने अपने रक्त से भारतीय एकता के आदर्श तथा धारणा को पवित्र किया, जिसके विना न राष्ट्रीय शाति, न आदर और न वास्तविक स्वतत्रता हो सकती है। हम सवको राष्ट्रीय सहयोग के उस उद्देश्य को पूरा करने में अपने आपको पुन अर्पित कर देना चाहिए,

जिसके वे वीर नेता और उत्प्रेरक थे। उनकी स्मृति का सम्मान हम उनके आदर्शों के प्रति सच्चे होकर ही कर सकते है।

गाधीजी सुकरात, ईसा और इमाम हुसैन जैसे इतिहास के सबसे वडे शहीदो में भी स्थान पा चुके है। गाधीजी पर अपनी पुस्तक में मने बताया था कि इस्लाम के चौथे खलीफा हजरत अली के चरित्र की उन्होंने मुझसे बडी प्रशसा की थी। मेरे लिए शायद यह बात बहुत अप्रासगिक न होगी कि मै हजरत अली और महात्मा गाधी की शहादत की विचित्र समता सामने रखू। हजरत अली की हत्या उस समय हुई, जब वे सचमुच प्रार्थना में लीन थे। गाधीजी की हत्या प्रार्थना-सभा मे जाते हुए हुई।

महात्मा गाधी और हजरत मूसा में भी एक बडा विचित्र साम्य है। जिस समय उनकी अपनी ही जाति वालो द्वारा हत्या की गई, तब इजरायल के पैगम्बर (मूसा) अपने जातिभाइयो को अज्ञात भूमि की लम्बी और अप्रिय तकलीफो से निकाल कर वाछित भूमि तक ले जा चुके थे। इसी प्रकार महात्मा गाधी अपने देशवासियो को उनके लबे वधन से मुक्त कराकर स्वतत्रता की वाछित भूमि तक लाने के वाद अपने ही एक देशवासी के हाथो मारे गए।

मुझे गाधीजी की एक और महान् पैगम्बर से समता नजर आती है। गुरु नानक का देहान्त होने पर हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी ने उन्हे अपना बताया, और कहा जाता है कि तीनो धर्मो की प्रथाओ के अनुसार उनकी तीन अन्तिम क्रियाए की गई। महात्मा गाधी को भी अपनी मत्यु पर यही आश्चर्यजनक श्रद्धाजलि अर्पित की गई है। सचमुच यह दोनो हस्तिया भारत की आत्मिक एकता की सबसे वडी दूत थी।

इस प्रकार चाहे हम उन्हे एक पैगम्बर, या मसीह या शहीद—कुछ भी मानें और यह तीनो बातें उनके महान् चरित्र मे मिलती भी है—वे इतिहास के अमर व्यक्तियो मे से एक हो गए है। उनके बलिदान से उनके देशवासी जागे तथा शुद्ध हो और उनकी महान् आत्मा हमे भारत की सेवा के लिए प्रेरित तथा पथ-प्रदर्शित करती रहे, जो उन्हे इतना प्रिय था और जिसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया।

: ४८ :

गांधीवाद् अमर है

पट्टाभि सीतारामैया

मनुष्य मरने के लिए ही पैदा होता है और अन्य लोगो की भाति महापुरुष भी अपना दिन आने पर शरीर छोड देते है, पर वास्तव में अपने पीछे छोडे कार्य के द्वारा वे सदा के लिए अमर हो जाते है। ये कार्य चिरस्थायी होते है और समय के साथ परिमाण और वल मे वढते जाते है। ऐसे कार्य के पीछे जो उच्च आदर्श होते है, वे स्थायी होते है और वदली परिस्थितियो मे नये वातावरण के अनुसार अपने को ढाल लेते है। ससार ने पिछली पच्चीस शताब्दियो से भी अधिक में जितने भी महापुरुषो को जन्म दिया है उनमे गाधीजी को—यदि आज नही माना जाता तोभी—सवसे वडा माना जायगा, क्योकि उन्होंने अपने जीवन की गतिविधियो और अगो को विभिन्न भागो मे वाटा नही, वल्कि जीवन-धारा को सदा एक और अविभाज्य माना। जिन्हे हम सामाजिक, आर्थिक और नैतिक के नाम से पुकारते है, वे वास्तव मे उसी धारा की उपधाराए है, उसी भवन के अलग-अलग पहलू है। गाधीजी ने मानव-जीवन के इस नवकथानक की व्याख्या न किसी हृदयस्पर्शी वीर काव्य की भाति और न किसी दार्शनिक महाकाव्य की भाति की है, वल्कि उसे उन्होने मनुष्य की आत्मा मे अपने निम्नतम रूप मे आत्म-स्वार्थ तथा उचित कार्य के प्रति निष्ठा, किसी ध्येय की सेवा और किसी विचार के प्रति स्वार्पण के वीच सतत चलनेवाले सघर्ष के नाटक की भाति माना है।

दक्षिण-अफ्रीका से वापस आने पर उन्होने देखा कि राष्ट्रीय जीवन कितना भ्रष्ट हो गया है, आर्थिक दवाव गावो को किस प्रकार गरीव वना रहा है, सामाजिक असमानताओ ने मनुष्य-मनुष्य के वीच न्याय और ईमानदारी की सभी सीमाओ को किस प्रकार तोड डाला है और सरकार द्वारा एकत्रित पाप के धन के कारण देश का कैसा नैतिक पतन हो गया है। इसलिए उन्होंने खद्दर और ग्राम-उद्योग के द्वारा एक स्वावलवी और स्वयंपूरित, अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा आत्मप्रतिष्ठा और शराव, अफीम तथा भग की वुराइयो से मुक्त आत्मशुद्ध समाज की वात रखी। रचनात्मक कार्यक्रम तथा सत्य और अहिसा पर आधारित सत्याग्रह के द्वारा विदेशी वधन से भारत की मुक्ति के साथ-साथ भारत का पुनर्निर्माण करने

की चेष्टा की। इस प्रकार भारत के दासत्व को नष्ट कर और भारतीय राष्ट्रीयता की सही भायनो मे बुनियाद रखकर उन्होने अपने द्विमुखी उद्देश्य की पूर्ति की है।

अपना कार्य पूरा करके वे हमें छोड गये हैं और आज भौतिक वृत्तियो में लीन हम उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहे है, जो किसी भी प्रकार असामयिक नहीं है किन्तु एकदम अस्वाभाविक है। हमे यह बात मान लेनी चाहिए कि अपना कार्य समाप्त करने के बाद अवतार की अपने कार्यक्षेत्र मे कोई जगह नही रह जाती। वास्तव मे गत जून मास से वे यह महसूस कर रहे थे कि अपनी आवश्यकता से अधिक वे जी रहे हैं और उनकी धारणा के समाज और नीति तथा उनके चारो ओर मान्य धारणाओ के बीच अन्तर बढता जा रहा है। अपने निर्वाण के अवसर पर भूतकाल में भी अवतारो के सामने ऐसी ही जटिल परिस्थितिया आईं। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पाडवो की सफलता के बाद द्वारिका वापस लौटने पर श्रीकृष्ण ने देखा कि उनके कुल-बन्धु शराब और ऐयाशी मे लीन थे, इसलिए वे जगल में चले गये, जहा एक शिकारी ने श्याम हरिण समझकर उनपर तीर चला दिया, जिसके फलस्वरूप वे मारे गये। श्रीराम ने अपना कार्य पूरा करने के बाद सरयू के गहरे जल में समाधि ले अपने जीवन का अत कर डाला। पश्चिम मे ब्रूनो को जीवित जलाया गया, सुकरात को जहर का प्याला पीना पडा, गैलीलियो को कारागृह मे बदी कर दिया गया और धमकियो मे उसकी जान गई, अब्राहीम लिकन को गोली मारी गई। गाधीजी को भी गोली मारी गई, लेकिन जिस प्रकार वे दसवे अवतार है, उसी प्रकार वे दशम् चिरजीवी भी है। गाधीजी का देहान्त अपने अन्तिम उपवास मे ही हो गया होता, लेकिन हत्यारे के हाथो मरने के लिए वे उससे बच गये। इससे अधिक बुरी बात और कुछ नही होगी कि उनकी मृत्यु पर हम शोक करें, क्योकि उन्होने अपने जीवन भर हमे सिखाया था कि कोई भी व्यक्ति ससार के लिए ऐसा नही होना चाहिए कि उसके बिना दुनिया का कार्य रुक जाय। उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान है, जो उनके बाद भी उनकी भावी सतान को प्राप्य है। हजारो साल तक उनकी शिक्षाओ का अनुसरण करना और उनसे रास्ता पाना अच्छी ही बात है। उनकी अतिम शिक्षा यह थी कि भारत स्वाधीन तो हो गया है, पर अभी स्वतत्र नही हुआ है। हिन्दू और मुसलमानो को सगठित करना उन तीन सबसे बडे कार्यों मे से एक था, जिनके साथ उन्होने राष्ट्र का नेतृत्व आरम्भ किया था और इसी काम के लिए उन्होने अपने प्राण भी दे दिये। क्या हम यह आशा नही

कर सकते कि उनके परिश्रम का फल, जिसे वह स्वय नही देख पाये, उनके अनु-गामियो के परिश्रम को फलीभूत करेगा और वे लोग इस महान आत्मा के प्रति अपनी तुच्छ श्रद्धाजलि के रूप मे पहले की अपेक्षा अधिक देख और सुधार पायगे ?

इस विश्व-प्रसिद्ध व्यक्ति से, जिसकी शिक्षाए अनिवार्यत. दोनो भू-गोलार्द्धो में राष्ट्रो के भविष्य का निर्माण करेगी, हमारे सामने त्याग के लिए बुद्ध, पीडा के लिए ईसा, सत्यवादिता के लिए हरिश्चन्द्र, सपूर्णता के लिए श्रीराम और रणनीति के लिए श्रीकृष्ण की याद ताजा हो जाती है। गाधी ने—जिस व्यक्ति को नियति ने अपने देश का उद्धार करने के लिए जन्म दिया—पहले इच्छा और भय पर विजय पाकर स्वय अपना उद्धार किया। वे अपने जीवन में एक नायक और मृत्यु से शहीद हो जाने वाले सत है। युद्ध और हिंसा से पीडित इस ससार के वे वर्तमान मसीहा है। यदि यह कथन, जो बार-बार दुहराया गया है, सत्य है कि "सच्चा ईसाई तो एक ही था और वह सूली पर चढाया गया"—तो इतनी ही सचाई के साथ यह भी कहा जा सकता है कि "सच्चा ईसाई एक ही था और उसे गोली मार दी गई।" आधी शताब्दी तक गाधीजी ने ससार की सेवा की और अपना स्थान छोडते समय वे अपनी संतति पर अपने खुद के और राष्ट्र के प्रति दुहरे कर्त्तव्य का भार छोड गये है। कम लोगो को यह गौरव प्राप्त हुआ है कि वे अपना स्मरण-लेख स्वयं लिख सकें। लेकिन ३० मार्च १९३१ को जब कराची में उन्होने यह घोषित किया कि "गाधी मर सकता है, पर गाधीवाद अमर है" तो अनजाने ही उन्होने अपना स्मरण-लेख लिख दिया।

वास्तव मे गाधीवाद है क्या और कहा पर है ? यह न तो मनुष्य की जिह्वा, न वस्त्रो और न बदलती सामाजिक व्यवस्थाओ में निहित है, जो मानव-जीवन के स्वरूप को बनाती-बिगाडती रहती है। गाधीवाद एक जीवन-प्रणाली है। इस पर आश्रम का कोई एकाधिकार नही, और न काग्रेस के भव्य मडप का ही इसपर कोई एकाधिकार है। इसका स्थान घने जगलो में नहीं है और न बहते पानी के किनारे है। इसका स्थान हृदय है। गाधीवाद जीवन की प्रणाली है। इसकी भाषाएं बीसियो हो सकती है, पर जबान एक है। यह एक ही लक्ष्य के लिए सैकड़ो मार्ग निर्धारित करता है। एक ही आदर्श की निष्ठा में यह हजारो प्रकार की सेवाएं करता है। गाधीजी चाहे मर जाय, पर गाधीवाद अमर है।

: ४९ :

गांधीजी : मानव के रूप में

घनश्यामदास बिडला

गाधीजी का मेरा प्रथम सपर्क १९१५ के जाडो मे हुआ। वे दक्षिण-अफ्रीका से नये-नये ही आये थे और हम लोगो ने उनका एक वृहत् स्वागत करने का आयोजन किया था। मै उस समय केवल २२ साल का था। गाधीजी की उस समय की शक्ल यह थी सिर पर काठियावाडी साफा, एक लम्बा अगरखा, गुजराती ढग की धोती और पाव बिलकुल नगे। वह तस्वीर आज भी मेरी आखो के सामने ज्यो-की-त्यो नाचती है। हमने कई जगह उनका स्वागत किया। उनके बोल का ढग, भाषा और भाव बिलकुल ही अनोखे मालूम दिये। न बोलने मे जोश, न कोई अतिशयोक्ति, न कोई नमक-मिर्च। सीधी-सादी भाषा।

१९१५ मे जो सपर्क बना वह अन्त तक चलता ही रहा और इस तरह ३२ साल का गाधीजी के साथ का यह अमूल्य सपर्क मुझपर एक पवित्र छाप छोड गया है, जो मुझे तमाम आयु स्मरण रहेगा। उनका सत्य, उनका सीधापन, उनकी अहिंसा, उनका शिष्टाचार, उनकी आत्मीयता, उनकी व्यवहार-कुशलता इन सब चीजो का मुझपर दिन-प्रति-दिन असर पडता गया और धीरे-धीरे मै उनका भक्त बन गया। जब समालोचक था तब भी मेरी उनमे श्रद्धा थी। जब भक्त बना तो श्रद्धा और भी बढ गई। ईश्वर की दया है कि ३२ साल का मेरा एक महान् आत्मा का सपर्क अन्त तक निभ गया। मेरा यह सद्भाग्य है।

गाधीजी को मैने सन्त के रूप मे देखा, राजनैतिक नेता के रूप मे देखा और मनुष्य के रूप मे भी देखा। मेरा यह भी खयाल है कि अधिक लोग उन्हें सन्त या नेता के रूप मे ही पहचानते है। लेकिन जिस रूप ने मुझे मोहित किया वह तो उनका एक मनुष्य का रूप था, न नेता का और न सन्त का। उनकी मृत्यु पर अनेक लोगो ने उनकी दु ख-गाथाएँ गाई है और उनके अद्भुत गुणो का वर्णन किया है। मै उनके क्या गुण गाऊ? पर वे किस तरह के मनुष्य थे यह मै बता सकता हू।

मनुष्य क्या थे वे कमाल के आदमी थे। राजनैतिक नेता की हैसियत से वे अत्यन्त व्यवहार-कुशल तो थे ही। किसीसे मैत्री बना लेना यह उनके लिए कुछ चन्द मिनटो का काम था। द्वितीय राउन्ड टेबिल कान्फ्रेंस मे जब वे इग्लैड गये

थे तव उनके कट्टर दुश्मन सैम्युल होर से मैत्री हुई तो इतनी कि अन्त तक दोनों मित्र रहे । लिनलिथगो से उनकी न निभी, पर यह दोष सारा लिनलिथगो का ही था । गाधीजी ने मैत्री रखने में कोई कसर न रखी। जिनसे गाधीजी मैत्री रखते, छोटी चीजो मे वे उनके गुलाम वन जाते थे। पर जहा सिद्धात की वात आती थी वहा डट के लडाई होती थी । पर उसमे भी वे कटुता न लाते थे। लन्दन में जितने रोज रहे विना सैम्युल होर की आज्ञा के कोई वक्तव्य या व्याख्यान देना उन्होंने स्वीकार नही किया । लिनलिथगो से भी कई वातो मे ऐसा ही सवध था।

निर्णय करने मे वे न केवल दक्ष थे, पर साहसी भी थे । चौरीचौरा के काड को लेकर सत्याग्रह का स्थगित करना और हिमगिरि जितनी अपनी वडी भूल मान लेना इसमे काफी साहस की जरूरत थी। सत्याग्रह स्थगित करने पर वे लोगों के रोष के शिकार वने, गालिया खाई, मित्रो को काफी निराश किया, पर अपना दृढ निश्चय उन्होंने नही छोडा । १९३७ मे काग्रेस ने जव गवर्नमेंट वनाना स्वीकार किया तव गाधीजी के निर्णय से ही प्रभावान्वित होकर काग्रेस ने ऐसा किया। गाधीजी ने जहां कदम वढाया, सव पीछे चल पडे। काग्रेस-नायकों में उस समय झिझक थी, वे शंकाशील थे। १९४२ मे जवकि क्रिप्स आये तव हाल इसके विपरीत था। कांग्रेस के कुछ नेता चाहते थे कि क्रिप्स की सलाह मान ली जाय और क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार किया जाय । पर गाधीजी टस-से-मस न हुए, वल्कि उन्होंने 'हिन्दुस्तान छोडो' की धुन छेडी और लड पडे । इस समय भी उन्होंने निर्णय करने मे काफी साहस का परिचय दिया।

मुझे याद आता है कि राजनीति में उस समय करीव-करीव सन्नाटा था। लोगो मे एक तरह की थकान थी। नेताओ मे प्राय. एकमत था कि जनता लडने के लिए उत्सुक नही है ।

विहार से एक नेता आये । गाधीजी ने उनसे पूछा—जनता मे क्या हाल है ? क्या जनता लडने को तैयार है ? विहारी नेता ने कहा—जनता मे कोई तैयारी नही है, कोई उत्साह नही है। पीछे रुककर उन्होंने कहा कि मुझे एक कथा स्मरण आती है। एक मर्तवा नारद विष्णु के पास गए। विष्णु ने नारद से पूछा—नारद, ज्योतिष के अनुसार वर्षा का कोई ढग दीखता है। नारद ने पचाग देखकर कहा कि वर्षा होने को कोई सभावना नहीं है। नारद ने इतना कहा तो सही, पर विष्णु के घर से वाहर निकले तो वर्षा से सुरक्षित होने के लिए अपनी कमली ओढ ली।

विष्णु ने पूछा—नारद, कम्वल क्यो ओढते हो ? नारद ने कहा—मैंने ज्योतिष की वात वताई है, पर आपकी इच्छा क्या है, यह तो मै नही जानता। अन्त में जो आप चाहेंगे वही होने वाला है। इतना कहकर उन विहारी नेता ने कहा—वापू, जनता में तो कोई जान नही है, पर आप चाहेंगे तो जान भी आ ही जायगी। यह विहारी नेता थे सत्यनारायण वावू, जो अव सरकार की असेम्वली में मुख्य सचेतक है। जो उन्होने सोचा था वही हुआ। जनता में लडने की कोई उत्सुकता न थी, पर विगुल वजते ही लड़ाई ठनी तो ऐसी कि अत्यन्त भयकर।

पर यह तो मैंने उनकी नेतागिरी और राजकौशल की वात वताई। इतने महान् होते हुए भी किस तरह छोटो की भी उन्हें चिन्ता थी, यह आत्मीयता उनकी देखने लायक थी। यही चीज उनके पास एक ऐसे रूप मे थी कि जिसके कारण लोग उनके वेदाम गुलाम वन जाते थे। उनके पास रहनेवाले को यह डर रहता था कि वापू किसी भी कारण अप्रसन्न न हो और यह भय इसलिए नही था कि वे महान व्यक्ति थे, पर इसलिए था कि मनुष्य में जो सहृदयता और आत्मीयता होनी चाहिए वह उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

वहुत वर्षो की वात है। करीव २२ साल हो गये। जाडे का मौसम था। कडाके का जाडा पड रहा था। गाधीजी दिल्ली आये थे। उनकी गाडी सुवह चार वजे स्टेशन पर पहुची। मै उन्हें लेने गया। पता चला कि एक घटे वाद ही जाने वाली गाडी से वे अहमदावाद जा रहे है। उनके गाडी से उतरते ही मैंने पूछा—एक दिन ठहरकर नही जा सकते ? उन्होने कहा—क्यो, मुझे जाना आवश्यक है ? मै निराश हो गया। उन्होने फिर पूछा—क्यो ? मैंने कहा—घर में कोई वीमार है। मृत्यु-शय्या पर है। आपके दर्शन करना चाहती है। गाधीजी ने कहा—मैं अभी चलूगा। मैंने कहा—मै इस जाडे मे ले जाकर आपको कष्ट नही दे सकता। उन दिनो मोटरें भी खुली होती थी। जाडा और ऊपर से जोर की हवा, पर उनके आग्रह के वाद मै लाचार हो गया। मै उन्हें ले गया, दिल्ली से कोई १५ मील की दूरी पर। वहा उन्होने रोगी से वात कर उसे सान्त्वना दे दिल्ली कैंटोनमेंट पर अपनी गाडी पकडी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतना वडा व्यक्ति मेरी जरा-सी प्रार्थना पर सुवह के कडाके के जाडे मे इतना परिश्रम कर सकता है और कष्ट उठा सकता है। पर यह उनकी आत्मीयता थी जो लोगो को पानी-पानी कर देती थी। मृत्यु-शय्या पर सोने वाली यह मेरी धर्मपत्नी थी।

परचुरे शास्त्री एक साधारण ब्राह्मण थे। उन्हे कुष्ट था । उनको गांधीजी ने अपने आश्रम मे रखा सो तो रखा; पर रोजमर्रा उनकी तेल की मालिश भी स्वयं अपने हाथो करते थे । लोगो को डर था कि कही कुष्ट गाधीजी को न लग जाय। पर गाधीजी को इसका कोई भय न था। उनको ऐसी चीजो से अत्यन्त सुख मिलता था ।

४२ के शुरू मे मै वर्धा गया । कुछ दिन वाद उन्होने मुझसे कहा—तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा मालूम देता है। इसलिए मेरे पास सेवाग्राम आ जाओ और यहा कुछ दिन रहो । मै तुम्हारा उपचार करना चाहता हू। मैने कहा—वर्धा ठीक है ! सेवाग्राम में क्यो आपको कष्ट दू। मुझे सकोच तो यह था कि सेवाग्राम मे पाखाना साफ करने के लिए कोई मेहतर नही होता। वहापर टट्टी की सफाई आश्रम के लोग करते है। जहा मुझे ठहराना निश्चित किया गया था, वहां की टट्टी महादेव भाई साफ किया करते थे। मैने उन्हे अपना सकोच वताया कि क्यो मै सेवाग्राम नही आना चाहता था । मै स्वय अपनी टट्टी साफ नही कर सकता और यह वर्दाश्त नही कर सकता कि महादेव भाई जैसा विद्वान् और एक तपस्वी ब्राह्मण उसको साफ करे। गाधीजी को मेरा सकोच निरा वहम लगा। पाखाना उठाना क्या कोई नीच काम है ? महादेव भाई ने भी मजाक किया, परन्तु मेरे आग्रह पर मेहतर रखना स्वीकार कर लिया गया । आगाखा पैलेस मे जव उनका उपवास चलता था तो मै गया । वडे वेचैन थे। वोलने की शक्ति करीव-करीव नही के वरावर थी । मैने सोचा कि कुछ राजनैतिक वातें करूंगा; पर आश्चर्य हुआ । पहुचते ही हम सवका कुशल-मगल, छोटे-मोटे वच्चो के वारे मे सवाल और घर-गृहस्थी की वातें। इसी मे काफी समय लगा दिया। मै उनको रोकता जाता था कि आपमे शक्ति नही है, मत वोलिये; पर उनको इसकी कोई परवाह नही थी।

इस तरह की उनकी आत्मीयता थी, जिसने हजारो को उनका दास वनाया। नेता वहुत देखे, सन्त भी वहुत देखे, मनुष्य भी देखे, पर एक ही मनुष्य में सन्त, नेता और मनुष्य की ऊंचे दर्जे की आत्मीयता मैने और कही नही देखी । मै अगर गाधीजी का कायल हुआ तो उनकी आत्मीयता का। यह सवक है जो हर मनुष्य के सीखने के लायक है। यह एक मिठास है, जो कम लोगो में पाई जाती है।

गाधीजी करीव पौने पाच महीने के वाद इस मर्तवा हमारे घर में रहे। जैसा-कि उनका नियम था, उनके साथ एक वड़ी वरात आती थी । नये-नये लोग आते थे और पुराने जाते थे । भीड वनी रहती थी। घर तो उनके ही सुपुर्द था। कितने

मेहमान उनके ऐसे भी आते थे जो मुझे पसन्द नही थे, जो उनके पासवालो को भी पसन्द नही थे। वम गिरने के वाद वहुतो ने उन्हे वेरोक-टोक भीड में घुस जाने से मना किया। सरदार वल्लभभाई ने उनके लिए करीव ३० मिलिटरी पुलिस और १५-२० खुफिया विडला-हाउस मे तैनात कर रक्ख थे, जो भीड में इधर-उधर फिरते रहते थे, पर मैं जानता था इस तरह से उनकी रक्षा हो ही नही सकती। जो लोग आते थे उनकी झडती लेने का विचार पुलिस ने किया मगर गाधीजी ने रोक दिया। हर सवाल का एक ही जवाव उनके पास था—"मेरा रक्षक तो राम है।"

उपवास के वाद उनका हाजमा विगडा। मैंने कहा—कुछ दवा लीजिये। फिर वही उत्तर। मेरा वैद्य राम है। मेरी दवा राम है। कुछ अदरक, नीबू, घृतकुमारी का रस, नमक और हीग साथ मिलाकर उनको देना निश्चित किया। आग्रह के वाद साधारण खान-पान की चीज समझकर उन्होने इसे लेना स्वीकार किया। पर वह भी कितने दिन ? अन्त मे तो राम ही उन्हे अपने मदिर मे ले गये।

उनके अन्तिम उपवास ने उनके निकटस्थ लोगो मे काफी चिन्ता पैदा की। उपवास के समय मैंने काफी वहस की। मैंने कहा—"मेरा आपका ३२ साल का सपर्क है। अपके अनेक उपवासो मे मैं आपके पास रहा हू। मुझे लगता है कि आप का यह उपवास सही नही है", पर गाधीजी अटल थे। यह कहना भी गलत है कि गाधीजी आस-पास के लोगो से प्रभावान्वित नही होते थे। बुद्धि का द्वार उनका सदा खुला रहता था। वहस करनेवाले को प्रोत्साहन देते थे और उसमे जो सार होता उसे ले लेते थे, चाहे वह कितने ही छोटे व्यक्ति से क्यो न मिलता हो। वार-वार वहस करते-करते मुझे लगा कि उनके उपवास के टूटने के लिए काफी सामग्री पैदा हो गई है। मुझे ववई जाना था। जरूरी काम था। मैंने उनसे कहा, "मैं ववई जाना चाहता हू। मुझे लगता है कि अव आपका उपवास टूटेगा। न टूटनेवाला हो तो मैं न जाऊ।" मैंने यह प्रश्न जान-वूझकर उन्हें टटोलने के लिए किया। उन्होंने मजाक शुरू किया। कहा—"जव तुम्हे लगता है कि उपवास का अन्त होगा तो फिर जाने मे क्या रुकावट है ? अवश्य जाओ, मुझसे क्या पूछना है ?" मैंने कहा—मुझे तो उपवास का अन्त लगता है, पर आपको लगता है या नही, यह कहिये। उन्होने मजाक जारी रखा और साफ उत्तर न देकर फदे मे फसने से इकार किया। मैंने कहा—नचिकेता यम के घर पर भूखा रहा तो यम को क्लेश हुआ, क्योकि ब्राह्मण घर में भूखा रहे तो पाप लगता है। आप यहा उपवास करते है तो मुझपर पाप

चढता है। इसलिए अब इसका अन्त होना चाहिए। गाधीजी ने कहा—मैं ब्राह्मण कहा हू। पर आप तो महाब्राह्मण हैं। इसपर बडा मजाक रहा। मैंने कहा—अच्छा, आप यह आशीर्वाद दीजिए कि मैं शीघ्र-से-शीघ्र आपके उपवास टूटने की खबर बबई मे सुनू। फिर भी उनका मजाक तो जारी ही रहा। मैंने कहा—अच्छा यह बताइये कि आप जिन्दा रहना चाहते है या नही। उन्होने कहा—हां, यह कह सकता हू कि मै जिन्दा रहना चाहता हू। बाकी तो मै राम के हाथ मे हू। उपवास तो समाप्त हुआ, लेकिन राम ने उन्हें छोडा नही।

शुक्र को करीब सवा पाच बजे गाधीजी को गोली लगी और उसी दम उनका देहात हो गया। मै उस समय पिलानी था। करीब ६ बजे कालेज के छात्र दौड़ते हुए आए और उन्होने रेडियो की खबर बताई कि किस तरह गाधीजी चल बसे। सन्नाटा छा गया।

मैंने रात को ही वापस आने की ठानी, पर मालूम हुआ कि सुबह वायुयान से जाने से हम जल्दी पहुच सकेंगे। सोया, पर रात भर बेचैनी रही। स्वप्न आने लगे। मानो मैं दिल्ली पहुच गया। पहुचते ही बापू के कमरे मे गया तो देखता हू, जहा बापू लेटते थे वही मृतक अवस्था मे लेटे पडे है। पास मे प्यारेलाल और सुशीला बैठे है। मैंने जाकर प्रणाम किया। मुझे देखते ही गाधीजी उठ बैठे। कहने लगे—"अच्छा हुआ तुम आ गए। यह कोई नादान का काम नही है। यह तो गहरा षड्यन्त्र था। पर मै तो प्रसन्नता के मारे अब नाचूगा, क्योकि मेरा काम तो अब समाप्त हो गया।" फिर कुछ इधर-उधर की बात करते रहे। अन्त मे घडी निकालकर कहने लगे, "अब तो ११ बज गये है। तुम लोग अब तो मुझे श्मशान घाट ले जाओगे इसलिए लेट जाता हू।" इतना कहकर फिर लेट गये।

बस इसके बाद मैंने बापू को चैतन्य रूप मे नही देखा न उनकी जबान सुनी। यह भी तो सपना ही था, पर सपने मे भी प्रत्यक्ष-का-सा अनुभव किया। दिल्ली पहुचा तो बापू को पडा पाया। चेहरे पर उनके कोई विकृति नही थी। वही प्रसन्न मुद्रा, वही क्षमा-भाव और वही मुस्कान। पर अब तो वह भी देखने में नही आयगी।

एक दीपक बुझ गया; पर हमारे लिए रोशनी छोड गया।

: ५० :

महाप्रस्थान

बी० के० मल्लिक

किसी भी हिन्दुस्तानी के लिए, गाधीजी का इस नाटकीय ढंग से उठ जाना निश्चय ही एक ऐहिक वात थी। स्पष्टरूप से यह उस प्राचीन परपरा के अत की सूचक है जो बुद्ध और महावीर से आरम्भ हुई थी, और जो समय-समय पर नानक, कबीर, चैतन्य एव बहुत-से दूसरे सतो से वाणी लेकर विभिन्न स्वरो में लहराती रही। गाधीजी का अत करनेवाले इस कार्य को समझ सकना या इतिहास में क्रोध मे उन लपटी जडो का पता लगाना, जिनसे यह कार्य इतने निर्दयतापूर्ण ढग से सपन्न हुआ, वडा कठिन काम है। हमारे विश्वास का एक-एक तार टूट जायगा यदि क्रोध के आवेश मे या लज्जा से इस काम को एक चेतावनी के रूप में स्वीकार करने के बजाय हम सारा दोष किन्ही विशेष दलो या आन्दोलनों के मत्थे मढने लगें। खास सवाल यह है कि उनकी मौत के कारण अधूरे रह गये काम को हम पूरा करे। और किसी बात का इतना महत्व नही है।

तब, बापू अपनी मौत से क्या सबक हमारे लिए छोड गए है? उनके इस एकाएक चले जाने का क्या अर्थ हो सकता है, और क्यो उन्होंने इतिहास के ऐसे नाजुक और सकटापन्न क्षणो में हमे छोड दिया? पाये हुए वरदान को छोड सकना किसीके लिए भी बडा कठिन होता है। नष्ट हो जाना मानवीय है, लेकिन चोट को सहकर वे ही जिन्दा रह सकते है, जोकि अनुशासन और प्रायश्चित्त के अन्दर भी अच्छाई को देखने के लिए तैयार है। उनकी चिता के धुएँ से उठते हुए सदेश में मुझे सिर्फ चेतावनी के कुछ अक्षर पढने को मिले और कुछ नही।

वह चेतावनी यह है कि किसीका कैसा ही ऊचा आदर्श क्यो न हो, और कितने ही अलौकिक साधनो से कोई अपनेको क्यो न सावधान रखे, फिर भी उद्देश्य की सफलता की कोई गारन्टी नही। कोई भी उद्देश्य कितना ही पुण्यमय क्यो न हो, सुरक्षित नही है। आप पृथ्वी के तमाम मनुष्यो और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, शाति और सद्भावना का दावा कर सकते है और उनके लिए अपनी जिन्दगी भी खपा सकते है, लेकिन फिर भी इस बात की पूरी सभावनाएँ मौजूद है कि आपका पडोसी ही, जिसे आप यह सब देने को तैयार है, इसे ठुकरा दे और आपके

प्राण ही ले ले। दूसरी बात यह है कि क्या पता, जिसे आप ईमानदारी और दृढता के साथ प्रेम और शाति का नाम दे रहे है, जो जिन्दगी का सार है, वही आपके पडोसी की जिन्दगी को सुखा दे और उसकी मृत्यु का कारण वन जाय, जिस तरह कि गर्म सूर्य कोमल पौधो को मुरझा देता है।

ऐसे वहुत-से मौके आये जव स्वय वापू ने अपने द्वारा की गई गलतियो पर पश्चाताप किया। परन्तु उनकी मृत्यु इस वात को अतिम रूप से अगीकार करती है कि सत्य तक पहुँचना वडा दुर्लभ है और कोई भी प्रायश्चित कितना ही गहरा क्यो न हो, यात्रा की आखिरी मजिल तक पहुँचने की गारन्टी नही दे सकता। सफलता या जीवन-योजना की पूर्ति कोई न्यायसगत या उचित उद्देश्य नही है; हो सकता है निराशा मे किसीको इस तरह का मार्ग-दर्शक सिद्धान्त मिल जाय।

चेतावनी के चार स्पष्ट परिणाम जीवन की पूर्ण रचना के लिए एक आधार तैयार करते है, और वापू की यही अतिम देन है, जो उन्होने हमारे लिए अपनी मौत के द्वारा छोडी है। जो अनुशासन जीवन के औपचारिक वलिदान में समाप्त हुआ, उसके फलीभूत होने का यह सकेत है। उन्होने अपनी जिन्दगी मे जो कुछ कर दिखाया वह हमारे लिए सपने से भी वाहर की वात थी। वापू के अनवरत वलिदान और कष्टो ने ही हमें गुलामी से ऊपर उठाया है। उन्हीके कारण आज आज़ादी की ताजी और साफ हवा हमारे मैदानो और पहाडो के ऊपर वह रही है। फिर भी यह काम उनकी संपूर्ण योजना का एक अशमात्र था। योजना का मूल उद्देश्य मानव जाति में इस तरह शाति की प्रतिष्ठा करना था जिससे कि वे अनवरत कलह और सघर्ष के जीवन के स्थान पर शातिपूर्वक रहने के योग्य वन सकें।

इस चेतावनी के गर्भ मे वह भविष्यवाणी छिपी है, वह सदेश छिपा है, जिसका कि अमल जीवन में वे अपनी जाँच के कठिनतम क्षणो तक वरावर करते रहे और जिसके प्रति उनका भरोसा कभी डिगा नही। उसी विश्वास या भरोसे को हम उनसे आज प्राप्त कर सकते है, विशेषकर ऐसे समय में जव उनकी मृत्यु के शोक ने हमारी आत्मा के सारे मैल को धो दिया है।

और आज जिन टीकाओ को मै श्रद्धापूर्वक सुन रहा हूँ, उनसे चार वातें स्पष्ट प्रकट होती है।

पहली वात यह है कि अपने उद्देश्य या योजना की सफलता के लिए निश्चित किये गए कितने भी साधनो की कोई कीमत नही, और न सफलता के विषय में हमारा भरोसा कभी खरा उतरता है, जवतक कि उसके पीछे जनता की स्वीकृति से

प्रोत्साहित मान्यता की पवित्रता का वल न हो। भेट देनेवाले व्यक्तियो को दान-स्थल पर खडे होकर अपनी मान्यता की कसौटी पर उन्हे कसना पडता है। भेट उस समय तक नही दी जा सकती जबतक कि उसे प्राप्त करने का अवसर न हो, ठीक उसी तरह से जैसे यदि कोई देनेवाला ही न हो तो प्राप्त कैसे किया जाय। देने वाला और पाने वाला एक साथ प्रकट होते है और एक-दूसरे मे प्रतीति करते है और उस समाज के कोई मानी नही, जहाँ दोनो की व्यवस्था न हो। दान या उपहार का देने वाला कोई स्त्री-पुरष पहले उसके लिए एक आदर्श की रूप-रेखा तैयार करता है और उसके अनुसार एक योजना बनाता है। जबकि दूसरी ओर उपहार या भेट को प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस आदर्श को पहले अपने मे पचाता है अथवा हमारी सामाजिक योजना की रचना के अनुरूप उस नक्शे को कार्यान्वित करता है। ये दो कार्य दो विभिन्न क्षेत्रो मे समाज के प्रधान हितो का ढाँचा तैयार करते है। तर्क-दृष्टि से दोनो यह प्रमाणित करते है कि दुनिया की प्रत्येक रीति या कार्य प्रकृति से ही इस अर्थ में दोहरे है कि उसके कृतपात्र और कर्मपात्र दोनो उसमें शुरु से मौजूद रहते है। उद्देश्य या लक्ष्य एक ही होता है, परतु उद्देश्य की पूर्ति मे दुहरे कार्य की आवश्यकता रहती है। इसलिए उपहार के देने वाले उपदेशक या दार्शनिक को समुदाय के निर्णय और स्वीकृति पर निर्भर रहना ही पडता है, चाहे यह निर्णय उन्हे मान्य हो अथवा नही, चाहे यह निर्णय अपने को जीवित सिद्धान्त के रूप मे बदलने की क्षमता रखता हो या नही।

इससे दो नतीजे निकलते है—प्रथम, गाधीजी के प्रेमोपहार को उन लोगो की स्वीकृति और रजामन्दी की प्रतीक्षा करनी पडी, जिनको यह समर्पित किया गया था। उदाहरण के तौर पर अपने प्रेम को उन सामाजिक योजनाओ की रचना के अनुरूप खपा देने के लिए महात्माजी को विन्सटन चर्चिल जैसे अग्रेज, मुहम्मद अली जिन्ना जैसे मुसलमान और महाराष्ट्रियन ब्राह्मण जैसे हिन्दू पर निर्भर रहना पडा था। द्वितीय—स्वीकृति के इस सिद्धान्त का महात्मा गाधी के अपने अहिसा के सिद्धान्त से सीधा सम्बन्ध है।

क्या हम यह नही सोच सकते कि ये दोनो सिद्धान्त एक ही है? यदि "स्वीकृति" "अधिकार" से भिन्न है तो हिसा को "अधिकार" एव "स्वीकृति" को अहिसा के समरूप माना जा सकता है। जिन लोगो का यह दावा है कि सिद्धान्त पूर्णतया कारण से परिणाम तक साक्षी के आधार पर मान्य किया जा सकता है, और जो प्रमाण की आवश्यकता का खडन करते है, उन्हे हिसा का समर्थक माना

जा सकता है, और उन लोगो को, जो "स्वीकृति" को प्रामाणिकता की प्रथम शर्त मानते है, अहिंसा की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

मैं आज भी इस प्रश्न पर विवाद नही कर सकता कि अहिंसा का उसूल इस विशिष्ट रूप मे ही गाधीजी द्वारा व्यवहृत हुआ था । ऐसा सोचते समय मै उनके उस समय के विचारो को प्रसग से विल्कुल अछूता रख कर ही कह रहा हूँ जवकि वे पार्थिव रूप से हमारे साथ थे। मै उनके विषय मे कोई सस्मरण भी लिखने नही जा रहा हूँ वरन् केवल उसी वात का उल्लेख कर रहा हूँ, जिसे वे मेरे मस्तिष्क को आदेश-सा प्रतीत होते है ।

मृत्यु की घटना से कोई इन्कार नही कर सकता, लेकिन इसके यही अर्थ है कि हम मृत्यु से उसी तरह जगेगे जिस तरह नीद से, और पुन विश्व के जीवन-सागर के वीच अपने को पायगे। यदि मृत्यु का अर्थ पूर्ण विनाश है तो एक भी जीवन का विनाश संसार में सकट वरपा कर सकता है, क्योकि कभी-भी कोई जीवन विल्कुल एकान्त अवस्था मे अपना अस्तित्व कायम नही रख सकता। इसके विपरीत दूसरे जीवन से उसका पारस्पारिक सवध कायम रहता है । कम-से-कम यही एक तथ्य ऐसा है जो मेरे इस दावे की पुष्टि करेगा कि वापू आज भी जिन्दा है और वे इतिहास पर अपनी टीका लिखवा रहे हैं । यह निर्विवाद है कि पिछले १० वर्षो मे वापू द्वारा किये गए प्रयोगो में मानव-जाति की अत्यधिक रक्षित उच्च परपरा की अतिम अवस्था का समावेश हुआ है । जिस नाटक के वे प्रधान अभिनेता थे उस नाटक में हमारे किसी भी खलीफा या धर्मगुरु ने कभी कोई भाग नही लिया था, यहाँतक कि कुछ समय पूर्व जव उसी मार्ग पर स्वय रामकृष्ण परमहस चले तो उसी पर-परा का उनका वह प्रयोग वडी सफलतापूर्वक सपन्न हुआ था, जिसके द्वारा लोगो के हृदय मे यह विश्वास उत्पन्न किया गया था कि हम अवकार में पुन गिरे विना सत्य और प्रकाश की ओर वढ सकते है । परन्तु जव महात्मा गाधी की ५० वर्ष की तपस्या पूरी हुई तो केवल धुआ उठा और वह आग जिसमें यह प्रयोग खप गया, एक गुजरती हवा से सिर्फ थोडी देर के लिए आग भडकी । श्रेष्ठ मूल्यो और वुद्धि के माप विलुप्त हो गए, और इसके वाद जो घना अधेरा चारो ओर फैला, उसने सवको घवडा दिया । इतिहास की किसी हस्ती की अपेक्षा यदि व्यग्रता का यह नाटक महात्माजी में सवसे अधिक समाविष्ट था तो मै यह दावा कर सकता हूँ कि जो कुछ होने वाला है, उसके एक मात्र उत्तराधिकारी गाधीजी ही है ।

अव मैं दूसरी टीका को लेता हूँ । दुनिया में या स्वर्ग मे ऐसी कोई ताकत

नही जो अन्य लोगो द्वारा हमारे कामो का विरोध होने पर उस निराशा से हमारी रक्षा कर सके। विरोध का पूर्ण अभाव ही निश्चित सफलता की एकमात्र शर्त है। एकता में विभिन्न कार्य एक-दूसरे से मिल जाते है और जो उन्हे पसद करते है वे सहयोग देते है। इसके विपरीत सघर्ष विरोध और प्रतिकूलताओ की विभिन्न अवस्थाओ से गुजरता है और इस कारण सघर्ष मे पडे हुए उद्देश्य को प्रतिकूलताओ और भिन्नताओ द्वारा उत्पन्न निराशा के अटल भाग्य का शिकार होना पडता है।

उदाहरण के तौर पर यदि एकता और स्वतत्रता दो परस्पर विरोधी तत्वो की हैसियत से टकराते है तो निश्चय ही उन्हें निराशा का सामना करना पडता है। यदि महात्मा गाधी और मुहम्मद अली जिन्ना आजादी और एकता के समर्थक की हैसियत से सामने आते तो उन दोनो को सीधे सघर्ष में पडने से कोई नही रोक सकता था और उस दशा मे दोनो उद्देश्यो की असफलता का पहले से ही अदाज लगाया जा सकता था। हिन्दुस्तान का विभाजन भी इस वात का सबूत नही है कि आजादी का उद्देश्य हमेशा के लिए निराशा के चगुल से मुक्त हो गया। इसने यह प्रमाणित कर दिया कि एकता के उद्देश्य को घोर निराशा का सामना करना पडा, वटवारे के बाद यह वात साबित नही होती कि श्री जिन्ना ने आजादी हासिल की या कभी कर सकते थे। उन्होने जो कुछ प्राप्त किया वह थी कुछ वधनो से आज़ादी। इस प्रकार की आजादी से क्षणिक विश्राम है और महात्मा गाधी एव प जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित एकता के आदर्श को निराशा में बदलने के लिए ही समर्थ हो सकती है। परिणाम की दूसरी मजिल भी तैयार हो चुकी है, जो आजादी के उद्देश्य को घोर निराशा में वदल देगी। विपरीतताओ के नियम के अनुसार ऐहिक जगत-सवधी विधान के अनुसार यही होना चाहिए। मै प्रतिकार के विधान की बात नही कह रहा हूँ, और न भाग्यचक्र की, इतिहास की भावना मे या विश्व मे ऐसी कोई ईर्ष्या नही है, जो इतने कठोर नियमो का अभिनय करके न्याय के काम पर लोगो से वसूल करने का आग्रह करे। क्या हमारे विरोधी इस तीर्थ-यात्रा मे हमारे साथ होकर शोक क्या होता है इसका अनुभव नही कर सकते ? प्रेम का सदेश आज छिन्न-भिन्न होकर खडित शौर्य की अवस्था मे पडा है और उसके स्थान पर सघर्ष का विधान शासन कर रहा है।

तीसरी टीका यह है कि कष्ट से बचने का हम कोई भी उपाय क्यो न करें, उससे बचने का कोई रास्ता नही है। जैसा कि हम जानते है, जीवन के एक स्थायी

अंग की तरह अक्षय रूप से उसकी मुहर हमारे ऊपर लगा दी गई है। स्वेच्छा से अथवा लाचारी से हम या तो दूसरे के लिए क्लेश पैदा करते हैं या स्वय उसके शिकार वन जाते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति या समुदाय नही मिलेगा जिसे क्लेश के इन दोनो पहलुओ का अनुभव न हो। इस आलोचना के पीछे यह उसूल छिपा है कि जिन मूल्यो और दृग्य पदार्थो को हम चाहते है, वे सभी अपने स्वरूप मे दोहरे होते है। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार हम उन्हे रहस्यपूर्ण और मानवी या स्वतत्रवादी या अधिकारवादी कह सकते हैं। इस विभागवादी तर्कशास्त्र के भीतर भी एक अक्षमता का दोष छिपा है। दो विपरीत मूल्यो मे हमेशा संघर्ष होता है और वे एक-दूसरे के खिलाफ मैदान मे डटे रहते हैं।

चौथी टीका यह है कि हम कुछ भी क्यो न करें उस दुनिया से छुटकारा पाना मुश्किल है, जिसने क्लेशो की इस जिन्दगी को सभव किया है। दूसरी कोई दुनिया ऐसी है नही, जो इस दुनिया की यातनाओ से रक्षा कर हमें शरण दे सके।

इतिहास की इन्ही टीकाओ को वापूजी ने हमारे समुख रखा है। किसी दूसरे व्यक्ति को यह करने का अधिकार या अवसर नही है। इस दुनिया में उनकी जिन्दगी का रास्ता और परम शाति को पाने का तरीका—ये दो ऐसी गवाहियाँ है, जिनपर उपरोक्त टीकाए अवलम्वित हैं।

ये अद्भुत परीक्षा के दिन हैं। आज सत्य के दावे की रक्षा करनी है, उसे प्रमाणित करना है। आधुनिक युग मे यदि कोई चीज मजबूती से खडी रह सकती है तो वह है प्रमाण। आधुनिक भावना किसी भी ऊचाई तक ऊपर चढ सकती है, परन्तु उत्कर्ष को वेदी पर शोभित होकर यात्रियो की आशीर्वाद देने वाले देवता को पहले अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करनी होगी। यह वात गुप्त मस्तिष्को को अपवित्र भले मालूम पडे, परन्तु मनुष्य आज अपनी महत्ता को देवत्व के शौर्य से आच्छादित नही देख सकता। ईश्वरी उपस्थिति का दावा केवल मानव-गौरव के अन्तर से ही उत्पन्न हो सकता है। कोई भी देवता यो ही मानव पर अपना प्रभुत्व कायम नही कर सकता, उसी तरह जिस तरह कि मनुष्य अपनी आन्तरिक दिव्यता की उपेक्षा नही कर सकता। जो भी हमारी मान्यताए है, उनकी प्रामाणिकता को कसौटी पर कसना ही होगा।

यदि ईश्वर सचमुच स्वर्ग मे है और दुनिया में रहनेवाली अपनी सृष्टि की देखभाल करता है तो उसके लिए यह अवसर है कि वह अपने इस दावे को सिद्ध करे। दैवी विशेषता की अभिव्यक्ति के लिए जो विधान ईश्वर ने वनाया,

उसका वडी कडाई के साथ पालन किया गया। वकाया रकम को पूरी तरह अदा किया गया। मनुष्य की ओर से इतना करने के वाद भी यदि सदेश का प्रसार न किया जा सका और दुनिया में शाति की स्थापना न हुई तो केवल मनुष्य ही नही, वरन् उसके साथ-साथ ईश्वरीय नियम और ईश्वर तक को धक्का लगेगा।

मेरे विचार से गाधीजी का जीवन आधुनिक युग की प्रधान कसौटी है। इस प्रयोग का उद्देश्य स्वय परपरा थी—पृथ्वी पर जीवन का अर्थ।

: ५१ :

श्रद्धांजलि

देवदास गाधी

यह सव लिखने को तैयार मै इसलिए हुआ हू कि मै चाहता हू कि मेरे ही समान जो दूसरे लोग अनाथ हुए है, उन्हे भी अपने शोक और चिन्तन मे भागीदार वना सकू। जो अन्धकार हमपर छाया है, उसने सवको समान रूप से निगल लिया है और मै जानता हू कि पिछले शुक्रवार की शाम से एकाएक मै अपने चारो ओर अधकार-ही-अधकार का जो अनुभव कर रहा हू, वह अकेला मेरा ही अनुभव नही है।

मुझमे और वापू मे पिता-पुत्र का जो स्वाभाविक प्रेम था, उसका साक्षी ईश्वर है। वह दिन मुझे आज याद है जवकि लगभग २० वर्ष की आयु मे मै वापू से अलग होकर विशेष अध्ययन के लिए काशी जा रहा था और वापू ने झट आगे वढ-कर वडे प्रेम से मेरा माथा चूम लिया था। पिछले कुछ महीनो से, जवसे वापू दिल्ली में थे, मेरे तीन वर्ष के पुत्र को उनका लाड-प्यार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी कुछ दिन हुए, एक वार मुझसे वापू ने कहा भी था कि जिस दिन तुम लोग विडला-हाउस नही आते, उस दिन तुमसे भी ज्यादा मुझे गोपू की याद आती है। अव यह छोटा वालक जव वैसा मुह वनाता है, जैसा उसके दादा उसका स्वागत करते समय वनाया करते थे, तो हमारी आखो से आसू निकल पडते है। इन वातो के वावजूद भी मै इस वात पर जोर देना चाहता हू कि गाधीजी की गणना पारिवारिक व्यक्तियो में नही हो सकती। मैने वहुत पहले ही यह खयाल छोड दिया था कि वह अकेले मेरे ही पिता है। मेरे लिए वह वैसे ही ऋषि थे जैसे आप

में से किसीके लिए। मेरी आवाज़ सुन रहे हैं और मैं आपकी ही तरह उनका अभाव महसूस कर रहा हूं। मैं इस भयकर विपत्ति को ऐसे प्राणी की तटस्थ भावना में देखता हू जो मानो उत्तरी ध्रुव मे रहता हो और जिसका उस महा-पुरुष के साथ खून या जाति का कोई सम्बन्ध न हो। उनकी हानि का तो हमको अभी धुधला-सा ही आभास हो रहा है।

हमदर्दी के जो हार्दिक सन्देश मुझे और मेरे परिवारवालो को मिल रहे हैं, उनसे हमको वडी सान्त्वना मिल रही है। लेकिन हम मानते हैं कि सन्देश भेजनेवाले शायद हमसे भी कही अधिक दु खी और सतप्त हैं। कौन किसको दिलासा दे?

आखिरी सास छोडने के करीब ३० मिनिट वाद मैं वहा पहुचा। उस समय तक वापू का शरीर गरम था। उनकी चमडी हमेशा कोमल और स्वभावत सुन्दर थी। जव मैंने उनके हाथ को धीरे से अपने हाथो में लिया तो ऐसा लगा मानो कुछ हुआ ही नही है। किन्तु नाडी का पता न था। जिस तरह वह हमेशा सोया करते थे, उसी तरह तख्त पर लेटे हुए थे। उनका सिर आभा की गोद में रखा हुआ था। सरदार पटेल और नेहरूजी उनके निकट गुम-सुम वैठे थे और दूसरे वहुत-से लोग श्लोक और भजन वोलते हुए सिसकिया भर रहे थे। मैं देर से पहुचा था। इस वात के लिए मैंने वापू के कान में रोते हुए क्षमा मागी, किन्तु निष्फल रहा। भूत-काल में न जाने कितनी वार उन्होंने मेरी भूलो को क्षमा किया था। मैंने कोशिश की कि इस आखिरी वार वह मुझे फिर क्षमा कर दे और एक नजर मेरी ओर डालें। लेकिन उनके होठ विलकुल वन्द थे और उनकी आकृति में शात दृढता थी। ऐसा मालूम पडता था मानो वह स्वभाव से ही समय की पावदी न करनेवाले अपने पुत्र से विना क्रोध लेकिन दृढता के साथ कह रहे हैं—अव मेरी शाति को तुम भग नही कर सकते।

हम सारी रात जागते रहे। उनका चेहरा इतना शात और स्थिर था और उनके शरीर के चारो ओर फैला हुआ दैवी प्रकाश इतना मधुर था कि मृत्यु का शोक करना या उससे डरना मुझे पाप मालूम हुआ। उन्होंने १३ जनवरी को अपना उपवास शुरू करते हुए जिस परम मित्र का जिक्र किया था, उसने उन्हे वुला लिया था।

हम लोगो के लिए सवसे अधिक असह्य वेदना का क्षण वह था, जव हमने उस आलवान को उतारा जिसे वह ओढे हुए थे और जिसमे वह प्रार्थना-सभा मे गये थे, और जव हमने शरीर को नहलाने के लिए उनके कपडो को उतारा। वापू अपने थोडे-से कपडो के वारे में हमेशा वहुत साफ-सुथरे होते थे।

उस दिन वह और भी स्वच्छ और साफ सुथरे मालूम हुए। प्रार्थना-भूमि पर गोली खाकर गिर पडने के कारण ऊपर की चादर में मिट्टी और घास के तिनके लग गये थे। हमने उसे वगैर झाडे उसी रूप में धीरे-धीरे समेट लिया। चादर में हमको एक गोली का खोल मिला, जिससे यह जाहिर होता है कि गोली वहुत निकट से चलाई गई थी। वह छोटा दुपट्टा, जिसे वह छाती और कधे पर डाले रहते थे, कई जगह खून से भरा हुआ था। जव सव कपडे हटा लिये गये और उनकी छोटी-सी धोती के अलावा कुछ न वचा तो हम लोग अपने आपको अधिक न सभाल सके। वापू के वे घुटने, वे हाथ, वे खास तरह की अगुलिया, वे पाव सव पहले जैसे ही थे। कल्पना कीजिये कि उस शरीर को मसाला लगाकर ज्यो-का-त्यो कायम रखने के सुझाव को न मानने में हमे कितनी कठिनाई हुई होगी। लेकिन हिन्दू-भावना उसकी इजाजत नही देती और अगर हम उस सुझाव को मान लेते तो वापू ने हमको कभी क्षमा न किया होता।

हालाकि अखवारो मे सही-सही विस्तृत विवरण छप चुका है, फिर भी मुझसे वहुत लोगो ने पूछा है कि क्या मृत्यु तुरन्त हो गई ? वापू उस दिन कमरे से प्रार्थना मैदान में जाने के लिए शाम को पाच वजकर दस मिनट पर रवाना हुए थे। उनके सदा के विश्वस्त साथी उनके साथ थे, जिनका सहारा लेकर वह चला करते थे। आभा दाई ओर थी और मनु वाई ओर। ज्यो ही वापू वगीचे की सीढियो पर चढे, उन्होने कहा कि मुझे देर हो गई है। वह पाच वजे के वाद तक सरदार पटेल से वाते करते रहे थे और एक मिनट भी आराम किये विना प्रार्थना के लिए चल पडे थे। ठीक उसी समय वह आदमी कही से आगे आया और उनके निकट वढा। मनु ने यह समझकर कि वह दूसरो की तरह सामने लेटना या गाधीजी के पाँव छूना चाहता है, उसे हटाने की कोशिश की। लेकिन उसने मनु का हाथ झटक दिया। और तीन वार गोली चलाई। सभी गोलिया गाधीजी की छाती पर और छाती के नीचे दाहिनी ओर लगी। ज्यो ही वह नीचे गिरे, आभा भी गिर पडी और उसने उनका सिर अपनी गोद मे रख लिया। दोनो लडकियो ने गाधीजी को "राम, राम" कहते सुना। स्त्री-पुरुष शोक से अपना सिर धुनने लगे और उसी समय वापू के प्राण पखेरू उड गये। वापस मकान मे ले जाने मे पाच मिनट लग गये होगे। तव अधेरा हो गया था।

जव हम उस विपाद-भरे कमरे में उस रात वापू के चारो ओर वैठे हुए थे मैं प्रार्थना-पूर्ण होकर वालको की तरह आशा लगाये रहा कि तीन घातक गोलियो

के जख्मो के वाद भी वह वच जायगे और सूर्योदय से पहले-पहले जीवन किसी-न-किसी तरह लौट आयगा। लेकिन जव समय आगे वढता गया और दुनिया की किसी भी वात से उनकी निद्रा भग न हुई तो मै यह कामना करने लगा कि सूर्य कभी उदय ही न हो। लेकिन फूल भीतर लाये गये और हमने अन्तिम यात्रा के लिए शरीर को सजाना शुरू किया। मैने चाहा कि छाती खुली ही रहने दी जाये। वापू जैसी विशाल और सुन्दर छाती किसी सैनिक की भी नही रही होगी। तव हम उनके चारो ओर वैठ गये और वे भजन और श्लोक वोलने लगे, जो वापू को वड़े प्रिय थे। लोगो की भीड रात भर आती रही और अगले दिन वडे सवेरे वापू ने हरिजन-फण्ड के लिए आखिरी वार पैसा इकट्ठा किया। लोग वारी-वारी से उनके दर्शक करते हुए गुजर रहे थे और फूलो के साथ वापू पर सिक्को और नोटों की वर्षा करते जाते थे। विदेशी राजदूतो ने अपनी पत्नियो तथा कर्मचारियो के साथ आदर प्रकट किया। यह सव शिष्टाचार से वहुत परे था। वह उनसे विदा ले रहे थे, जिनसे वह पहले मिल चुके थे और जिन्हें वह खूव मानते थे।

पिछली ही रात मुझे एक अत्यन्त दुर्लभ अवसर मिला था। वह यह कि कुछ देर के लिए मै अकेला वापू के पास रह पाया। मै हमेशा की भाति रात के साढे नौ वजे उनसे मिलने गया था। वह विस्तरे मे थे और एक आश्रमवासी को वर्धा की पहली गाडी पकडने के वारे में हिदायतें देकर ही निपटे थे। मै अन्दर गया और उन्होने पूछा, "क्या खवर है?" उनका यह मुझे याद दिलाने का हमेशा का तरीका था, क्योकि मै अखवारनवीस हू। मै भलीभाति जानता था कि इसमें मेरे लिए एक चेतावनी है, लेकिन उन्होने मुझसे कभी कुछ छिपाया नही। मैने जिस वारे में उनसे पूछा, उसका सार वह मुझको वता दिया करते थे। कभी-कभी तो विना पूछे खुद ही वता दिया करते थे। लेकिन आमतौर पर वह तभी वताते थे, जव मै उनसे पूछता था, यह मानकर कि मै तभी पूछूगा, जव वहुत जरूरी होगा, और वह भी ऐसे काम के लिए जिसका अखवार की खवर के साथ कोई सवंध नही होगा। इन मामलो में वह मुझपर उतना ही विश्वास करते थे, जितना स्वय अपने पर।

स्वभावत मेरे पास कोई खवर देने को नही थी, इसलिए मैने पूछा, "हमारी सरकार की नौका का क्या हाल है?" उन्होने कहा—"मेरा यकीन है कि जो थोड़ा मतभेद है, वह मिट जायगा। किन्तु मेरे वर्धा से लौटने तक ठहरना होगा। इसमें ज्यादा समय नही लगेगा। सरकार मे देशभक्त लोग है। और कोई ऐसी वात नही करेगा, जो देश के हितो के विरुद्ध हो। मुझे यकीन है कि उन्हें हर हालत में

साथ-साथ रहना है और वे रहेगे। उनके बीच कोई ठोस मतभेद नही है। इसी तरह की और भी बातचीत हुई और अगर मैं कुछ देर और ठहर जाता तो उस समय भी वहा भीड जमा हो गई होती। इसलिए विदा होते-होते मैंने कहा—"बापू, क्या अब आप सोयेंगे ?" वह बोले, "नही, कोई जल्दी नही है। अगर तुम चाहो तो कुछ देर और बात कर सकते हो।" लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हू, बातचीत जारी रखने की इजाजत फिर दूसरे रोज नही मिल सकी।

कुछ दिन पहले जब मैं रात को उनसे विदा ले रहा था, मैंने उनसे कहा कि मैं प्यारेलाल को अपने साथ खाना खाने के लिए ले जा रहा हू। "हा, हा जरूर, लेकिन तुम मुझे तो कभी खाने को बुलाते ही नही !"—हमेशा की भाति खिल-खिलाकर हँसते हुए उन्होने कहा।

मैं बापू को मारनेवाले उस आदमी को कोसता हू, ठीक उसी तरह जैसे मैं अपने भाई या पुत्र को कोसता, क्योकि बापू के साथ उसका यही रिश्ता था। मैंने उसे मूर्ख माना है। सचमुच वह कितना भयकर मूर्ख सिद्ध हुआ है ! उसे बदमाशो का प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त था। किन्तु वे भी असह्य मूर्ख है। याद रखिये कि मूर्ख की मूर्खता की कोई सीमा नही होती। और इसलिए जिस तरह हम चोर से साव-धान रहते है, उसी प्रकार हमको मूर्ख से भी सावधान रहना चाहिए। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के काम एक समय ऐसे थे कि उनसे मेरे दिल में सघ के प्रति प्रशसा की भावना उत्पन्न हो गई थी। जब वह शुरू हुआ तब शारीरिक व्यायाम, कवायद, बडे सवेरे उठना और अनुशासित जीवन उसका आधार था। किन्तु शीघ्र ही कुछ दुस्साहसी बीच मे कूद पडे। कुछ को उसमे निजी उत्कर्ष और राजनैतिक मौका नजर आया। गिरावट तेजी से शुरू हुई। उसके कुछ नेताओ ने पहले तो खानगी मे और बाद मे सार्वजनिक रूप से भयकर बाते कहनी शुरू की और आखिर किसी ने अपने दिल में बुरे-से-बुरे विचारो को भी धारण करना आरम्भ कर दिया। लेकिन हम अपना लक्ष्य आखो से ओझल न करें। हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ में ऐसे लोग है, जो अगर उन्हे मालूम होता तो गाधीजी को बचाने के लिए अपने प्राण दे देते और प्रकट रूप मे यह बात उनमें से अधिकाश पर लागू होती है। केवल मुट्ठीभर आदमी है, जिनका बम्बई और उसके आसपास जमघट है और जिनका इस गुनाह के साथ सम्बन्ध है। हमको सारे महाराष्ट्र को उन मुट्ठी-भर महाराष्ट्रियो के साथ शामिल नही कर लेना चाहिए, जिनके अपराधी साथी दूसरी जगहो में भी है। मैं इस गिरोह के बारे में कुछ कहने का अपनेको अधिकारी

नही मानता । उनको दभ, असन्तोष और मानव के सबसे अधिक शक्तिशाली विकार ईर्ष्या के सयोग से प्रेरणा मिली है ।

कहा जाता है कि कुछ लोगो ने मिठाई बाटकर इस घटना पर खुशी मनाई । यह इतना हास्यास्पद है कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता । जिन्होने ऐसा किया है, परिणामो की उन्हे कोई चिन्ता नही है और उनके सामने कोई मकसद भी नही है । कुछ वदनाम अखबार उनकी पीठ पर है, जिनपर कोई अकुश नही रहा । सरकार को यह देखना है कि इन शरारतियो के साथ कैसा वर्ताव किया जाय, जिनमे से कुछ खुले और कुछ गुप्त रूप में काम करते है । शरारती इतने थोडे और इतने विखरे हुए है कि आप लोगो को उनकी कोई खास चिन्ता करने की जरूरत नही है । सरकार को उनके साथ निपटने के लिए छोड देना चाहिए ।

किसी भी रूप मे वदला लेने का सवाल ही नही उठना । क्या उससे वापू लौट आ सकते है ? क्या वह यह पसन्द करेगे कि हम खून की होली खेलने लग जाय? कभी भी नही ।

पीछे की ओर नजर दौडाने पर मालूम होगा कि हम वापू की रक्षा न कर सके । लेकिन वापू जैसे भी थे, उसको देखते हुए क्या उनकी पूरी रक्षा करने का प्रवन्ध सम्भव था ? उन्हे अपनी ७८ वर्ष की उम्र मे सिवाय भगवान के और क्या सरक्षण प्राप्त था । और क्या उनको हमेशा ही खतरो के वीच नही रहना पडा ? इसलिए हम अपने शोक मे उन लोगो पर कर्त्तव्य की उपेक्षा करने का आरोप न लगायें, जो हमारी ही तरह इस विपत्ति पर भारी वेदना महसूस कर रहे है ।

मै नही मानता कि भविष्य अधकारपूर्ण है । पैगम्वर के अलावा कौन भविष्य के वारे में आत्म-विश्वास के साथ वोल सकता है ? वर्तमान निश्चय ही अधकार-पूर्ण है लेकिन अगर हम उन आदर्शों के लिए काम करे, जिनके लिए वापू जिये और मरे तो भविष्य उज्ज्वल ही होना चाहिए । इसलिए मै निराश नही हू । अगर हम यह इच्छा करते कि वापू को हमेशा हमारे वीच रहना चाहिए तो वापू हमको लोभी कह सकते थे । अव हमें अपने ही साधनो और उद्योग पर निर्भर करना होगा । परमात्मा की मर्जी पर मै व्यर्थ शोक प्रकट करने में समय नष्ट नही करूगा और न भावना का ही अपव्यय करूगा । वापू परम निर्वाण पा गये । उनका शरीर तो नही रह गया, किन्तु उनकी आत्मा सदा हमारी रहनुमाई करेगी और हमें सहायता देगी । पिछले चार महीने के दैनिक प्रवचनो मे हमे उनसे सन्तुलित आदेश मिले है । उनमे वह सव कुछ मौजूद है, जो वह हमको कह सकते थे । हम

चाहे तो झगड सकते है और एक-दूसरे का साथ छोड सकते है ! लेकिन इसके विपरीत मेल-मिलाप की थोडी कोशिश से ही हम काले बादलो को हटा सकते है। तब हम देखेगे कि सुनहरा प्रभात अधिक दूर नही है ।

: ५२ :

बापू !

सुशीला नैयर

कहते है, समुद्र-मन्थन से अमृत निकला, हीरे-जवाहरात निकले और हलाहल-जहर निकला। जहर इतना घातक था कि सारे जगत् का नाश कर सकता था। उसका क्या किया जाय ? सब इस बारे मे चिन्तित थे। शिवजी आगे बढे और उन्होने वह जहर पी लिया। हिन्दुस्तान के समुद्र-मन्थन मे से आजादी का अमृत निकला। साथ ही आपस की मारकाट का, दुश्मनी का, बैर का, हिंसा का जहर भी निकला। गाधीजी ने इसके सामने अपनी आवाज बुलद की। लोग अपनी मूर्च्छा मे चौके, लेकिन जागे नही। पाकिस्तान के लोगो के कानो में भी आवाज पहुची। बापू की आवाज गगन में गूज रही थी, "इस आग को बुझाओ, नही तो दोनो इसमे भस्म हो जाओगे।" उनका हृदय दिन-रात पुकारता था, "हे ईश्वर, इस ज्वाला को शात कर, नही तो मुझे इसमें भस्म होने दे।" बापू अनेक उपवासो से, अनेक हमलो से बच निकले थे, पर अपने ही एक गुमराह पुत्र की गोली से न बच सके। पुत्र के हाथ से हलाहल का प्याला लेकर वे पी गये, ताकि हिन्दुस्तान जीवित रह सके। किसीने कहा, "जगत् ने दूसरी बार ईसा का सूली पर चढना देखा है।"

मुझे जब यह खबर मिली तब मै मुलतान मे थी। बहावलपुरियो को बापू की इतनी चिन्ता थी कि उन्होने मुझे लेसली क्रास साहब के साथ बहावलपुर भेजा था। वहा डिप्टी कमिश्नर की पत्नी ने बहुत प्यार से पूछा, "गाधीजी अब कैसे है ? हमारे पास कब आयेगे ?" मैने कहा, "जब आपकी हुकूमत चाहेगी।"

शाम को ६ बजे के करीब डिप्टी कमिश्नर साहब की पत्नी हाफती-हाफती आई और बोली, "दुनिया किधर जा रही है ? गाधीजी को गोली से मार दिया।" सुनते ही मेरे हाथ-पाव ठडे पड गये। मै सुन्न बैठ गई। किसी दूसरे ने कहा—"'नही नही, यह तो अफवाह है। हम दिल्ली को फोन करके पक्की खबर कर लेंगे। घबराइये

नही।" मैंने कहा,—"नही, मुझे अभी लाहौर जाना है। कोई गाड़ी दिलाइये। सच्ची खबर हो या झूठी, मैं जल्दी-से-जल्दी पहुचना चाहती हूं।"

गाडी बिडला-भवन के पिछले दरवाजे मे दाखिल हुई। उधर भी बहुत भीड थी। दूर से एक ऊचा फूलो का ढेर दिखाई पड़ा। मैं भीड को पूरे जोर से चीरती हुई हाफती-हाफती वहा पहुची, जहा पालकी रवाना होने के लिए तैयार थी। वहां सरदार अपने दिवगत स्वामी के कंधो के पास गम्भीर बैठे थे। उन्होने मुझे ऊपर चढाया। फूलो मे से बापू का चेहरा ही दीखता था। हमेशा की तरह मैंने अपना सिर उनकी छाती पर रख दिया। बिना सोचे अन्दर से भावना उठी, अभी बापू एक प्यार की चपत लगा देगे, पीठ पर एक जोर की थपकी लगा देंगे। मगर मैंने तो उनकी आखिरी थपकी बहावलपुर जाते समय ही ले ली थी।

सिर के पास मनु और आभा खडी थी। "सुशीला बहन! सुशीला बहन!" पुकारकर वे फूट-फूट कर रोने लगी। आसुओ में से मैंने देखा, बापू का चेहरा पीला था, पर हमेशा की तरह शात। वे गहरी नीद मे सोये दीखते थे। अपने आप मेरा हाथ उनके माथे पर चला गया। उनके चेहरे को छुआ। वह अभी भी मुझे गरम लगा, जीवित लगा। मेरा सिर फिर से उनके चेहरे पर झुक गया। माथा उनके गाल को जा लगा। किसी ने पुकारा, "अब सब नीचे उतरो।"

नीचे सिर की तरफ पण्डितजी खडे थे। दु ख और गम की रेखाए उनके चेहरे पर थी। मुह सूखा हुआ था। उन्होने प्यार से हम तीनो को नीचे उतारा। पुराने जमाने मे महादेव भाई, देवदास भाई और प्यारेलालजी तीनो बापू के साथ हुआ करते थे—त्रिमूर्ति कहलाते थे। उसी तरह कुछ महीनो से आभा, मनु और मैं. बापू के साथ त्रिमूर्ति-सी बन गई थी। उन तीनो मे महादेवभाई बडे थे, इन तीनो मे मैं। दोनो लडकिया दोनो तरफ से मुझसे लिपट गईं। एक-दूसरी को सहारा देते हुए हम आगे बढी। बापू चाहेंगे, रामधुन चले, सो रामधुन शुरू की, लेकिन बहुत चल न सकी। मणि बहन बार-बार ध्यान खीचती थी, रोना नही चाहिए। सिख भाइयो ने गुरुग्रन्थ साहब के शब्द बोलने शुरू किये। हम सब उनके पीछे राम-नाम बोलने लगे।

कुछ देर बाद हम लोग पीछे बापू की गाडी के पास आ गये। उस गाडी के स्पर्श में बापू का स्पर्श था। दोनो तरफ लाखो जनता खडी थी। हर दरख्त की हर टहनी पर लोग बैठे थे। 'महात्मा गाधी की जय' के नाद से गगन गूज रहा था।

जैसे जीवन मे, वैसे मृत्यु में, निन्दा और स्तुति से अलिप्त बापू सो रहे थे। जीवन में हम लोगो को चुप कराते थे। जयनाद से भी उनके कानो को तकलीफ

पहुचती थी। वे कानो को उगलियो से बन्द कर लिया करते थे। कान बन्द करने को हमें साथ मे रुई रखनी पडती थी। मगर आज उसकी जरूरत नही थी। मन मे आया, क्या अपनी भावनाए हम आसू बहाकर धो डालेगे ? क्या जयघोष करके ही बैठ जायगे ? या क्या ये भावनाए कार्यरूप मे भी परिणत होगी ?

शाम को जलूस यमुनाजी के किनारे पहुचा। ईंटो के एक छोटे-से चबूतरे पर लकडिया रखी थी। जिस तख्त पर बापू बैठा करते थे, उसीपर उनका शव था। उसे लाकर लकडियो पर रखा गया। ब्राह्मणो ने कुछ मन्त्र पढे। हम लोगो ने छोटी-सी प्रार्थना की। देवदास भाई ने बापू के पाव पर सिर रखकर प्रणाम किया। हृदय से एक ही पुकार निकल रही थी। "बापू मेरे अपराध क्षमा करना। मेरी भूल-चूक त्रुटिया क्षमा करना। जीवन मे कितनी बार आपको सताया, आपको मानवी पिता मानकर आपसे झगडा किया। आपके साथ दलीले की। बापू, क्षमा करना। क्षमा करना। क्षमा!" मैं चिता से दूर हटकर बैठ गई। मै ज्यादा देख न सकी। मन मे मै गीता का यह श्लोक दोहराती रही.

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं, मया प्रमादात् प्रणयेन वापि॥

"बापू! आपने जो अगाध प्रेम मुझपर बरसाया, जो अगाध विश्वास बताया; भूल-पर-भूल क्षमा की; तुच्छ, अज्ञान, मतिहीन को अपनाया, सिखाया, अपनी बेटी बनाया, उसको लायक बनाया!" एक बार बापू ने महादेवभाई से बाते करते हुए कहा था, "सुशीला ने सबसे आखिर मे मेरे जीवन मे प्रवेश किया, मगर वह सबसे निकट आई। मुझमे समा गई है।" हे प्रभु! उसी समय तूने मुझे क्यो न उठा लिया। उसके बाद सुशीला उनसे दूर चली गई।

बापू की बात पर उसके मन मे शका आने लगी, मगर बापू ने धीरज से उसकी शकाओ का निवारण करने का प्रयास किया। उसे अपने से दूर न जाने दिया। एक बार कहने लगे—'तूने 'हाउण्ड ऑफ हेविन' की कविता पढी है। तू मुझसे भाग कैसे सकती है ? मैं भागने दू तब न ?" इस नालायक बेटी के प्रति इतना प्रेम! हे प्रभो, जो योग्यता उनके जीवनकाल में न थी, वह उनके जाने के बाद दोगे ?

शव पर चन्दन की लकडिया रखने लगे। सुगन्धित सामग्री डालने लगे। मै जाकर सरदार काका के पास बैठ गई। घुटनो मे सिर रख लिया और देख न सकी। सारा जगत् चक्कर खा रहा था। भीड का जोर से धक्का आया। मनु, आभा, मै और मणि-बहन पास बैठी थी। सरदार ने हमें साथ लेकर उस भीड मे से निकलने

की कोशिश की। धक्के-पर धक्का आता था, हम गिरते-पडते बाहर निकले। एक मिलिटरी ट्रक में बैठे। सरदार काका और सरदार बलदेवसिंहजी साथ थे। ट्रक चली। आभा ने मेरा हाथ खींचा। चिता की ज्वाला की लपटें आकाश को जा रही थीं। हृदय पुकार उठा, "हे प्रभो, इस अग्नि में हमारे दोष, हमारी कमजोरिया भस्म हो जाय, ताकि हम बापू के बताये मार्ग पर दृढता से आगे बढ सके। जिस अग्नि को शात करने मे उनके प्राण गये, वह इस अग्नि के साथ शान्त हो।" रात को बिडला-भवन में जिस गद्दी पर बैठकर बापू काम किया करते थे, उसपर रखी बापू की फोटो के सामने बैठे मन मे विचार आने लगा—कल सारी रात मोटर में बैठे हृदय से जो ध्वनि निकल रही थी, "बापू जीवित है। बापू जीवित है," वह क्या गलत थी? वह ध्वनि इतनी स्पष्ट थी, मगर क्या सब कल्पना का ही खेल था? उत्तर मिला—"नही, बापू जीवित है। सचमुच जीवित है। तुम्हारे एक-एक विचार को, एक-एक आचार को देख रहे है।" दूसरे दिन क्रास साहब अंग्रेजी कविता की कुछ लाइनें लिखकर दे गये। उनमें आखिरी लाइनो का भाव कुछ ऐसा था।

"याद रखो, अब उनके हथियार सिर्फ तुम्हारे हाथ और पांव है। वे देखते है। संभालना कि किस चीज को तुम छूते हो, कहांपर कदम रखते हो।"

एक दफा बापू से किसी ने कहा था—"आपके अनुयायियो, और रचनात्मक कार्य करनेवालो में कुछ बेबसी पाई जाती है। उनमे वह तेजी नही, जिससे वे आपका सन्देश घर-घर, गाव-गाव, देश भर में पहुचावे।" बापू गम्भीर हो गये। कहने लगे, "हा, आज वे बेबस से लगते है। मेरे जीवन में दूसरा हो नही सकता। उन सबका व्यक्तित्व मेरे व्यक्तित्व के नीचे दबा पडा हुआ है। वे बात-बात में मुझसे पूछते है। मगर मेरे बाद, मै आशा रखता हू, उनमें वह तेज और शक्ति अपने आप आ जायगी। अगर मेरे सन्देश में कुछ है, तो वह मेरे जाने के बाद मर नही जायगा।"

हमलोगो से एक बार कहने लगे कि वे हमसे क्या-क्या आशाए रखते है। आगाखा महल में उपवास की बातें चल रही थी। वे न रहे, तो हमारा क्या धर्म होगा, हमें क्या करना होगा, वे हमें समझा रहे थे। हमसे वह चर्चा सहन नही हुई। मै बोल उठी, "नही बापू, यह सब न सुनाइये। हमारी तो यही प्रार्थना है कि आपके देखते-देखते महादेवभाई की तरह हमे भी ईश्वर उठा ले। आपके बाद कुछ भी करने की हमारी शक्ति नही।" बापू और ज्यादा गम्भीर हो बोले, "महादेव की तरह तुम सब मुझे छोडते जाओगे, तो मै कहा जाऊगा? ऐसा विचार करना तुम्हे शोभा नही देता। और तुम लोगो की आज शक्ति नही मगर ईसा के मृत्यु के समय उनके शिष्यो

में शक्ति थी क्या ? दृढ विश्वास से सच्चे हृदय से, जो ईश्वरपरायण होकर कार्य करता है, शक्ति उसे ईश्वर अपने आप दे देता है। जो अपने आपको शून्यवत् करके सत्य की आराधना करता है, उसका मार्ग-प्रदर्शन प्रभु अपने आप करता है।"

क्या हम अपने आपको शून्यवत् कर सकेंगे ?

परिशिष्ट

: १ :

बापू का अन्तिम दिन

प्यारेलाल

२९ जनवरी को सारे दिन गाधीजी को इतना ज्यादा काम रहा कि दिन के आखिर में उन्हे खूब थकान मालूम होने लगी । काग्रेस-विधान के मसविदे की तरफ इशारा करते हुए, जिसे तैयार करने की जिम्मेदारी उन्होने ली थी, उन्होने आभा से कहा, "मेरा सिर घूम रहा है । फिर भी मुझे इसे पूरा करना ही होगा । मुझे डर है कि रात को देर तक जागना होगा ।"

आखिरकार वे ९। वजे रात को सोने के लिए उठे । एक लडकी ने उन्हें याद दिलाया कि आपने हमेशा की कसरत नही की है । "अच्छा, तुम कहती हो तो मैं कसरत करूगा"—गाधीजी ने कहा और वे दोनो लड़कियो के कंधो पर, जिमनाशियम के "पैरलल वार की" तरह, शरीर को तीन वार उठाने की कसरत करने के लिए वढे ।

बिस्तर में लेटने के वाद गाधीजी आमतौर पर अपने हाथ-पाव और दूसरे अग सेवा करने वालो से दववाते थे—ऐसा करवाने में उन्हे अपना नही, वल्कि सेवा करनेवालो की भावनाओ का ही ज्यादा खयाल रहता था । वैसे तो उन्होंने अपने आपको इस वात से एक अरसे से उदासीन वना लिया था, हालाकि मैं जानता हू कि उनके शरीर को इन छोटी-मोटी सेवाओ की जरूरत थी । इससे उन्हे दिन-भर के कुचल डालनेवाले काम के वोझ के वाद मन को हलका करनेवाली वात-चीत और हँसी-मजाक का थोडा मौका मिलता था । अपने मजाक मे भी वे हिदायते जोड देते । गुरुवार की रात को वे आश्रम की एक महिला से वातचीत करने लगे, जो सयोग से मिलने आ गई थी । उन्होने उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी न होने के कारण उसे डाटा और कहा कि अगर रामनाम तुम्हारे मन-मन्दिर मे प्रतिष्ठित होता तो

तुम बीमार नही पडती। उन्होने आगे कहा, "लेकिन उसके लिए श्रद्धा की जरूरत है।"

उसी शाम को प्रार्थना के बाद प्रार्थना-सभा में आये हुए लोगो मे से एक भाई उनके पास दौडता हुआ आया और कहने लगा कि आप २ फरवरी को वर्धा जा रहे है, इसलिए मुझे अपने हस्ताक्षर दे दीजिये। गाधीजी ने पूछा, "यह कौन कहता है ?" हस्ताक्षर मागनेवाले हठी भाई ने कहा, "अखबारो में यह छपा है।" गाधीजी ने हँसते हुए कहा, "मैंने भी गाधी के बारे मे वह खबर देखी है। लेकिन मैं नही जानता, वह 'गाधी' कौन है ?"

एक दूसरे आश्रमवासी भाई से बात करते हुए गाधीजी ने वह राय फिर दोहराई जो उन्होने प्रार्थना के बाद अपने भाषण मे जाहिर की थी—"मुझे गडबडी के बीच शाति, अधेरे मे प्रकाश और निराशा मे आशा पैदा करनी होगी।" बात-चीत के दौरान मे 'चलती लकडियो' का जिक्र आने पर गाधीजी ने कहा, "मै लडकियो को अपनी 'चलती लकडिया' बनने देता हू, लेकिन दरअसल मुझे उनकी जरूरत नही है। मैंने लम्बे समय मे अपने आपको इस बात का आदी बना लिया है कि किसी बात के लिए किसी पर निर्भर न रहा जाय। लडकिया अपना पिता समझ-कर मेरे पास आती है और मुझे घेर लेती है। मुझे यह अच्छा लगता है। लेकिन सच पूछा जाय तो मै इस बात मे बिलकुल उदासीन हू।" इस तरह यह छोटी-सी बातचीत तबतक चलती रही जबतक गाधीजी सो न गये।

आठ बजे उनकी मालिश का वक्त था। मेरे कमरे से गुजरते हुए उन्होने काग्रेस के नये विधान का मसविदा मुझे दिया, जो देश के लिए उनका 'आखिरी वसीयतनामा' था। इसका कुछ हिस्सा उन्होने पिछली रात को तैयार किया था। मुझसे उन्होने कहा कि इसे 'पूरी तरह' दोहरा लो। इसमे कोई विचार छूट गया हो तो उसे लिख डालो, क्योकि मैंने इसे बहुत थकावट की हालत में लिखा है।

मालिश के बाद मेरे कमरे से निकलते हुए उन्होने पूछा, "उसे पूरा पढ लिया या नही।" और मुझसे कहा कि नोआखाली के अपने अनुभव और प्रयोग के आधार पर मैं इस विषय में एक टिप्पणी लिखू कि मद्रास के सिर पर झूमते हुए अन्न-सकट का किस तरह सामना किया जा सकता है। उन्होने कहा—"वहा का खाद्य-विभाग हिम्मत छोड रहा है। मगर मेरा खयाल है कि मद्रास ऐसे प्रान्त मे, जिसे कुदरत ने नारियल, ताड, मूगफली और केला इतनी ज्यादा तादाद मे दिये है—कई किस्म की जडो और कन्दो की बात ही जाने दो—अगर लोग सिर्फ अपनी

खाद्य-सामग्री का सम्हालकर उपयोग करना जानें, तो उन्हें भूखो मरने की जरूरत नही।" मैंने उनकी इच्छा के अनुसार टिप्पणी तैयार करने का वचन दिया। इसके बाद वे नहाने चले गये। जब वे नहाकर लौटे तब उनके बदन पर काफी ताजगी नजर आती थी। पिछली रात की थकावट मिट गई थी और हमेशा की तरह प्रसन्नता उनके चेहरे पर चमक रही थी। उन्होने आश्रम की लडकियो को उनकी कमजोर शारीरिक बनावट के लिए डाटा। जब किसीने उनसे कहा कि वाहन न मिलने के कारण . अमुक जगह नही गई, तो उन्होने कडाई से कहा—"वह पैदल क्यो न चली गई?" गाधीजी की यह कडाई कोरी कडाई ही नही थी, क्योकि मुझे याद है कि एक बार जब आध्र के अपने एक दौरे मे हमें ले जानेवाली मोटरो का पेट्रोल खत्म हो गया तो उन्होने सारे कागजात और लकड़ी की हलकी पेटी लेकर वहा से १३ मील दूर दूसरे स्टेशन तक पैदल जाने के लिए तैयार होने को हमसे कहा था।

बगाली लिखने के अपने रोजाना के अभ्यास को पूरा करने के बाद गांधीजी ने साढे नौ बजे अपना सवेरे का भोजन किया। अपनी पार्टी को तितर-बितर करने के बाद वे पूर्व बंगाल के गावो में अपनी 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए नगे पाव श्रीरामपुर गये तबसे वे नियमित रूप से बगाली का अभ्यास करते रहे है। जब मै विधान के मसविदे को दोहराने के बाद उनके पास ले गया, तब वे भोजन कर रहे थे। उनके भोजन में ये-ये चीजें शामिल थी—बकरी का दूध, पकाई हुई और कच्ची भाजिया, सतरे और अदरक का काढा, खट्टे नीबू और घृत-कुमारी। उन्होनें अपनी विशेष सतर्कता से मसविदे में बढाई हुई और बदली हुई बातो को एक-एक करके देखा और पचायती नेताओ की सख्या के बारे मे जो गलती रह गई थी, उसे सुधारा।

इसके बाद मैंने गाधीजी को डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद से हुई अपनी मुलाकात की विस्तृत रिपोर्ट दी। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की तबीयत अच्छी न थी। इसीलिए गाधीजी ने कल उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछने के लिए उनके पास भेजा था। मैंने गाधीजी को पूर्वी बंगाल के बारे में ताजी-से-ताजी खबर भी सुनाई, जो मुझे डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने कल शाम को बताई थी। इसपर से नोआखाली के बारे मे चर्चा चली। मैने उनके सामने व्यवस्थित रीति से नोआखाली छोडने की बात रखी। लेकिन गांधीजी का दृष्टिकोण साफ और मजबूत था। उन्होने कहा, "जैसे हम कार्यकर्ताओ को 'करना या मरना' है उसी तरह हमे अपने लोगो को भी आत्म-

सम्मान, इज्जत और मजहबी हक को बचाने के लिए 'करने या मरने' को तैयार करना है। हो सकता है कि आखिर में थोडे ही लोग बचे, लेकिन कमजोरी से ताकत पैदा करने का इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नही है। क्या हथियारो की लडाई मे भी बलवा करनेवाले या कमजोर सिपाहियो की कतारे मार नही दी जाती ? तब अहिंसक लडाई मे इससे दूसरा कैसे हो सकता है ?" उन्होने आगे कहा, "तुम नोआखाली मे जो कुछ कर रहे हो, वही सही रास्ता है। तुमने मौत का डर भगा दिया है और लोगो के दिलो मे अपना स्थान बनाकर उनका प्यार पा लिया है। प्यार और परिश्रम के साथ ज्ञान जोडना जरूरी है। तुमने यही किया है। अगर तुम अकेले भी अपना काम पूरी तरह और अच्छी तरह करो, तो तुम्ही सबके लिए काफी हो। तुम जानते हो कि यहा मुझे तुम्हारी बडी जरूरत है। मुझपर काम का इतना बोझ है और मै बहुत-कुछ दुनिया को भी देना चाहता हूं, तुम्हारे बाहर रहने से मै ऐसा नही कर सकता। लेकिन मैने अपने आपको इसके लिए कडा बना लिया है। नोआखाली का तुम्हारा काम इससे ज्यादा महत्व का है।" इसके बाद उन्होने मुझे बताया कि अगर सरकार अपना फर्ज पूरा करने मे चूके, तो गुण्डो के साथ कैसे निपटना चाहिए।

दोपहर को थोडी झपकी लेने के बाद गाधीजी श्री सुधीर घोष से मिले। श्री घोष ने और बातो के अलावा 'लन्दन टाइम्स' की कतरन और एक अग्रेज दोस्त के खत के कुछ हिस्से पढकर उन्हे सुनाये। इनमें लिखा था कि किस तरह कुछ लोग बडी तत्परता के साथ पण्डित नेहरू और सरदार पटेल के बीच फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं। वे सरदार पटेल पर फिरकापरस्त होने का दोष लगाते हे और पण्डित नेहरूजी की तारीफ करने का ढोग रचते है। गाधीजी ने कहा कि वे इस तरह की हलचल से वाकिफ है और उसपर गहराई से विचार कर रहे है। वे बोले कि अपने एक प्रार्थना-सभा के भाषण मे पहले ही इसके बारे मे कह चुका हू, जो 'हरिजन' में छप गया है। मगर मुझे लगता है कि इसके लिए कुछ और ज्यादा करने की जरूरत है। मै सोच रहा हू कि मुझे क्या करना चाहिए।

सारे दिन लोग लगातार मुलाकात करने के लिए आते रहे। उनमे दिल्ली के मौलाना लोग भी थे। उन्होने गाधीजी के वर्धा जाने के बारे में अपनी सम्मति दे दी। गाधीजी ने उनसे कहा कि मै सिर्फ थोडे दिनो के लिए ही यहा से गैरहाजिर रहूगा और अगर भगवान की कुछ और ही मर्जी न हुई और कोई आकस्मिक घटना न घटी तो ११ तारीख को वर्धा में स्वर्गीय सेठ जमनालालजी की पुण्यतिथि मनाने के

बाद १४वी तारीख को मैं लौट जाऊगा।

एक बात और थी, जिसके बारे मे मुझे गाधीजी से सलाह लेनी थी। मैंने उनसे पूछा, "बापू, मुसलमान औरतो मे अपने काम को आसानी से चलाने के लिए अगर ज्यादा नही तो थोडे ही वक्त के लिए मैं . . को नोआखाली ले आऊ ? जरूरी छुट्टी के लिए से प्रार्थना करूगा।" "खुशी से"—उन्होने जवाब दिया। आखिरी शब्द ये थे जो मुझे सुनने थे।

साढे चार बजे आभा उनका शाम का खाना लाई। इस धरती पर उनका यह आखिरी भोजन था, जिसमे करीब-करीब सवेरे की ही सब चीजे शामिल थी। उनकी आखिरी बैठक सरदार पटेल के साथ हुई। जिन विषयो पर चर्चा हुई, उनमें से एक मत्रि-मडल की एकता को तोडने के लिए सरदार के खिलाफ किया जाने-वाला गन्दा प्रचार था। गाधीजी की यह साफ राय थी कि हिन्दुस्तान के इतिहास में ऐसे नाजुक मौके पर मन्त्रिमडल मे किसी तरह की फूट पैदा होना बडी दु खपूर्ण बात होगी। सरदार से उन्होंने कहा कि आज मैं इसीको अपनी प्रार्थना-सभा के भाषण का विषय बनाऊगा। प्रार्थना के बाद पण्डितजी मुझसे मिलेंगे, उनसे भी इसके बारे में चर्चा करूगा। आगे चलकर उन्होंने कहा, "अगर जरूरी हुआ तो मै २ तारीख को वर्धा जाना मुल्तवी कर दूगा और तबतक दिल्ली नही छोडूगा जबतक दोनो के बीच फूट डालने की कोशिश के इस भूत का पूरी तरह खात्मा न कर दू।"

इस तरह चर्चा चलती रही। बेचारी आभा भी बाधा देने का साहस नही कर रही थी। इस बात को जानते हुए कि बापू वक्त की पाबन्दी को और खासकर प्रार्थना के बारे मे उसकी पाबन्दी को, कितना महत्व देते है, उसने आखिर मे निराश होकर उनकी घडी उठाई और जैसे इस बात का इशारा करते हुए उनके सामने रख दी कि प्रार्थना मे देर हो रही है।

प्रार्थना के मैदान मे जाने के पहले ज्योही गाधीजी गुसलखाने मे जाने के लिए उठे, वे बोले, "अब मुझे आपसे अलग होना पडेगा।" रास्ते में वे उस शाम को अपनी 'चलती लकडियों'—आभा और मनु—के साथ तबतक हँसते और मजाक करते रहे जबतक कि वे प्रार्थना के मैदान की सीढियो पर नही पहुंच गये।

दिन में जब दोपहर के पहले आभा गाधीजी के लिए कच्ची गाजरो का रस लाई, तब उन्होंने उलाहना देते हुए कहा, "तो तुम मुझे ढोरो का खाना खिलाती हो!" आभा ने जवाब दिया, "बा तो इसे 'घोडे की खुराक' कहती थी।" उन्होंने पूछा, "जिस चीज को दूसरा पूछेगा भी नही, उसे स्वाद से खाना क्या कम चीज

है ?" और हंसने लगे ।

आभा ने कहा—"बापू, आपकी घडी को जरूर यह लगता होगा कि आप उसकी परवाह नही करते । आप उसकी तरफ देखते नही ।" गाधीजी ने तुरन्त जवाब दिया —"मै क्यो देखू, जब तुम दोनो मुझे ठीक समय बता देती हो ?" लडकियो में से एक ने पूछा, "लेकिन आप तो समय बतानेवाली लडकियो की तरफ नही देखते !"

बापू फिर हंसने लगे । पाव साफ करते हुए उन्होने आखिरी बात कही, "मै आज १० मिनट देर से पहुचा हू । देर से आने मे मुझे नफरत होती है । मै प्रार्थना की जगह पर ठीक पाच बजे पहुचना पसद करता हू ।" यहा बातचीत खतम हो गई । क्योंकि—'चलंती लकडियो' के साथ गाधीजी की यह शर्त थी कि प्रार्थना के मैदान के अहाते में पहुंचते ही सारा मजाक और बातचीत बन्द हो जानी चाहिए—मन मे प्रार्थना के विचारो के सिवा दूसरी कोई चीज नही होनी चाहिए । मन प्रार्थना-मय हो जाना चाहिए ।

अब गाधीजी प्रार्थना-सभा के बीच रस्सियो से घिरे रास्ते मे चलने लगे । उन्होने प्रार्थना में शामिल होने वाले लोगो के नमस्कारों का जवाब देने के लिए लडकियो के कन्धों से अपने हाथ उठा लिये । एकाएक भीड में से कोई दाहिनी ओर से भीड को चीरता हुआ उस रास्ते पर आया । मनु ने यह सोचा कि वह आदमी बापू के पाव छूने को आगे बढ रहा है । इसलिए उसने उसको ऐसा करने के लिए झिडका, क्योकि प्रार्थना मे पहले ही देर हो चुकी थी । उसने रास्ते में आने वाले आदमी का हाथ पकडकर उसे रोकने की कोशिश की । लेकिन उसने जोर से मनु को धक्का दिया, जिससे उसके हाथ की आश्रम-भजनावली, माला और बापू का पीकदान नीचे गिर गये । ज्योही वह बिखरी हुई चीजो को उठाने के लिए झुकी, वह आदमी बापू के सामने खडा हो गया—इतना नजदीक खडा था कि पिस्तौल से निकली हुई गोली का खोल बाद मे बापू के कपडे की पर्त मे उलझा हुआ मिला । सात कारतूसोवाले आटोमेटिक पिस्तौल से जल्दी-जल्दी तीन गोलिया छूटी । पहली गोली नाभी से ढाई इच ऊपर और मध्य रेखा से साढे तीन इच दाहिनी तरफ पेट की बाजू मे लगी । दूसरी गोली, मध्य-रेखा से एक इच की दूरी पर दाहिनी तरफ घुसी और तीसरी गोली छाती की दाहिनी तरफ लगी । पहली और दूसरी गोली शरीर को पारकर पीठ से बाहर निकल आई । तीसरी गोली उनके फेफडे मे ही रुकी रही । पहले वार मे उनका पाव, जो गोली लगने के वक्त आगे बढ रहा था, नीचे

आ गया। दूसरी गोली छोडी गई तवतक वे अपने पावों पर हीं खडे थे, उसके बाद वे गिर गये। उनके मुंह से आखिरी शब्द "हे राम" निकले। उनका चेहरा राख की तरह सफेद पड गया। उनके सफेद कपडो पर गहरा सुर्ख धब्बा फैलता हुआ दिखाई पडा। उनके हाथ, जो सभा को नमस्कार करने के लिए उठे थे, धीरे-धीरे नीचे आ गये, एक हाथ आभा के गले में अपनी स्वाभाविक जगह पर गिरा। उनका लड-खडाता हुआ शरीर धीरे से ढुलक गया। घवराई हुई मनु और आभा ने महसूस किया कि क्या हो गया है।

मै दूसरे दिन नोआखाली जाने की अपनी तैयारी पूरी करने के लिए शहर गया था और वहा से हाल में ही लौटा था। प्रार्थना-सभा के मैदान तक बनी हुई पत्थर की कमानी के नीचे भी मै न पहुच पाया कि श्री चन्द्रावत सामने से दौडते हुए आये। उन्होंने चिल्लाकर कहा, "डाक्टर को फोन करो। वापू को गोली मार दी गई है।" मै पत्थर की तरह जहा-का-तहा खडा रह गया, जैसे वुरा सपना देखा हो। मशीन की तरह मैने किसीके द्वारा डाक्टर को फोन करवाया।

हरएक को इस घटना से धक्का लगा। डा० राज सब्बरवाल ने, जो उनके पीछे आईं, गाधीजी के सिर को धीरे से अपनी गोद मे रख लिया। उनका कापता हुआ शरीर डाक्टर के सामने आधा लेटा हुआ था और आखें अधमुदी थी। हत्यारे को विडला-भवन के माली ने मजवूती से पकड लिया था। दूसरो ने भी उसका साथ दिया और थोडी खीचतान के वाद उसे कावू में कर लिया। वापू का शात और ढीला पडा हुआ शरीर दोस्तो के द्वारा अन्दर ले जाया गया और उस चटाई पर उसे रखा गया, जिसपर वैठकर वे काम किया करते थे। मगर कुछ इलाज करने से पहले ही घडी की आवाज वन्द हो चुकी थी। उन्हे भीतर लाने के वाद उनको जो छोटा चम्मच भर शहद और गरम पानी पिलाया गया उसे भी वे पूरी तरह निगल न सके। करीव-करीव फौरन ही उनका अवसान हो गया।

डा० सुशीला वहावलपुर गई थी, जहा वापू ने उन्हे दया के मिशन पर भेजा था। डा० भार्गव, जिन्हे वुलावा भेजा था, आये और 'एड्रेनलिन' के लिए डा० सुशीला की सकट के समय काम में आने वाली दवाइयो का सदूक पागल की तरह तलाश करने लगे। मैने उनसे दलील की कि वे उस दवाई को ढूढने की मेहनत न उठाये, क्योकि गाधीजी ने कई वार हमसे कहा है कि उनकी जान वचाने के लिए भी कोई निषिद्ध दवाई उनको न दी जाय। जैसे-जैसे वरस वीतते गये, उन्हे ज्यादा-ज्यादा विश्वास होता गया कि सिर्फ रामनाम ही उनकी और दूसरो की सारी वीमारियो

को दूर कर सकता है। थोडे ही दिनो पहले अपने उपवास के दरमियान उन्होने यह सवाल पूछकर साइस की कमियो के बारे मे अपने मत को पक्का कर दिया था कि गीता मे जो यह कहा गया है 'एकाशेन स्थितो जगत्'—उसके एक अश से सारा ससार टिका हुआ है—उसका क्या मतलब है ? रामनाम की सब बीमारियो को दूर करने की शक्ति पर अपने विश्वास के बारे मे बोलते हुए एक आह के साथ गाधीजी ने घनश्यामदासजी से कहा था, "अगर मै इसे अपने जीते-जी साबित नही कर सकता, तो वह मौत के साथ ही खत्म हो जायगा ।" जैसाकि आखिर में हुआ, डा० सुशीला की सकटकालीन दवाइयो मे एड्रेनलिन नही मिला। सयोग से एड्रेनलिन की जो एक मात्र शीशी सुशीला ने कभी ली थी वह नोआखाली के काजिर-खिल कैम्प मे टूट गई थी। गाधीजी उसकी इतनी कम परवाह करते थे।

उनके साथियो में सबसे पहले सरदार वल्लभभाई पटेल आये। वे गाधीजी के पास बैठे और नाडी देखकर उन्होने खयाल कर लिया कि वह अब भी धीरे-धीरे चल रही है। डा० जीवराज मेहता कुछ मिनट बाद पहुचे। उन्होने नाडी और आखो की परीक्षा की और उदास और दु खी होकर सिर हिलाया। लडकिया सिसक उठी। लेकिन उन्होने तुरन्त दिल को कडा किया और रामनाम बोलने लगी। मृत शरीर के पास सरदार चट्टान की तरह अचल बैठे थे। उनका चेहरा उदास और पीला पड गया था। इसके बाद पडित नेहरू आये और बापू के कपडो मे अपना मुह छिपाकर बच्चे की तरह सिसकने लगे। इसके बाद देवदास आये। तब बापू के पुराने रक्षकों में से बचे हुए श्री जयरामदास, राजकुमारी अमृतकौर, आचार्य कृपलानी आये। कुछ देर बाद लार्ड माउण्टबेटन आये, तबतक बाहर लोगो की भीड इतनी बढ गई थी कि वे बडी मुश्किल से अन्दर आ सके। कडे दिल के योद्धा होने के कारण उन्होने एक पल भी नही गवाया और वे पडित नेहरू और मौलाना आजाद को दूसरे कमरे में ले गये और महान् दुर्घटना से पैदा होनेवाले समस्याओ पर अपने राजनैतिक दिमाग से विचार करने लगे। एक सुझाव यह रक्खा गया कि मृत शरीर को मसाला देकर कुछ समय के लिए सुरक्षित रखा जाय, लेकिन इस बारे में गाधीजी के विचार इतने साफ और मजबूत थे कि बीच मे पडना मेरे लिए जरूरी और पवित्र कर्त्तव्य हो गया। मैंने उनसे कहा कि बापू मरने के बाद पार्थिव शरीर को पूजने का कडा विरोध करते थे। उन्होने मुझे कई बार कहा था, "अगर तुम मेरे बारे में ऐसा होने दोगे तो मैं मौत में भी कोसूगा। मै जहा कही मरू, मेरी यह इच्छा है कि बिना किसी दिखावे या झमेले के मेरा दाह-सस्कार किया जाय।" डा० राजेन्द्र प्रसाद,

श्री जयरामदास और डा० जीवराज मेहता ने मेरी वात का समर्थन किया। इस-लिए मृत शरीर को मसाला देकर रखने का विचार छोड दिया गया। बाकी रात गीता के श्लोक और सुखमणि साहव के भजन मीठे राग मे गाये जाते रहे और वाहर दु ख से पागल वने लोगो की भीड दर्शन के लिए कमरे के चारो तरफ इकट्ठी होती रही। आखिरकार मृत शरीर को ऊपर ले जाकर विडला-भवन के छज्जे पर रखना पडा, ताकि सव लोग दर्शन कर सकें।

सुवह जल्दी ही शरीर को हिन्दू-विधि के अनुसार नहलाया गया और कमरे के वीच में फूलो से ढककर रख दिया गया। विदेशी राजदूत, सुबह थोडी देर वाद आये और उन्होने वापू के चरणो पर फूलो की मालाए रखकर अपनी मौन श्रद्धाजलि अर्पित की।

अवसान के दो दिन पहले ही गाधीजी ने कहा था, "मेरे लिए इससे प्यारी चीज क्या हो सकती है कि मै हँसते-हँसते गोलियो की वौछार का सामना कर सकू ?" और मालूम होता है, भगवान् ने उन्हे यह वरदान दे दिया।

११ वजे हमारे सवके अन्तिम प्रणाम करने के वाद मृत शरीर अर्थी पर रखा गया। उस समय तक रामदास गाधी हवाई जहाज द्वारा नागपुर से आ पहुचे थे। डा० सुशीला नायर सबसे आखिर मे पहुची, जब अर्थी रवाना होने वाली थी। उन्हें इस वात का वडा दु ख था कि वापू के आखिरी समय मे वह उनके पास नही रह सकी। लेकिन इस वात के लिए उन्होने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अन्तिम दर्शन के समय पहुच गई।

उस रात डा० सुशीला वार-वार वहुत दु खी होकर चिल्लाती रही, "आखिर मुझे यह सजा क्यो ?" देवदास ने उन्हे आश्वासन देने की कोशिश की "यह सजा नही है। वापू के आखिरी मिशन को पूरा करने में जुटे रहना वडे गौरव की वात है—यह वापू का उसीको सौपा हुआ आखिरी काम था।" वापू की यह एक विशेषता थी कि जिन्हे उन्होने वहुत दिया था, उनसे वे और ज्यादा की आशा रखते थे।

जब मै वापू का अपार शाति, क्षमा, सहिष्णुता और दया से भरा आचल और उदास चेहरा ध्यान से देखने लगा, तो मेरे दिमाग मे उस समय से लेकर — जव मै कालेज के विद्यार्थी रूप में चौंधियानेवाले सपनो और उज्ज्वल आशाओं से भरा वापू के पास आकर उनके चरणो में बैठा था—आजतक के २८ लम्बे वर्षो के निकटतम और अटूट सम्वन्ध का पूरा दृश्य विजली की गति से घूम गया

और वे वर्ष कौम के वोझ से कितने लदे हुए थे ।

जो कुछ हुआ था, उसके अर्थ पर मैं विचार करने लगा । पहले मैं घवराहट महसूस करने लगा, लेकिन वाद में धीरे-धीरे यह पहेली अपनी आप सुलझने लगी । उस दिन जव वापू ने एक आदमी के भी अपना फर्ज पूरी और अच्छी तरह अदा करने के वारे में कहा था, मुझे ताज्जुव हुआ था कि आखिर उनके कहने का ठीक-ठीक मतलव क्या है ? उनकी मृत्यु ने उसका जवाव दे दिया । पहले जव गाधीजी उपवास करते तो वे दूसरो से प्रार्थना करने के लिए कहते थे । वे कहा करते थे, "जवतक पिता वच्चो के वीच है तवतक उन्हें खेलना और खुशी से उछलना-कूदना चाहिए । जव मै चला जाऊगा तव आज मै जो कुछ कर रहा हू वह सव वे करेगे ।" मगर··· वापू ने जो आजादी हमारे लिए जीती है, यदि उसका फल हमें भोगना है, तो उनकी मौत ने हमें वह रास्ता दिखा दिया है, जिस पर हमें चलना है ।

: २ :

अन्तिम प्रार्थना-प्रवचन

२९ जनवरी १९४८

भाइयो और वहनो,

मेरे सामने कहने को चीज तो काफी है, उनमें से जो आज के लिए चुननी चाहिए, वे चुन ली हैं । छ चीजे हैं । पद्रह मिनट मे जितना कह सकूगा, कहूंगा ।

एक वात तो देख रहा हू कि थोडी देर हो गई है—यह होनी नही चाहिए थी । सुशीला वहन वहावलपुर चली गई है । वहावलपुर मे दु खी आदमी हैं उनको देखने के लिए चली गई है—दूसरा अधिकार तो कोई है नही और न हो सकता था । फ्रेंड्स सर्विस के लेसली क्रॉस के साथ चली गई है । फ्रेंड्स यूनिट मे से किसी को भेजने का मैंने इरादा किया था, ताकि वह वहा लोगो को देखे, मिले, और मुझ-को वहा के हाल वता दें । उस वक्त सुशीला वहन के जाने की वात नही थी, लेकिन जव सुशीला वहन ने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत दे दो तो मैं क्रॉस साहव के साथ चली जाऊ । वह जव नोआखाली मे काम करती थी तवसे वह उनको

जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पंजाव के गुजरात की है, उसने भी काफी गवाया है, क्योकि उसकी तो वहा काफी जायदाद है, फिर भी दिल मे कोई जहर पैदा नही हुआ है। तो उसने वताया कि मै वहा क्यो जाना चाहती हू, क्योकि मै पजावी वोली जानती हू, हिन्दुस्तानी जानती हू, उर्दू और अग्रेजी भी जानती हू तो वहा मै क्रॉस साहव को मदद दे सकूगी। तो मै यह सुनकर खुश हो गया। वहा खतरा तो है, लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है, ऐसा डरती तो नोआखाली क्यो जाती ? पजाव मे वहुत लोग मर गए है, विलकुल मटियामेट हो गए है, लेकिन मेरा तो ऐसा नही है, खाना-पीना सव मिल जाता है, ईश्वर सव करता है। अगर आप भेज दें और क्रॉस साहव मेरे को ले जाय तो मै वहा के लोगो को देख लूगी। तो मैने क्रॉस साहव से पूछा कि क्या आपके साथ सुशीला वहन को भेजू ? तो वे खुश हो गए और कहा कि यह तो वडी अच्छी वात है। मै उनके मारफत से दूसरो से अच्छी तरह वातचीत कर लूगा। मित्रवर्ग में हिन्दुस्तानी जानने वाला कोई रहे तो वह वडी भारी चीज हो जाती है। इससे वेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रास के है। रेडक्रास के माने यह है कि लडाई मे जो मरीज हो जाते है उनको दवा देने का काम करना। अव तो दूसरा-तीसरा भी काम करते है। तो डाक्टर सुशीला क्रॉस साहव के साथ गई या डाक्टर सुशीला के साथ क्रॉस साहव गए है यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नही, क्योकि दोनो एक-दूसरे के दोस्त है और दोनो एक-दूसरे को चाहते है, मोहव्वत करते है। वे सेवा-भाव से गए है, पैसा कमाना तो है नही। वे जो देखेंगे मुझे वतायगे और सुशीला वहन भी वतायगी। मै नही चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर है और क्रॉस साहव दूसरे है। कौन ऊचा है कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करें, लेकिन क्रॉस साहव, है तो औरत को आगे कर देते है और अपनेको पीछे रखते है। आखिर वे उनके दोस्त है। मै एक वात और कह देना चाहता हू कि नवाव साहव तो मुझको लिखते रहते है। मुझको कई लोग झूठ वात भी लिखते है तो उसे मानने का मेरा क्या अधिकार है। मैने सोचा कि मुझको क्या करना चाहिए। तो वहावलपुर के जो आए है उनको वता दू कि वे वहा से आयगे तो मुझको सव वात वता देंगे।

अभी वन्नू के भाई लोग मेरे पास आ गए थे—शायद चालीस आदमी थे। वे परेशान तो है, लेकिन ऐसे नही है कि चल नही सकते थे। हा, किसी की अगुली में घाव लगे थे, कही कुछ था, ऐसे थे। मैने तो उनका दर्शन ही किया और कहा कि जो कुछ कहना है वृजकिशनजी से कह दे, लेकिन इतना समझ लें कि मै उन्हे भूला

नही हू। वे सब भले आदमी थे। गुस्से से भरे होना चाहिए था, लेकिन फिर भी वे मेरी बात मान गए। एक भाई थे, वे शरणार्थी थे या कौन थे, मैंने पूछा नही। उसने कहा कि तुमने बहुत खराबी तो कर ली है, क्या और करते जाओगे ? इससे बेहतर है कि जाओ। बडे है, महात्मा है तो क्या, हमारा काम तो बिगाडते ही हो। तुम हम को छोड दो, भूल जाओ, भागो। मैंने पूछा, कहा जाऊ ? उन्होने कहा, तुम हिमालय जाओ। तो मैंने डाटा। वे मेरे जितने बुजुर्ग नही है—वैसे बुजुर्ग है, तगडे है, मेरे जैसे पाच-सात आदमी को चट कर सकते है। मै तो महात्मा रहा, घबराहट में पड जाऊ तो मेरा क्या हाल होगा। तो मैंने हँसकर कहा कि क्या मै आपके कहने से जाऊ? किसकी बात सुनू ? क्योकि कोई कहता है कि यही रहो, कोई तारीफ करता है, कोई डाटता है, कोई गाली देता है तो मै क्या करू ? ईश्वर जो हुक्म करता है वही मै करता हू। आप कह सकते है कि आप ईश्वर को नही मानते है तो इतना तो करे कि मुझे अपने दिल के अनुसार करने दे। आप कह सकते है कि ईश्वर तो हम है। मैंने कहा तो परमेश्वर कहा जायगा ? ईश्वर तो एक है। हा, यह ठीक है कि पच परमेश्वर है लेकिन यह पच का सवाल नही है। दु खी का बेली * परमेश्वर है; लेकिन दु खी खुद परमात्मा नही। जब मै दावा करता हू कि जो हर एक स्त्री है, मेरी सगी बहन है, लडकी है तो उसका दु ख मेरा दु ख है। आप ऐसा क्यो मानते है कि मै दु ख को नही जानता। आपके दु खो में मै हिस्सा नही लेता। मै हिन्दुओ और सिखो का दुश्मन हू और मुसलमानो का दोस्त हू। उसने साफ-साफ कह दिया। कोई गाली देकर लिखता है, कोई विवेक से लिखता है कि हमको छोड दो, चाहे हम दोजख में जाय तो क्या ? तुमको क्या पडी है, तुम भागो ? मै किसीके कहने से कैसे भाग सकता हू ? किसीके कहने से मै खिदमतगार नही बना हू। किसीके कहने से मै मिट नही सकता हू, ईश्वर के चाहने से मै जो हू बना हू। ईश्वर को जो करना है करेगा। ईश्वर चाहे तो मुझको मार सकता है। मै समझता हू कि मै ईश्वर की बात मानता हू। एक डाटता है, दूसरे लोग मेरी तारीफ करते है, तो मै क्या करू। मै हिमालय क्यो नही जाता ? वहा रहना तो मुझको पसद पडेगा। ऐसा नही है कि मुझको वहा खाने, पीने, ओढने को नही मिलेगा—वहा जाकर शाति मिलेगी, लेकिन मै अशाति में से शाति चाहता हू नही तो उस अशाति में मर जाना चाहता हू। मेरा हिमालय यही है। आप सब हिमालय चलें तो मुझको भी आप लेते चले।

मेरे पास शिकायते आती है—सही शिकायते है—कि यहा शरणार्थी पडे है,

* (गुज०) मुरब्बी, सहायता करनेवाला।

उनको खाना देते हैं, पीना देते है, पहनने को देते है, जो हो सकता है सब करते है, लेकिन वे मेहनत नही करना चाहते हैं, काम नही करना चाहते हैं। जो उनकी खिदमत करते हैं उन लोगो ने लबा-चौड़ा लिख कर दिया है, उसमें से मै इतना ही कह देता हू। मैंने तो कह दिया है कि अगर दुःख मिटाना चाहते है, दुःख में से सुख निकालना चाहते है, दुःख मे भी हिन्दुस्तान की सेवा करना चाहते है, साथ में अपनी भी सेवा हो जाती है, तो दुखियो को काम तो करना ही चाहिए। दुःखी को ऐसा हक नही है कि वह काम न करे और मौज-शौक करे। गीता में तो कहा है, 'यज्ञ करो और खाओ'—यज्ञ करो और शेष रह जाता है उसको खाओ। यह मेरे लिए है और आप के लिए नही है ऐसा नही है—सबके लिए है। जो दुःखी है उनके लिए भी है। एक आदमी कुछ करे नही, बैठा रहे और खाय तो ऐसा हो नही सकता। करोडपति भी काम न करे और खावे तो वह निकम्मा है, पृथ्वी पर भार है। जिस आदमी के घर पैसा भी है वह भी मेहनत करके खाए तब बनता है। हा कोई लाचारी है—पैर नही चल सकता है या अधा है, या वृद्ध हो गया है तो बात दूसरी है, लेकिन जो तगड़ा है, वह क्यो न करे ? जो काम कर सकता है वह काम करे। शिविर में जो तगडे पड़े है वे पाखाना भी उठाएं। चर्खा चलाए। जो काम बन सकता है, करें। जो काम नही जानते है वे काम लडको को सिखाएं, इस तरह से काम लें। लेकिन कोई कहे कि केम्ब्रिज में जैसे सिखाते है वैसे सिखाए, मै, मेरा बाबा तो केम्ब्रिज में सीखा था तो लडको को भी वहा भेजे, तो यह कैसे हो सकता है ? मै तो इतना ही कहूंगा कि जितने शरणार्थी है वे काम करके खाए। उन्हें काम करना ही चाहिए।

आज एक सज्जन आए थे। उनका नाम तो मै भूल गया। उन्होने किसानों की बात की। मैंने कहा, मेरी चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा बडा वजीर किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योकि यहा का राजा किसान है। मुझे बचपन से सिखाया था—एक कविता है, "हे किसान, तू बादशाह है।" किसान जमीन से पैदा न करे तो हम क्या खायगे ? हिन्दुस्तान का सचमुच राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे है। आज किसान क्या करे ? एम० ए० बने, बी०ए० बने ?—ऐसा किया, तो किसान मिट जायगा, पीछे वह कुदाली नही चलायगा। जो आदमी अपनी जमीन में से पैदा करता है और खाता है, सो जनरल बने, प्रधान बने, तो हिन्दुस्तान की शकल बदल जायगी। आज जो सडा पडा है, वह नही रहेगा।

मद्रास में खुराक की तगी है। मद्रास सरकार की तरफ से दूत यह कहने के

लिए श्री जयरामदास के पास आए थे कि वे उस सूबे के लिए अन्न देने का बन्दोबस्त करें। मुझे मद्रासवालो के इस रुख से दुःख होता है। मै मद्रास के लोगो को यह समझाना चाहता हू कि वे अपने ही सूबे मे मूगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थों के रूप में काफी खुराक पा सकते है। उनके यहा मछली भी काफी है, जिन्हे उनमे से ज्यादातर लोग खाते है। तब उन्हे भीख माँगने के लिए वाहर निकलने की क्या जरूरत है? उनका चावल का आग्रह रखना—वह भी पालिश किया हुआ चावल, जिसके सारे पोषक तत्व मर जाते है—या चावल न मिलने पर मजबूरी से गेहू मजूर करना ठीक नही है। चावल के आटे मे वे मूगफली या नारियल का आटा मिला सकते है और इस तरह अकाल के भेडिये को आने से रोक सकते है। उन्हें जरूरत है आत्म-विश्वास और श्रद्धा की। मद्रासियो को मै अच्छी तरह से जानता हू और दक्षिण-अफ्रीका में उस प्रात के सभी भाषावाले हिस्सो के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह कूच के वक्त उन्हे रोजाना के राशन में सिर्फ डेढ पौड रोटी और एक औस शक्कर दी जाती थी। मगर जहा कही उन्होने रात को डेरा डाला, वहा जगल की घास में से खाने लायक चीजे चुनकर और मजे से गाते हुए उन्हे पकाकर उन्होने मुझे अचरज में डाल दिया। ऐसे सूझ-बूझ वाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते है? यह सच है कि हम सब मजदूर थे। और, ईमानदारी से काम करने में ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक जरूरतो की पूर्ति भरी है।

●